श्रीहरिः ।

पराक्रमी हाडाराव ।

जिसमें

(१) बूंदी नरेश रावराजा श्रीरत्नसिंहजी,
(२) " के राजकुमार श्रीगोपीनाथजी,
(३) बूंदी नरेश रावराजा श्रीशत्रुशल्यजी,
(४) " " " भावसिंहजी,
(५) " " " अनिरुद्धसिंहजीका चरित्र

तथा

संवत् १६२५ से १७५२ तककी मुख्य २ सामयिक घटनाएं संयुक्त हैं ।

वही

बूंदी (राजपूताना) निवासी महता **लज्जाराम शर्म्मा**

रचित और प्रकाशित,

और

बंबई के " **श्रीवेंकटेश्वर** " स्टीम् मुद्रणयन्त्रालय में

खेमराज श्रीकृष्णदास द्वारा मुद्रित.

संवत् १९७२ सन १९१५

इसका सर्वाधिकार सरकारी नियमके अनुसार
रचयिताने स्वाधीन रक्खा है ।

प्रथमवार १००० **मूल्य प्रति पुस्तक.**

यह पुस्तक बम्बई खेतवाडी ७ वीं गली खम्बाटा लेन, निज "श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम् प्रेसमें खेमराज श्रीकृष्णदासने छापा. वही महता लज्जाराम शर्माने बूंदीमें प्रकाशित किया.

हाडा कुल कमल दिवाकर ।

बूँदीनरेश.

१ राव राजा श्री रत्नसिंहजी	४ राव राजा श्री भावसिंहजी
२ राजकुमार श्री गोपीनाथजी	५ राव राजा श्री अनिरुद्धसिंहजी
३ राव राजा श्री शत्रुशल्यजी	६ महाराव राजा श्री बुधसिंहजी

भूमिका ।

हे मुक्तिदेवि बहुजन्मभिरप्यलभ्या-
ऽनर्घ्यापि गोपशिशुकस्य करं गतासि ।
पर्णस्यखण्डमपि हंत निवेद्य यस्मै
क्रीणन्ति मंक्षु भवतीं बत भिक्षवोऽपि ।
(पूज्यपाद श्रीपण्डित गंगासहायजी रचित)

इतिहास प्राचीनों के अनुभव का खजाना है । वैसा खजाना नहीं जो चोरों के लूट लेजाने अथवा खर्च कर डालने से खाली पडजाय। सान पर चढाने से जैसे हीरे का मोल बढता है वैसे ही खर्च कर देने से इसकी कदर बढती है। वृद्धि के सिवाय ह्रास का इसमें काम ही नहीं । यों प्राचीनों के अनुभव से लाभ उठाने के उद्देश्य से ही इतिहास ग्रंथों की सृष्टि हुई है । किसी लिपिबद्ध इतिहास का अवलोकन कर अपनी, अपने देश की और अपनी जाति की सामयिक परिस्थिति से उसकी तुलना करना और तब अपना कर्त्तव्य स्थिर करना—बस इसी लिये आज कल्ह के अनेक विद्वान् ऐसे ग्रंथ लिखने का उद्योग करने लगे हैं और मैं इस लिये देश का सौभाग्य समझता हूं ।

रामायण, महाभारत और पुराणों में इतिहास का अधिकांश उपलब्ध होने पर भी यदि कितने ही लोग प्राचीन भारतवर्ष में इतिहास का अभाव बतलाते हैं तो बतलाने दीजिये । इस समय इस विषय की बहस करके मैं इस भूमिका को विषयान्तर में ले जाना नहीं चाहता किन्तु कतिपय वर्तमान सुलेखकों के मत से हजार वर्ष इधर का जो इतिहास है वह भी प्रामाणिक इतिहास नहीं है । वह या तो भाटों की दन्तकथा है अथवा कवियों की कल्पना । शायद वे उसीको प्रामाणिक मान सकते हैं जिसके लिये या तो कोई परदेशी गवाह खडा हो अथवा सिक्कों शिलालेखों और ताम्रपत्रों की कसौटी में कस लिया जाय किन्तु इस कसौटी की भी आज कल्ह बडी छीछालेदर है । इस तरह बाल की खाल निकाल कर आज जो मत स्थिर किया

जाता है कल्ह एक नया आविष्कार होकर पहले का सब किया कराया मिट्टी में मिल जाता है। यों दूसरे के प्रकाशित होते २ ही तीसरा उसे धर दबाता है। इस तरह सच पूछो तो इतिहास लेखन में आज कल्ह एक प्रकारका गदर मच रहा है किन्तु क्या इस ऊहापोह से देश का कुछ उपकार होताहै ? यदि ऐसी बाल की खाल निकालने से हमारी प्राचीनों पर भक्ति बढती हो, यदि उनके उत्कृष्ट गुणों का पता लगता हो तो वास्तव में उनका यह प्रयत्न प्रणाम करने योग्य है क्योंकि सर्वस्व खोदेने पर भी यदि हमारे पास कुछ बचा है तो वह केवल प्राचीनों की कीर्त्ति। किन्तु नहीं ! जिन महानुभावों पर मेरी आन्तरिक पूज्य बुद्धि है उनके उद्योग का भी मैं कभी २ फल विपरीत ही देखता हूं।

वे अपना उद्योग सुख से प्रचलित रक्खैं मैं उन्हें मना नहीं करना चाहता किन्तु मैं यह नहीं मान सकता हूं कि ऐसी गवाही और ऐसी कसौटी सर्वथा ही सच्ची हो सकती है। यदि एक इतिहासलेखक अपने पात्रों के पक्षपात करने का दोषी ठहराया जाय तो क्या उसका विपरीत लेखक द्वेष का दोषी नहीं ? सिक्कों शिलालेखों और ताम्रपत्रों को वेद वाक्य मानना भी नहीं बन सकता है। जो केवल इन्हीं पर आधार रखने वाले हैं वे बूंदी में आकर देख लें कि बावन समरों में विजय पाने वाले रावराजा शत्रुशल्यजी जब धौलपुर के मैदान में वीरगति को प्राप्त हुए थे, वीरकेसरी रावराजा रत्नसिंहजी और धर्म प्राण राव राजा भावसिंह जी का जब दक्षिण में देहावसान हुआ था तब उनकी छत्रियां बूंदी के " क्षार बाग " में विद्यमान हैं। यहां के स्वर्गीय महाराज महाराव राजा राजर्षि राम सिंह जी का स्वर्गवास हुए आज २७ वर्ष हो जाने पर भी उनके नाम के सिक्कों पर वर्तमान संवत् मौजूद है। ऐसी दशा में जिनके ऐसे विचार होंगे उन्हें अवश्य ही मानना पडेगा कि उन तीनों नरेशों का देहान्त बूंदी में हुआ था और वह चौथे नरेश अबतक विद्यमान हैं। इस तरह मान लेना कम से कम इतिहास की सत्यता पर अवश्य हरताल फेर देगा।

ऐसी दशा में मैं कदापि आशा नहीं कर सकता हूं कि मेरी पोथी उनकी समालोचना की कसौटी में कसकर आदर पा सकैगी किन्तु ऐसे ग्रन्थ निर्माण में मेरे और उनके उद्देश्य में पृथ्वी आकाश का सा अंतर है। उनके मत से उनकी इस प्रकार की खोज से, जिसके विषय में मैं पहले कह चुका हूं, यदि मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र का भी कोई दोष निकल आवै तो वे उसके उद्घाटन में तनिक भी आना कानी न करैंगे। चाहे सर्व साधारण की दृष्टि में एक सर्वमान्य का पतन ही क्यों न होजाय किन्तु उन्हें सत्यवक्ता का सार्टिफिकेट अवश्य मिलाना चाहिये किन्तु उनसे मेरा मत भिन्न है। मैं अवश्य ही सत्य का आदर करता हूं। जहांतक मुझ से बन सका मैंने इस पोथी की रचनामें "सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्" का अनुसरण किया है किन्तु मेरा उद्देश्य है पाठकों के अंतःकरण पर अच्छा प्रभाव डालना। इस उद्योग में यदि मुझे सफलता हुई हो तो मेरा सौभाग्य है किन्तु जब इस अकिंचन लेखक में ऐसी योग्यता नहीं, मेरे पास वैसा साधन नहीं और न कार्य करने की वैसी अनुकूलता ही है तब है तो इतिहास लेखन के लिये लेखनी उठाना धरती पर पडे २ आकाश पकडने की इच्छा ही किन्तु फिर भी मैं हिन्दी के सुलेखकों में "पाँचवें सवार" बनने का हौंसिला करताहूं और सो भी केवल इसी भरोसे पर करता हूं कि विद्वानों ने निज जन का जान मेरा "उम्मेद सिंह चरित्र" अपना लिया है।

यह वही पोथी है जिसके प्रकाशन की प्रतिज्ञा "उम्मेद सिंह चरित्र" की भूमिका में की गई थी। उसमें बूंदी राज्य का संवत १७९२ से १८७८ तक के १२६ वर्षों का इति हास था और इसमें संवत् १६२९ से आरंभ करके संवत् १७९२ तक के १२७ वर्ष। पहले यह और फिर वह—यों दोनों को मिलाकर पढने से बूंदी राज्य की नो पीढियों वा—२९३ वर्ष का इतिहास है। इसमें:—

(१) राव राजा रत्नसिंहजी,

(२) राजकुमार गोपीनाथजी,

(३) रावराजा शत्रुशल्यजी,

(४) ,, भावसिंहजी, और

(५) ,, अनिरुद्ध सिंहजी का चरित्र है और "उम्मेदसिंह चरित्र" में चाहुवाणजी से लेकर अनिरुद्ध सिंहजी तक का संक्षिप्त इतिवृत्त देकर फिर:—

(६) महाराव राजा बुधसिंहजी,

(७) ,, उम्मेदसिंहजी,

(८) ,, अजित्सिंहजी और

(९) ,, विष्णुसिंहजी—यों दोनों ग्रंथों में कुल नो पीढियों का हाल दियागया है। वंशपरम्परा के हिसाब से पीढियां दश होती हैं क्यों कि संख्या (५) पर अनिरुद्ध सिंहजी संख्या (४) भावसिंहजी के भाई के नाती थे किन्तु अनिरुद्धसिंहजी के पिता कृष्णसिंहजी ने पितृव्य भावसिंहजी की गोद जाकर पितृद्रोह किया इसलिये उनका गद्दी से स्वत्व खारिज कर वह पीढियों की गणना में से निकाल दिये गये और इस तरह उन्हें किये का मजा मिलगया।

जब पुस्तक पाठक महाशयों के सामने है तब पुस्तक में क्या है-सो बतलाने की आवश्यकता नहीं। हाथ कंकन को आरसी की तरह जो कुछ है इसमें है। यदि भली है तो यह है और बुरी है तो यह है। हां, इतना अपनी ओर से भी प्रकाशित कर देना मैं आवश्यक समझता हूँ कि इन चरित्र नायकों ने जो कुछ काम करके नाम पाया वह केवल अपने बाहुबल से तलवार बजाकर मारकर, मरकर या मरमिटकर। केवल इसी लिये उन्होंने बडे २ संग्राम जीतकर नाम पाया, खिलअत पाये और राज्य पाया। औरों की तरह बादशाहों को अपनी बेटियां देकर नहीं, उनकी खुशामद करके नहीं और अपना प्यारा धर्म, अपनी प्यारी कुलाम्नाय खोकर नहीं। यदि इनमें से किसी में भी सचमुच राज्य लोलुपता होती—यदि इनमें से कोई भी किंचित् भी इस तरह के कलंक का काला टीका अपने ललाट पर लगवालेने में न डरता तो आज बूंदी का राज्य एक महाराज्य होता। जयपुर, जोधपुर के राज्य विस्तार से कम न होता क्योंकि ये लोग वीरता में, युद्धपटुता में और स्वामिभक्ति में औरों से किसी अंश में कम न थे।

यदि बढकर कहे जांय तो भी कुछ अत्युक्ति नहीं क्योंकि सिंहासन पर भक्ति हाडाओं का एक सर्वोत्कृष्ट गुण है। इस बात का प्रमाण इस पुस्तक में कदम २ पर मिलता है। अनेक बार बादशाहों के लिये शिरमांटे की खेल कर इन्होंने अनेक देश जीते और जो जीते सो बादशाह की अर्पण करदिये। युद्ध की रीझ में जो कुछ मिला उसपर संतोष। यदि कम दिया तो कभी राजभक्ति में अंतर न आने दिया और अधिक मिला तो फूलकर कुप्पे न बने।

अवश्य ही इन्होंने इस तरह राजभक्ति की पराकाष्ठा दिखलादी किन्तु इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं कि ये अपने राज्य से, शरीर से, बादशाहों के अनुग्रह से और अपने प्राण तक से भी बढकर अपने धर्म को, अपने पूर्वजों की प्रतिज्ञाओं को समझते थे। जब इन बातों पर जरासा भी आक्षेप होते हुए देखा इन्होंने बादशाहों के आतंककी, अपना राज्य नष्ट होजाने की और अपने प्राण चले जाने की एक तिल मात्र पर्वाह न की। इस बात के एक नहीं--इस पुस्तक में अनेक उदाहरण विद्यमान हैं। एक यही कारण था कि ये लोग बादशाहों की असाधारण सेवा करने पर भी उनके चक्षुशूल बने-रहे। यदि ऐसा न होता तो कदापि एक राज्य के दो राज्य हो जाने का अवसरन आता। तीसरा राज्य स्थापित होने का सूत्र पात न होता। इस तरह इनका उद्दंड साहस, इनकी असाधारण धर्म दृढता और अप्रतिम प्रतिभा देखकर ही बादशाहों ने किसी न किसी उद्योग से इनमें बंधुविरोध पैदा किया। वह बंधुविरोध अब तक भी इनकी विरासत में विद्यमान है। यदि मैं पुस्तक रचना में सचमुच सफल हो सका तो इसमें इन्हीं बातों का फोटो है।

इस पोथी में केवल बूंदी राज्य का--हाडा जाति का ही इतिहास हो सो नहीं। शाही जमाने के किसी भी रजवाडे का ऐसा इतिहास कदापि तैयार नहीं होसकता जिसका संबंध दिल्ली के मुसलमान साम्राज्य से न हो। इसमें बादशाह अकबर के शासन के अंतिम भाग से लेकर औरंगजेब के अंत तक का इतिहास है। वह इतिहास मुसलमान साम्राज्य का इतिहास

नहीं है। उसमें से जितने से अंश से बूंदी का—हाडाओं का संबंध पाया गया वही यहां लिखा गया है। समय २ पर जहांगीर, शाहजहां और औरंगजेब के चरित्रों का भी इसमें दिग्दर्शन है। जिस जमाने का यह इतिहास है उसमें और रजवाड़ों की, भारतवर्ष की क्या दशा थी—सो भी इससे पता लगता है। यों यह केवल बूंदी राज्य का ही इतिहास नहीं है बरन उस समय की देश भर की सामयिक मुख्य २ घटनाओं का इसमें प्रसंगोपात्त उल्लेख है। ऐसी घटनाओंका उल्लेख केवल दिग्दर्शन के लिये—पाठकों के सामने नया मसाला लाने की इच्छा से किया गया है। किसी पर आक्षेप करने के लिये नहीं। हां! इसमें चरित्र नायकों की, उनसे जिन २ का काम पडा उन लोगों की पक्षपात रहित समालोचना है।

"वंशभास्कर" के मत से ७ और "टाड राजस्थान" के मत से १० शर्तें राव राजा सुरजनजी का और ४ शर्तें राव राजा भोजजीका बादशाह अकबर से कराना—इस बात का भी इस पुस्तक में प्रसंगोपात्त उल्लेख है। इस प्रसंग को पढकर कितने ही इतिहास के खोजी महाशय इस लेखक से इस बात का प्रमाण मागेंगे। प्रमाण अवश्य देना चाहिये किन्तु मै इस जगह केवल इतना ही लिख देना उचित जानता हूँ कि जब यहां यह बातें केवल प्रसंग आ पडने पर लिखी गई है तब इसका प्रमाण देखने के लिये रावराजा सुरजनजी और राव राजा भोजजी के चरित्र जब तक प्रकाशित न हों तब तक उन्हें धैर्य धारण करना चाहिये।

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है "पराक्रमी हाडाराव" और "उम्मेद सिंह चरित्र" दोनों मिलाकर बूंदी राज्य की नो पीढियोंका—२९३ वर्षों का इतिहास है। यदि परमेश्वर शक्ति दे, यदि सर्व साधारण हिन्दी रसिकों की दृष्टि में इन दोनो पुस्तकोंका आदर हो तो "पराक्रमी हाडाराव" से पूर्व के इतिहास के लिये ऐसे २ ही दो खंड और "उम्मेदसिंह चरित्र" के बाद के इतिहास के लिये एक खंड—यों पांच खंडों में चाहुवाणजी से लेकर श्रीमान् महाराव राजा राजर्षि राम सिंहजी तक का इतिहास तैयार हो सकता है।

शरीर की अस्वस्थता, कार्य का बाहुल्य और उत्साह शिथिलता आदि कारणों से मैं इस उद्योग में कृतकार्य हो सकूंगा अथवा नहीं सो अभी से नहीं कहा जा सकता किन्तु इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं है कि हिन्दी के प्रायः सब ही नामांकित सुलेखकों ने, सुप्रसिद्ध विद्वानों ने प्रभावशाली पत्र सम्पादकों ने और देश के इतिहास मर्मज्ञों ने मेरे " उम्मेदसिंह चरित्र " का आदर कर खूब ही उत्साह वर्द्धन किया है। मैं उन्हें हार्दिक धन्यवाद देताहूँ। इस अकिंचन की एक लघु पुस्तिका का इतना आदर कुछ इसलिये नहीं हुआ है कि उसमें कोई अच्छापन है। इसमें या तो उन महानुभावों की उदारता है अथवा चरित्र नायकों के गुणों की उत्कृष्टता। क्यों कि मैं इस योग्य नहीं हूँ कि कोई इतिहास ग्रंथ निर्माण कर सकूं। इसी लिये मैंने "उम्मेद सिंह चरित्र " की भूमिका में लिखदिया है।

यह पुस्तक विशेष कर राजपूताने के सुप्रसिद्ध इतिहास लेखक कर्नल जेम्स टाड साहब कृत "रानल्स एंड ऐंटीक्विटीज़ आफ् राजस्थान " कवि शिरोमणि कविराजा सूर्यमल्लजी रचित "वंशभास्कर" सकल शास्त्र निष्णात, राजकार्य धुरंधर, बूंदीके भूतपूर्व प्रधान अमात्य परमपद प्राप्त गुरुवर पूज्यपाद पण्डित गंगासहायजी कृत " वंश प्रकाश " और राजपूताने के वर्तमान इतिहास मर्मज्ञ, जोधपुर निवासी मुंशी देवीप्रसाद जी रचित " जहांगीर नामा " " शाहजहां नामा " और " औरंगजेब नामा " का परस्पर मिलान कर लिखा गया है। इनके अतिरिक्त अन्य २ जिन ग्रंथों की इसकी रचना में सहायता ली गई है उनके नामी नाम धन्यवाद सहित अन्यत्र प्रकाशित किये गये हैं। वास्तव में मै मुंशी देवीप्रसादजी का बहुत ही ऋणी हूँ जो सदा ही मुझे ऐसे कार्यों में सहायता प्रदान करने के लिये तैयार रहते हैं। वर्तमान हिन्दी लेखकों में उन जैसा उदार भी कोई विरला ही होगा। उनमें एक यह उत्कृष्ट गुण है कि जो कुछ उनसे जब कभी पूछा जाता है उसका अपनी खोज से पूरा पता देनेमें वह कदापि आना कानी नहीं करते। इनके अतिरिक्त जिन तीनों विद्वन्मुकुटों के बंदनीय नामों का ऊपर उल्लेख किया गया है उनकी प्रशंसा करने में मैं असमर्थ हूँ।

इस पुस्तक के प्रकाशित होने में छापेकी भूलसे कुछ अशुद्धियां भी रह जाना स्वाभाविक है। जिन अशुद्धियों को देखकर सहज ही में असली शब्द का पता पा सकते हैं अथवा जिन अशुद्धियों की बारीकी विद्वानों को छोड-कर सर्व साधारण की दृष्टिमें आ नहीं सकती उन्हें मैंने ज्यों का त्यों छोड दिया है। हां ! कुछ अशुद्धियां ऐसी भी है जिनका यदि संशोधन न किया जाय तो कहीं २ अर्थ का अनर्थ हो जाना संभव है। जैसे पृष्ठ २७ में "कुमरानियां" की जगह "मरानियां" पृष्ठ ६९ में "दाग न लगे" के एवज "दागनल", पृष्ठ ७४ में "बादशाह के पास" के स्थानमें "बाद-शाह के", पृष्ठ १०७ में "मोताजदार" के बदले "मोत—जदार" पृष्ठ १४२ में "तरह" की जगह "तरह", पृष्ठ १६२ में "विभाजित कर" के एवज "विभाजित", पृष्ठ १६४ में "लिया था" के स्थान में "लिये था", पृष्ठ १७२ में "कबर" के बदले "कबरा", पृष्ठ १९१ में "मरद महेवावाल" की जगह "मरदम हेवा वाल" पृष्ठ २१२ में "सिपहशिकोह" के एवज "सिपहर शिकोह", पृष्ठ २२९ में "लगाव" के स्थानमें "लगान", पृष्ठ २३४ में "केशव राय" के बदले "केशव राम", पृष्ठ २५६ में "भूल" की जगह "मूल", पृष्ठ २५८ में केशव राय" की जगह "केशव राव", पृष्ठ २८६ में लाखेरीके निकट एक गांव तथा दौलाडा" के एवज "लाखेरी के निकट दौलाडा" और पृष्ठ ३०४ में "कौंसिल" के स्थान में "कैंसि" छप गया है। पाठक महाशय सुधार कर पढें। यहाँ एक बात यह भी लिखने योग्य है कि महाराव राजा बुधसिंह का चित्र "उम्मेदसिंह चरित्र" में छपना रह गया था इस लिये इसमें दिया गया है।

अंत में मेरा उन महाशयों से, जो निज जनकी जान मेरे ग्रंथों का आदर करते हैं अथवा उन सज्जन समालोचकों से जिनकी "नीर क्षीर विवेक बुद्धि" है हाथ जोड कर निवेदन है कि यदि इसमें कहीं भूलचूक रह गई हो तो मुझे सत्परामर्श देकर मेरे लिये भविष्यत् में पद दर्शक बनें।

यह पुस्तक संवत् १९६९ के पौष मास में ही समाप्त होगई थी किन्तु अनेक अनिवार्य कारणों से इसे प्रकाशन का सौभाग्य अब प्राप्त हुआ है।

बूंदी राजपूताना
अधिक वैशाख शुक्का ८
गुरुवार
विक्रमीय संवत् १९७२

हिन्दीका एक अकिंचन सेवक—
लज्जाराम शर्मा.

पुस्तक मिलनेका पता:—

खेमराज श्रीकृष्णदास,
श्रीवेङ्कटेश्वर स्टीम् प्रेस
बम्बई.

पंडित रामजीवन नागर
बालचन्द पाडा
बूंदी राजपूताना.

जिन ग्रंथों से " पराक्रमी हाडाराव " की रचना में सहायता लीगई उनकी नामावली।

(१) वंशभास्कर—कविराजा सूर्यमल्ल जी कृत बूंदी का इतिहास।

(२) वंश प्रकाश—पंडितवर गंगासहायजी कृत बूंदी के इतिहास का संक्षेप।

(३) एनल्स ऐंड ऐंटीक्विटीज़ आफ् राजस्थान—अंगरेजी में लेफ्टिनेंट कर्नल टाड् साहब रचित राजपूताने का इतिहास।

(४) राजस्थान का इतिहास—नं० ३ का हिन्दी अनुवाद। पंडित बलदेव प्रसाद मिश्र कृत। पहलाभाग १०)
"   "   दूसराभाग १०)

(५) ट्रैवल्स इन् दी मुगल एम्पायर—औरंगजेब बादशाह के समय फरांसीसी यात्री फ्रेंकोइस बर्नियर की यात्रा का इति वृत्त। अंगरेजी।

(६) जहांगीर नामा—(फारसी किताबोंका संक्षेप) मुंशी देवीप्रसादजी कृत

(७) शाहजहां नामा— "

(८) औरंगजेब नामा—पहला भाग " ।=)
" दूसरा भाग " ।=)
" तीसरा भाग " ॥)

(९) राजपूताने में प्राचीन शोध— " शिलालेखोंसे

(१०) यशवन्तसिंह चरित्र— "

(११) उम्मेदसिंह चरित्र—महता लज्जाराम शर्मा रचित। बूंदी नरेश महाराव राजा उम्मेदसिंहजी का चरित्र। १)

(१२) भूषण ग्रंथावली—कविशिरोमणि भूषणजी के ग्रंथ पंडित श्याम-विहारी मिश्र, गणेशविहारी मिश्र और शुकदेव विहारी मिश्र संपादित ।

(१३) ललित ललाम—कवीश्वर मतिराम कृत ।

(१४) छत्र प्रकाश—लालकवि विरचित ।

(१५) शत्रुशल्य चरित्र—संस्कृत में पंडित विश्वनाथ रचित ।

(१६) सुभाषितरत्नभांडागार—

(१७) हिन्दी नवरत्न—नं० १२ के संपादक मिश्र बंधुओं द्वारा संपादित ।

(१८) बूंदीराज चरितावली—ठाकुर हरिचरणसिंह चौहान रचित ॥)

जिन जिन ग्रन्थोंका मूल्य लिखागयाहै वह " श्रीवेंकटेश्वर " स्टीम प्रेसमें मिलते हैं.

महता लज्जाराम शर्म्मा रचित पुस्तकें:—

संख्या	नाम	प्रकाशक	मूल्य
(१)	श्रीमती महारानी विक्टोरिया का चरित्र	श्रीवेंकटेश्वर प्रेस बंबई	१।)
(२)	काबुल के अमीर अबदुर्रहमान खां	,,	॥)
(३)	उम्मेदसिंह चरित्र	,,	१)
(४)	बीरबल विनोद	,,	१।)
(५)	धूर्त रसिक लाल	,,	।)
(६)	स्वतंत्र रमा और परतंत्र लक्ष्मी	,,	।=)
(७)	हिन्दू गृहस्थ	,,	॥=)
(८)	आदर्श दम्पती	,,	॥=)
(९)	सुशीला विधवा	,,	॥=)
(१०)	बिगडे का सुधार	,,	।-)
(११)	विपत्ति की कसौटी (छप रही है)		
(१२)	पराक्रमी हाडाराव	रचयिता	
(१३)	विचित्र स्त्री चरित्र	श्रीवेंकटेश्वर प्रेस बम्बई	॥)
(१४)	भारतकी कारीगरी	,,	।)
(१५)	जुझार तेजा	नागरी प्रचारिणी सभा काशी	।)
(१६)	आदर्श हिन्दू (तीन खंडोंमें)	,,	२)
(१७)	सूर विनय	(बन रहा है)	
(१८)	चाणक्य	,,	
(१९)	गुरुचरितामृत	,,	

मेरी बनाई पुस्तकें भीः—

(१)	देशी बटन	श्रीवेंकटेश्वर प्रेस बंबई	।)
(२)	वीरमालोजीभोंसले	”	॥=)
(३)	जगदेव परमार	”	॥=)
(४)	सती चारित्र संग्रह प्रथम भाग	भारतजीवन प्रेस काशी	१)
(५)	” दूसरा भाग	”	१)

योग्य कमीशन पर मिलनेका पताः—

पंडित रामजीवन नागर

बालचंद्र पाडा

बूंदी राजपूताना.

सब पुस्तकोंका मिलनेका पता—

खेमराज श्रीकृष्णदास,

“ श्रीवेङ्कटेश्वर ” स्टीम्-प्रेस-बंबई.

श्रीहरिः ।

"नमस्त्रिभुवनोत्पत्तिस्थितिसंहारहेतवे ।
विष्णवेऽपारसंसारपारोत्तारणसेतवे ॥"

पराक्रमी हाडाराव ।

प्रथम खंड ।
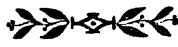
रत्नसिंह-चरित्र ।

अध्याय १.

पूर्वप्रसंग ।

अग्निकुल के चार आदि पुरुषों में से चाहुवानजी के वंश के अंतर्गत **हाडा** नाम की शाखा का वर्णन बूँदी के राजकवि कविराजा **सूर्यमल्लजीने** अपने बनाये "वंशभास्कर" में विस्तार से और बूँदी के भूतपूर्व अमात्य सर्वशास्त्रनिष्णात पंडित **गंगासहायजीने** "वंशप्रकाश" में संक्षेप से लिखा है । मेरे बनाये "उम्मेदसिंहचरित्र" में प्रसंगोपात्त इसकी कुछ २ छाया दी गई है । इस कारण यहां उन बातों को दुहराने की आवश्यकता नहीं दिखायी देती । केवल प्रसंग चलाने के लिये इतना अवश्य लिखदेना चाहिये कि इस कुल के **मूलपुरुष चाहुवानजी** से १९३ पीढी में और हाडा जाति के मूल पुरुष **अस्थिपालजी** से ३७ पीढी में बूंदी राज्य का विस्तार करने वाले राव **सुरजनजी** के पौत्र और राव भोजजी के पुत्र * राव राजा रत्नजी सदा समरविजयी राव राजा शत्रुशल्यजी के पूज्यपाद पितामह थे ।

---

* रावराजा की पदवी बूंदीनरेशों को राव सुरजनजी के समय से और महाराव राजा की पदवी बुधसिंहजी के समय से मिली है ।

रावरत्नजी का जन्म बूंदी के इतिहास के अनुसार संवत् **१६२९** में हुआ था और अपने पिता राव भोजजी का स्वर्गवास होने पर संवत् **१६६४** की आषाढ शुक्ला ४ को यह **बूंदी के राजसिंहासन** पर विराजे थे। इस कारण इन्होंने जब राज्यका भार ग्रहण किया इनकी उमर ३९ वर्ष की थी। जैसे यह पराक्रमी हुए, यह वीर हुए और जैसा इन्होंने नाम पाकर काम किया वैसा—कहीं उस से भी बढकर इनके पिता राव भोजजी और पितामह राव सुरजनजी ने किया था। उन दोनों का चारित्र भी इनकी तरह बहुत रोचक है, बहुत शिक्षाप्रद है और बहुत ही वीरता के गुणों से ओतप्रोत भरा हुआ है किन्तु यह चारित्र किसी दूसरे ग्रंथ में विस्तार से लिखने योग्य हैं। यहां मुझे हाडाराव रत्नसिंहजी, बावनसमरों में पराक्रम दिखाने वाले शत्रुशल्यजी, धर्मप्राण भावसिंहजी और रावराजा अनिरुद्धसिंहजी का चारित्र लिखकर मेरे रचित "**उम्मेदसिंहचरित्र**" से सिलसिला मिलादेना है।

पिता के समय में इन्होंने क्या २ पराक्रम किये सो इतिहास में लिखा नहीं है। हां! दो एक घटनाओं का उल्लेख अवश्य किया गया है। वह यह कि संग्राम में वीरता दिखा कर बादशाह अकबर से बावन परगने पाने वाले महात्मा सुरजनजी के उपार्जन किये सात परगनों के साथ काशी को बादशाह के कोपभाजन बन कर इन्होंने खो अवश्य दिया। खोया सही परंतु खोने में **पितृभक्ति** का परिचय दिया। उस समय दिखा दिया कि हिन्दू राजा—हाडा संतान पिता की आज्ञा को अपने हानिलाभ से कहीं बढकर समझती है। घटना संवत् १६४८ के लगभग की है। उस समय यह २३ वर्षके वय में पिता की ओर से काशी आदि परगनोंका शासन करते थे। पिता **राव भोजजी** बादशाह अकबर की ओर से लाहोर विजय के लिये गये हुए थे। जिस समय की यह घटना है बुन्देला जाति के क्षत्रियों ने गंगा, यमुना के मध्यवर्ती प्रदेश में बहुत लूट मार मचा कर बादशाह के अनेक थाने नष्ट भ्रष्ट कर डाले थे। अकबरने लाचार होकर इनका दमन करने के लिये शरीफखां नामक नामी सरदार

को प्रयाग का सूबादार नियत करके बहुत सी सेना के साथ भेजा। उसके प्रार्थना करने पर बादशाह ने चरणाद्रिगढ जो अब चुनार के नाम से प्रसिद्ध है उसे देदेने के लिये रत्नजी को आज्ञा दी। बादशाह ने केवळ इसतरह रत्नजी को ही लिखा हो सो नहीं किन्तु इनके पिता भोजजी के नाम भी लिख भेजा। उस समय यदि यह अकबर की आज्ञा माथे चढा-लेते तौ कोई हानि नहीं थी परंतु यह उन लोगों में से थे जो एक परमेश्वर को छोडकर पिता की आज्ञा के आगे एक अकबर क्या हजार अकबर की आज्ञा को तिनके के समान समझते थे। शरीफखां का भेजा हुआ बाद-शाह का फर्मान जब इनके पास पहुँचा तब इन्होंने स्पष्ट ही कह दिया कि:—

"बुंदेलों को दमन करने की आज्ञा बादशाह ने हमको क्यों न दी। क्या हम असमर्थ हैं जो हमारा किला शरीफखां को दिलाया जाता है?"

इन से ऐसा उत्तर पाकर शरीफखां स्वयं प्रयाग से इन्हें समझाने चुनार गया। वहां जाकर उसने इनको बहुतेरा समझाया—बहुतेरी कहा सुनी की। उसने कहा कि:—

"जब बादशाह की आज्ञा है तब तुम किला खाली क्यों नहीं करते हो? पिता की आज्ञा न होने की आड बीच ही में क्यों लगाते हो? बादशाह तुम्हारे पिता से भी बडे है। उनकी आज्ञा से किला देदो।"

चाहे शरीफखां ने शिष्टाचार के विचार से इनसे तुम की जगह आप ही क्यों न कहा हो परंतु कविराजा सूर्यमल्लजी ने इस जगह रत्नजी का संबोधन शरीफखां की ओर से "तू" कहकर कराया है। ऐसी स्थिति में होसकता है कि इन्होंने इस "तू" शब्द से क्रुद्ध होकर अथवा पिता की आज्ञा न पाने से ही सही परंतु उसी समय शरीफखाँ का पेट कटार घूँसकर फाडडाला। बस यही कारण उन परगनों को छीन लेने का हुआ। जिस समय राव भोजजी इस घटना को सुनकर दिल्ली आये बादशाह अकबर ने उन्हें उपालंभ भी कम न दिया। यहां तक कहदिया कि:—

"तुम्हारे पुत्र के अपमान से मुझे क्रोध तो ऐसा आया था कि मैं उसे अवश्य मरवा देता परंतु तुम्हारे पिता के और तुम्हारे सुकर्मों ने मुझे ऐसा काम करने से रोकदिया।"

खैर जो कुछ होना था सो होगया। आगे जो कुछ हुआ उसका संबन्ध भोजजी के चारित्र से है रत्नजी के से नहीं क्योंकि इसके अनंतर "वंशभास्कर" के मत से बादशाह **अकबर का देहान्त** संवत् १६६१ में और जोधपुरनिवासी राजपूताना के प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता मुन्शी देवीप्रसादजी के "जहांगीरनामे" के अनुसार संवत् १६६२ की कार्तिकशुक्ल १५ को यह घटना हुई। अकबर के देहान्त होने बाद भारतवर्ष के साम्राज्य का राजमुकुट उसके पुत्र सलीमने धारण किया और नाम अपना जहांगीर रक्खा। राव रत्नजी का इतिहास इसी बादशाह के समय के इतिहास का एक अंश है।

जिस समय की एक घटना का उल्लेख ऊपर किया गया है उसीके लगभग एक घटना,—नहीं इसे **दुर्घटना** कहना चाहिये, और होगई। बात इस तरह पर है कि रत्नजी के पिता भोजजी के छोटे भाई राय मल्लजी के पुत्र रामचंद्रजी की बुद्धि पर पत्थर पडगये। वह पहले हीसे बूंदी राजसिंहासन से विरोध कर चुके थे। समय पाकर वह भी शरीफखां में जा मिले थे। उन्होंने शरीफखां के मरने पर रत्नजी के विरुद्ध शस्त्र उठाया। उसके पुत्र का साथ देकर बूंदी राज्य का काशी में राजमन्दिर के नाम से जो मोहल्ला है वह लूटलिया, बूंदी आकर यहां भी लूट खसोट मचाई और इस कारण रत्नजी ने इस कुलद्रोही का मारना ही उचित समझ कर उसका काम तमाम कर दिया।

राव रत्नजी के दो पितृव्य थे। एक का नाम **दूदा** (दुर्जनशल्य) जी और दूसरे का नाम **राय मल्लजी**। इनके भाई तीन और बहनें भी तीन ही थीं। रत्नजी के एक भाई का नाम हृदय नारायणजी था जिनके वंश वाले हरदावत कहलाते हैं। दूसरे केशवदासजी जिनके केशवदास भोज पोता और तीसरे मनोहरसिंहजी। रत्नजी के विवाह ९ हुए और इनसे चार पुत्र

और दो कन्यायें। बडे पुत्र **गोपीनाथजी**, मझले माधवसिंहजी, तीसरे हरिसिंहजी और चौथे जगन्नाथ सिंहजी। इनमें गोपीनाथजी के पुत्र **शत्रुशल्यजी** बूँदी के विजयी नरेश थे और **माधवसिंहजी 'कोटा'** राज्य के संस्थापक। गोपीनाथजी के ग्यारह विवाह से तेरह पुत्र—शत्रुशल्यजी, इन्द्रशल्यजी, वैरीशल्यजी, राजसिंहजी, मुहकमसिंहजी, महासिंहजी, उदयसिंहजी, सूरसिंहजी, श्यामसिंहजी, केसरीसिंहजी, कनकसिंहजी, नगराजसिंहजी और रामसिंहजी हुए। कोटे वाले माधवसिंहजी के वंशधर माधाणी, हरिसिंहजी के बंशवाले हरीजी के हाडा और जगन्नाथसिंहजी की संतान जगन्नाथोत कहलाती है। और इसी तरह महाराज कुमार गोपीनाथजीके पुत्रोंमें इन्द्रशल्यजी के इन्द्रसालोत, वैरीशल्यजी के वैरीसालोत, मुहकमसिंहजी के मुहकमसिंहोत, और महासिंहजी के महासिंहोत कहलाते हैं। यह राव सुरजनजी के वंश की शाखाओं का संक्षेप से दिग्दर्शन है। इनमें कोटा राज्य अलग स्थापित होने और कितनी ही कोठरियां उसमें जा मिलने का हाल आगे जाकर समय पर लिखा जायगा।

पिता के परलोक जाने पर जब रत्नजी ने बूंदी राज्य पाया तब इन्होंने पहला काम शायद यही किया कि अपने चचा राय मल्लजी के स्वर्गवास हो जाने और उनके पुत्र रामचन्द्रजी के मारे जाने से अपने चचेरे भाई बुद्धिचन्द्रजी को सारथल जागीर देकर अपना लिया और इस तरह उनका बिगडा हुआ मन शांत करने में समर्थ हुए।

इस इतिहास को कुछ आगे बढाने से पहले यहां यह भी लिखदेने की आवश्यकता है कि अकबर बादशाह का सिंहासन सलीम को क्यों कर प्राप्त हुआ। कर्नल टाड साहब अपने "एनल्स ऐंड एंटीकीटीज़् आफ राजस्थान" में बूंदी के किसी इतिहास के आधार पर अकबर की मृत्यु के विषय में एक विचित्र घटना का उल्लेख कर गये हैं। उन्होंने लिखा है कि: —

"वह (अकबर) राजा **मान को जहर** की गोलियां खिला कर मार डालना चाहता था। राजा का संदेह दूर करने के लिये उसने दूसरी

गोलियां भी ऐसी तैयार करवाईं थीं जिनमें विष का प्रयोग नहीं किया गया था परंतु अकबर ने घबडाकर जहरीली गोलियां आप खालीं और अच्छी राजा को खिला दीं। अकबर (इसतरह) **मरगया।"**

मैं नहीं कह सकता कि इसमें कहां तक सत्यता है और साहब ने इसे किस इतिहास के आधार पर लिखा है क्यों कि जो इतिहास अब तक मेरे देखने में आयें हे उनमें इस प्रकार की घटना का कहीं उल्लेख नहीं हैं। हां अकबर की मृत्यु के बाद सलीम को राज्य मिलने का हाल "वंशभास्कर" में कविराजा सूर्यमल्लजी ने जो लिखा है उसका सारांश यह है कि:—

"संवत् १६६१में अकबर का देहान्त होगया। कितने ही कहते हैं कि अकबर के तीन पुत्र थे, सलीम, परवेज और दाना शाह। इनमें परवेज जयपुर नरेश भगवन्तदासजी का दौहित्र था। सलीम की अनीति देखकर आमेरनरेश परवेज को गद्दी दिलाना चाहते थे। किन्तु पिता की विद्यमानता में पुत्र को गद्दी देना अयोग्य समझ कर **भोजजी सामने हुए** और बघेला, रामगढ, श्रीनगर, दो नव्वाब और नूरजहां के पिता—ये साथी हुए। इसका परिणाम यह हुआ कि सलीम को गद्दी मिली।"

इतना लिखने के साथ ही परवेज अकबर का पुत्र होने में "वंशभास्कर" के कर्ता ने भ्रम किया है। उन्होंने मान लिया है कि परवेज सलीम का पुत्र था। हां सलीम का ही पुत्र और तब ही वह इस वाक्य में पिता की उपस्थिति में पुत्रको गद्दी देना भोजजी के मुख से अयोग्य बतलाते हैं। मेरी समझ में परवेज नहीं परवेज है। खैर कुछ भी हो यह चरित्र जहांगीर बादशाह का नहीं है राव रत्नजी का है इसलिये प्रसंगोपात्त यह घटना लिख देने के सिवाय यहां इस बात की विशेष खोज करने की आवश्यकता नहीं किन्तु इस घटना से इतना पता अवश्य लगता है कि पिता की मृत्यु के बाद जहांगीर को दिल्ली का राजसिंहासन बडी कठिनता से प्राप्त हुआ था। इस विषय में एक बात लिखना और शेष रह गया है। बादशाह जहांगीर के रोजनामचे में जिसका संक्षेप जोधपुरनिवासी मुन्शी देवी-

प्रसादजी ने "जहांगीरनामा" के नाम से बना कर छपवाया है लिखा है कि:—

"उस वक्त दरबार में राजा मानसिंह और खान आजम कर्तकर्ता थे। खुसरो राजा का भानजा और खान का जमाई था। बादशाह के बाद इसलिये ये खुसरो को तख्त पर बिठाना चाहते थे। जो सलीम को नहीं चाहते थे वे सब इनके पेट में थे। और इसी लिये सलीम ने पिता के पास आना जाना छोड दिया था किन्तु सलीम के पुत्र खुर्रम ने दादा की पाटी नहीं छोडी।.... जो सलीम की जगह खुसरो को बिठलाना चाहते थे वे अपनी बात चलती न देखकर ... सलीम की सेवामें आये।"

"वंशभास्कर" की घटना में और इस लेख में केवल नाम का अंतर है। उसके अनुसार मानसिंहजी परवेज को गद्दी दिलाना चाहते और इसके अनुसार खुसरो को। ये दोनों सलीम के बेटे थे। इस विषय में कुछ झगडा अवश्य हुआ और **भोजजी ने सलीम** को राज्य दिलाया। यह इसका सार है।

अध्याय २.

जहांगीर बादशाह।

पिताका राज्य पाकर उसका प्रबंध अपनी इच्छा के अनुसार करके राव **रत्नसिंहजी** बादशाह जहांगीर को प्रसन्न कर लडाई के मैदान में अपने हाथ दिखानेके लिये अवश्य ही **दिल्ली गये** और इनके देरी से उपस्थित होने पर राजराजेश्वर ने इन्हें मीठा सा उपालंभ भी दिया परन्तु यह अपने स्वामी का चरित्र देख कर प्रसन्न नहीं हुए। जहांगीर के चाल चलन के विषय में टाड साहबने अपनी किताब में कुछ उल्लेख नहीं किया है और मुन्शी देवी प्रसादजी का "जहांगीरनामा" जब बादशाह के रोजनामचे की छाया है तब उसमें भी इस बात का इशारा होने से वास्ता क्या किंतु "वंशभास्कर" में लिखा है कि:—

"नौरोज के अवसर पर अयाज की लडकी का नख सिख से शृंगार, उसका रूप लावण्य देखकर **सलीम** उस पर **मोहित** होगया। जब तक

इसका विवाह नहीं हुआ था यह उसपर मरा मिटता था । वह भी इसे बहुत ही चाहती थी किन्तु अयाज (एतमादुद्दौला) ने यह बात मंजूर न की । अपनी बेटी का विवाह शेर अफगन से कर दिया । दोनो यों ही मन मार कर रह गये । रह अवश्य गये परन्तु इनका प्रेम चुप न रहा । नौरोज के अवसर पर दोनों के मिल कर आपस में पहले आंखों ही आंखों से और फिर इशारे किनाये से प्रेम संभाषण हुआ । प्रेम का पूजन करने के लिये प्रियतम का प्राणप्यारी से नगर के निकट किसी बाग में मिलाप हुआ । मिलाप भले ही हो किन्तु नौरोज का जलसा देखने के लिये उस समय जो रमणियां सज धज कर आती थीं उन्हें उनके पतियोंकी आज्ञा से पायजामें बहुत तंग पहनने होते थे । तंग पायजामा पहना कर वे नाडे पर ताला डाल दिया करते थे (ताकि यदि खोला जाय तो उन्हें विदित हो जाय) बस इसलिये शेर अफगन ने भी ताला डाल दिया था । ताला डालकर इस तरह उसने चाबी अपने पास रखली थी इस कारण मिलने पर भी भोग विलास करने अथवा अपनी पाप वासना तृप्त करने में असमर्थ थे । इस कारण उस रमणी ने एक पेडकी शाखा से लटक कर पेट लफाया और सलीम ने तब इस ढंगसे उसका पायजामा उतार लिया कि ताला ज्यों का त्यों लगा रहा । इसके अनंतर पायजामा जिस तरह खोला गया था वैसे ही पहना दिया गया और यों इनकी रमणलीला समाप्त हुई । इस प्रकार की अनेक अनीतियों से ही उसने पिता को अपने ऊपर नाराज कर दिया था ।''

गत प्रकरण में सलीम के सिंहासन मिलने के विषयमें बूंदीके इतिहास ''वंशभास्कर'' से लेकर जो कुछ लिखा गया है उसके अनंतर कविराजा सूर्यमल्लजी लिखते हैं कि:—

''इस तरह राजा मानसिंहजी की शोची हुई अनीति चाहे न होने पाई और हाडों ने ज्येष्ठ पुत्र को गादी दिलाकर धर्म की, नीति की रक्षा भी करदी परंतु सलीम पापी कुमार्ग से प्रेम करने वाला था । उसने

अपनी प्रियतमा के पति **शेर अफगन का घात** करने के बहुतेरे छल किये। इस बात को जानकर यद्यपि वह कई बार बचगया किन्तु जब लाखों सेना के अधीश्वर का कोप हो तब बचना कै दिन ? अंतमें शेर अफगन मारा गया और इस तरह काम के वश होकर जहांगीर ने **उसकी स्त्री** को छीन लिया। इसके पिता अयाज को बादशाह ने अपना वजीर बनाकर सालों को बडे २ पद प्रदान किये। अपने बडे पुत्र खुसरो से रुष्ट होकर उसे कैद कर दिया।''

केवल इतना ही क्यों ''वंशभास्कर'' में फिर आगे चलकर लिखा है किः—

''इस प्रकार से राव रत्नजी अपना राज्य शासन ठीक करके जिस समय दिल्ली गये **सलीम ने अपना नाम जहांगीर** धारण करके सलीमगढ बनवाया। अयाज की तनया को उसने घर में डालकर उसका नाम नूर-जहां रक्खा किन्तु चार वर्ष तक उसके पति शेर अफगन का वध कराने की लज्जा से बादशाह उस से न मिल सका। परन्तु फिर जब मिला तब उसने **नूरजहांके पैर चूमकर** उससे क्षमा मांगी और इस तरह उसे मनाकर राजी कर लिया। यह घटना संवत् १६६९ की है। उस रमणी ने भी बाजीगर जिस प्रकार बंदर को नचाता है उसी तरह **बादशाह को** अपने मोहपाश से बांधकर **नचाया**। उसका पिता अयाज वजीर, उसका भाई आसिफखां प्रधान सेनापति बनाया और दूसरे को और अधिकार देकर तीसरे मुहब्बतखां को सूबे संभालने पर नियत किया गया। इधर बाहर इस प्रकार से नूरजहां के पिता ने अपना दबदबा जमाया और उधर भीतर जनाने में नूर जहांने (सलीम की एक बार शिकार बन कर जन्म भर तक उसे अपनी शिकार बना लिया) उसकी स्वामिनी बनकर आजीवन उसे अपना **दास बना लिया**। ऐसे एक की जगह दो राहुओं ने उसको ग्रसलिया। प्रजा भी बादशाह को ग्रस्त जान कर दुःखित न हुई क्यों कि काम इन्होंने संभाल लिया था। अब बादशाह को नूरजहां विना एक क्षण भी चैन न था। किसीने यदि कुछ उससे हित की बात भी कही तो उसे चुगली मानकर उससे नाराज हुआ। यों उसने जोधपुर नरेश सूरसिंहजी की बाई—

अपनी **जोधपुरी बेगम** के पास जाने के लिये भूल कर भी विचार न किया। नूरजहां जब रजस्वला होती तब भी यह औरोंके पास न जाता। खैर एक दिन डरता २ जोधपुरी बेगम के पास गया। गया सही परंतु दो घडी से अधिक ठहरने न पाया। पति के जाने पर पत्नी ने उसका चाहे जी खोलकर आदर किया किन्तु एक की जगह दो प्याले काच के लाकर उनमें मद्य डाला। दो प्याले अलग २ देखकर बादशाह ने कारण पूंछा और जब बेगमने हंसकर–"**हां दो ही चाहिये**" कहा तब जहांगीर वहांसे रूठकर चला आया तब से फिर उसके यहां कभी गया नहीं। जहांगीर को नूरजहां के प्रेम में अब दिन रात की सुधि नहीं। जो नूरजहां सिखाये सो ही डरके मारे काम और जब राज दरबार में आवे तब भी नूरजहां बीच में परदा डालकर साथ की साथ। जब तक दोनों के शरीर का परस्पर स्पर्श न होता रहै **जहांगीर को चैन** कहां ?"

बूंदी के इतिहास "वंशभास्कर" के इस लेखका–जहांगीर के नूरजहां पर आसक्त होने का, उसके पति शेर अफगन को मारकर उसे अपने घर में डाल लेने का, उसके वश होजाने का वर्णन जब भारतवर्ष के अनेक इतिहासों में है तब इसके विषय में विशेष विचार करने की आवश्यकता नहीं है किन्तु जोधपुरी बेगम के विषय में मतभेद अवश्य है। सुप्रसिद्ध इतिहास जानने वाले मुन्शी देवीप्रसादजी के "जहांगीरनामा" में स्वयं जहांगीर ने अपने चार विवाह होना बतलाया है। एक राजा भगवन्त दास (अमेर नरेश) की बेटी से, दूसरा उदयसिंह (?) की लडकी से, तीसरा जनेखां कोका के चचा ख्वाजा हसन की दुहिता से और चौथा केशव मारू की कन्या से। मुन्शीजी ने इनमें जोधपुरी बेगम का नाम नहीं लिखा इसलिये इस **घटना में संदेह** अवश्य होता है किन्तु कविराजा सूर्यमल्लजी भी ऐसे आदमी नहीं थे जो यों ही अटकल के घोडे दौडादें और न "वंशभास्कर" की टिप्पणी में बारहटकृष्णसिंहजी ने इस बात का खंडन किया है क्योंकि जोधपुर नरेश सूरसिंहजी की लडकी से बादशाह की निकाह यदि न हुई होती तो और जगह की तरह उन्हें भी इस बात का खंडन करना चाहिये था। खैर कुछ भी हो मुन्शीजी के

"जहांगीरनामे" से जहांगीर पर नूरजहां के अधिकार, बादशाह की विलासिताका और उसकी चालढाल का जहांतक पता लगता है उसका सारांश यह है। इसे लिखने पूर्व यहां यह जतला देना आवश्यक है कि नूरजहां का पिता जिसका नाम सूर्यमल्लजी ने अयाज लिखा है "जहांगीरनामे" के अनुसार **मिरजा गयास** तेहरानी था और एतमादुदौला की उसे पदवी दीगई थी।

संस्कृत के कवि प्राणप्यारी को हृदयेश्वरी कहा करते हैं सो नूरजहां वास्तव में जहांगीर के तन की, मन की, धनकी और यहां तक कि सर्वस्व की स्वामिनी थी और इसी कारण यदि दिल्ली के साम्राज्य की भी मालिक होगई तो इसमें आश्चर्य क्या हैं! मुन्शीजी के लेख के अनुसार यह हाल इस तरह है कि:-

"**नूरजहां का दादा** ख्वाजा मुहम्मद शरीफ तेहरानी था जो खुरासान के हाकिम का वजीर था। फिर ईरान के बादशाह तेहमास्प सफवी का नौकर होकर मर्व के सूबे का वज़ीर हुआ। उसके आका ताहिर और मिरजा गयास बेग—दो बेटे थे। गयास बाप के मरे पीछे दो बेटे और एक लडकी को लेकर हिन्दुस्थान आया। कंदहार में उसके एक लडकी और हुई। वह फतहपुर पहुंच कर अकबर बादशाह की खिदमत में रहने लगा। बाहशाह ने उसे लायक देखकर बादशाही कारखाने का दीवान कर दिया। वह बडा मुन्शी, हिसाबी और कवि था। फुरसत का वक्त कविता में बिताता और काम वालों को खूब राजी रखता था। मगर रिशवत लेने में बडा बहादुर था।"

"जब अकबर बादशाह पंजाब में रहता था तो अली कुलीबेग अस्तंजलू ईरान के बादशाह दूसरे इस्माईल के पास से आकर नौकर हुआ और तकदीर से बादशाह ने उसकी शादी मिरजा गयासबेग की उस लडकी से करदी जो कंदहार में पैदा हुई थी। फिर अलीकुलीबेग जहांगीर बादशाह के पास जा रहा और शेर अफगनखां के खिताब से सरफराज हुआ।"

" जब जहांगीर गद्दी पर बैठा तो उसने मिरजा गयास को **एतमादुद्दौला** खिताब देकर आधे राज्य का दीवान बना दिया और शेर अफगनखां को बंगालेमें जागीर देकर वहां भेज दिया। उसने बंगाले में जाकर दूसरे ही साल वहां के सूबेदार कुतुबुद्दीनखां को मारा और आप भी मारा गया। वहांके

कर्मचारियों ने मिरजा गयास की लडकी को जहांगीर के पास भेज दिया। जहांगीर कुतुबुद्दीनखां के मारे जाने से बहुत नाराज हुआ क्योंकि यह उसका धायभाई था। इससे उसने **वह लडकी** अपनी सौतेली माता रुकैया सुलतान को दे दी। वहां वह कई वर्ष **साधारण दशा** में रही। जब उसका भाग्य उदय होने पर आया तो एक रोज नौरोज के जशन में जहांगीर की नजर उस पर पड गई और वह **पसंद आगई**। बादशाह ने उसे अपने महल की लौंडियों में दाखिल कर लिया। फिर तो जल्द २ उसका दरजा बढने लगा। पहले नूरमहल नाम हुआ फिर **नूरजहां बेगम** कहलाई। उसके सब घर वाले और नौकर चाकर बडे २ पदों और अधिकारों पर पहुंच गये। उसका बाप एतमादुद्दौला कुल मुखतार और बडा भाई अबुलहसन एतकादखां का खिताब पाकर खान सामान हुआ। एतमादुद्दौला के गुलामों और ख्वाजा सराओं तक ने खान और तरखान तक के खिताब पाये। दिलाराम दाई जिसने बेगम को दूध पिलाया था हाजी कोका की जगह औरतों की सदर (दानाध्यक्ष) हुई। औरतों को जो जीविका मिलती थी उसकी सनद पर वह अपनी मुहर करती थी जिसको सदरुस्सुदूर (प्रधान दानाध्यक्ष) भी मंजूर करता था।

"खुतबा तो बादशाह के नाम का ही पढा जाता था बाकी जो कुछ बादशाही की बातें थीं सब नूरजहां बेगम को हासिल होगई थीं। वह कुछ अरसे तक झरोके में बादशाह की जगह बैठती और सब अमीर उसको सलाम करने आते और **उसके हुक्म पर कान** लगाये रहते थे। यहां तक कि **सिक्का*भी उसके नाम का** चलने लगा था जिसका अर्थ यह था— "जहांगीर बादशाह के हुक्म से और नूरजहां बादशाह के नाम से सोने ने (?) सो गहने पाये अर्थात् सोगुनी इज्जत पाई"। फरमानों के ऊपर भी **बेगम का तुगरा** इस प्रकार होता था-- "हुक्म उलियतुल आलिया नूरजहां बेगम बादशाह।"

"यहां तक हुआ कि जहांगीर बादशाह का **नाम ही नाम** रह गया। वह कहा भी करता था कि मैंने सलतनत नूरजहां बेगम को **दे दी है**। मुझे

* सन् २१ जलूस और हिजरी सन् १०३०।

सिवा एक सेर शराब और आध सेर गोश्त के और कुछ नहीं चाहिये। बेगम की खूबी और नेकनामी की बात क्या लिखी जाय। उसमें बुराई थोडी और भलाई बहुत थी। जिस किसीका काम अड जाता और वह बेगम से आकर अर्ज करता तो उसका काम निकाल देती थी और जो कोई उसकी दरगाह की पनाह में आ जाता फिर उस पर कोई **जुल्म नहीं** कर सकता था। उसने अपनी साहबी में कोई ५०० **अनाथ लडकियों** का विवाह कराया और उनको यथायोग्य दहेज भी दिया। नूरजहां के घराने से लोगों को बहुत कुछ लाभ पहुंचा।''

''वंशभास्कर'' के लेखमें और ''जहांगीरनामे'' के लेख में जो छोटी मोटी बातों का अंतर है उस पर विचार करने की तो कोई आवश्यकता नहीं किन्तु एक बहुत बडा भेद इस बात का है कि एक के मत से नूरजहां के व्यभिचार में मत्त होकर जहांगीर ने शेर अफगन को मरवा डाला और दूसरा उसका बंगाल में कुतुबुद्दीनखां को मार कर मारा जाना और बहुत वर्षों बाद नूरजहां का शाही हरम में दाखिल होना मानता है। दोनों में सत्य कौन हैं सो भगवान् जाने किन्तु जब अनेक इतिहासकारों का झुकाव पहले मत की ओर है, जब सूर्यमल्लजी एक प्रामाणिक व्यक्ति थे और विना पूरे अनुसंधान के यों ही गप्प हांकदेनेवाले नहीं थे और मुन्शी देवीप्रसादजी ने जो कुछ लिखा वह जहांगीर बादशाह के रोंजनामचे के आधार पर और उसमें जहांगीर ने इस बात को छिपाया हो—ऐसा भी संभव है किन्तु मुन्शीजी भी बिना छान वीन के लिखने वाले मनुष्य नहीं हैं इसी लिये मैंने ऊपर इस बात पर संदेह प्रकट किया है।

कुछ भी हो परन्तु इस लेख से यह परिणाम नहीं निकाल लेना चाहिये कि जहांगीर में दोष ही दोष भरे थे। ऊपर जो कुछ लिखा गया है **आईने की दूसरी पृष्ठ है** जब इस पोथी में दर्पण की पहली पृष्ठ पर दृष्टि डाली जायगी तो पाठक पाठिकाओं को मालूम होजायगा कि बादशाह जहांगीर में **गुण कितने थे।** मुन्शी देवीप्रसादजी अपनी इसी किताब में लिखते हैं कि:—

''सिंहासनारूढ होते ही जहांगीर बादशाह ने पहला हुक्म **न्याय की सांकल** बांधने का दिया जो चार मन खरे सोने की बना कर किले में शाहबुर्ज

से लटकाई गई थी। उसका दूसरा सिरा कालिन्दी के कूल पर पत्थर के एक स्तंभ पर रुपा था। यह सांकल तीस गज लंबी थी। उसके साठ घंटे लगे थे कि यदि किसीका न्याय अदालत में न हो तो बादशाह को सूचना करने के लिये उसको हिलादिया करे। फिर बादशाह ने ये **बारह हुक्म** अपने तमाम मुल्कों में कानून के तौर पर काम में लाने के वास्ते भेजे थे।

"१–जकात (सायर का महमूल) तमगा (मुहराना) और मीर बहरी (नदियों और समुद्र का कर) तथा और कितने ही **कष्टदायक कर** जो हर एक सूबे और सरकार के जागीर दारों ने अपने लाभ के लिये लगा रक्खे हैं **सब दूर** किये जावैं।

२–जिन रास्तों में चोरी लूट मार होती हो और जो बस्ती से दूर हों वहांके जागीरदार **सराय** और मसजिदें बनावैं, कुए खुदवावैं, जिससे सराय में रहने से बस्ती होजावें। यदि वह जगह खालिसे के पास हो तो वहांका कर्मचारी काम करावे। व्यापारियों का माल रास्ते में बिना उनकी मरजी और आज्ञा के न खोला जावै।

३–बादशाही मुल्कों में जो कोई हिन्दू या मुसलमान मर जावै तो उसका **माल असबाब** सब उसके वारिसों को दे देवैं कोई उसमें से कुछ न लेवै और जो वारिस न हो तो उस माल की संभाल वास्ते पृथक् भंडारी और कर्मचारी नियत कर दे। वह धर्म के कामों अर्थात् मसजिदों, सरायों, कुओं और तालावों के बनाने तथा टूटे फटे पुलों के सुधारने में लगाया जावे।

४–**शराब** और दूसरी मादक चीजें न कोई बनावै और **न बेचे**। इस जगह बादशाह लिखता है कि मैं आप शराब पीता हूँ। १८ वर्षकी अवस्था से अब तक ३६ सालका हुआ हूँ सदा पीता रहाहूँ। पहले २ तो जब अधिक तृष्णा उसके पीने की थी कभी २ **बीस २ प्याले** दुआतिशा पी जाता था। जब होते २ उसने मुझे दबा लिया तो मैं कम करने लगा। ७ वर्ष में १५ प्यालों से ५–६ तक घटा लाया हूँ।.:....

५–किसीके घर को सरकारी न बनावें।

६-किसी पुरुष के **नाक कान** किसी अपराध में न काटे। और मैं भी परमेश्वर से प्रार्थना कर चुका हूँ कि इस दंड से किसीको दूषित न करूंगा।

७-खालिसे के और जागीरदार के कर्मचारी **प्रजा की पृथ्वी अन्याय** से न लें और न आप उसको बोवैं।

८-खालिसे और जागीरदारों के कर्मचारी जिस परगने में हों वहांके लोगों में **विना आज्ञा संबंध** न करैं।

९-बडे २ शहरों में **औषधालय** बना कर रोगियों के लिये वैद्यों को नियत करैं और जो खर्च पडै वह सरकारी खालिसे से दिया करैं।

१०-रवीउल अव्वल महीने की १८ तारीख से जो मेरे जन्म की तिथि है मेरे पिता की प्रथा के अनुसार प्रति वर्ष एक २ दिन गिन कर इन दिनों में **जीव हिंसा न करैं** और प्रत्येक सप्ताह में भी दो दिन हिंसा न हो। एक तो गुरुवार को जो मेरे राज्याभिषक का दिन है और दूसरे रविवार को जो मेरे पिता का जन्म दिवस है।

११-यह स्पष्ट आज्ञा है कि मेरे **पिता के सेवकों के** मनसब और जागीरें ज्योंकी त्यों बनी रहैं बरन् यथायोग्य हर एकका पद बढाया जावै और सब मुल्कों के माफीदारों की माफियां उन पट्टों के अनुसार जो उनके पास हों **स्थिर रहैं** और मीरान सदरजहां (धर्माधिकारी) पालना करने के योग्य लोगों को नित्य प्रति **मेरे सम्मुख** लाया करैं। बादशाह लिखता है कि मैंने यथायोग्य सब के मनसब बढाये। १० के १२ से कम नहीं और अधिक १० के ३० और ४०।......

१२-सब अपराधी जो वर्षों से किलों और जेलखानों में कैद हैं **छोड दिये जावैं**"

न्याय की सांकल लटकाने और इन आज्ञाओं के प्रचार के विषय में किसीका मत भेद नहीं है और इन बातों का भारतवर्ष के और २ इतिहासों में अनुमोदन है इसलिये इस विषय में न तो अधिक लिखने की आवश्यकता

है और न इन बातों का इस पुस्तक से विशेष संबंध **है क्योंकि** यहां जो कुछ जहांगीर के विषय में लिखा गया है वह केवल प्रसंग आ पडनेसे। इसमें संदेह नहीं कि बादशाह जहांगीर जैसे नामी विलासी था वैसे ही **दानी भी था।** वह अपनी वर्षगांठ पर-या यों ही लाखों रुपया दान करता था—इनाम में देता था। जैसे वह आलादर्जे का शराबी था वैसे ही उसे जहां तक बन सकै किसीका **जी दुखाना** पसंद नहीं था। वह बडे २ अपराधियों के अपराध क्षमा कर दिया करता था। उसकी मृत्यु अधिक शराब पीने ही से हुई। और मुन्शी देवीप्रसादजी के "जहांगीरनामे" में बादशाह स्वयं एक जगह लिखता है कि—"मैं (कांगडे का) किला देखने गया और हुक्म दिया कि काजी, मीर अदल और मौलवी साथ रह कर मुसलमानी धर्म की रीति पूरी करैं। बांग, नमाज, खुतवा और **गोवध** आदि जो किला वसने से आज तक नहीं हुए थे मैंने अपने **सामने कराये।......"** कुछ भी हो जहांगीर का जन्म संवत् १६२६ की आश्विन कृष्णा ९ को सीकरी में हुआ था और वह ३६ वर्ष की उमर में मार्गशीर्ष कृष्णा १ गुरुवार को संवत् १६६२ में दिल्ली के सिंहासन पर आरूढ हुआ। उसका पूरा नाम नूरुद्दीन जहांगीर बादशाह था।

अध्याय ३.

शाहजादा खुर्रम।

गत अध्याय में बूंदी नरेश **राव रत्न**सिंहजी का दिल्ली जाकर बादशाह की सेवा में उपस्थित होना और देरी से जाने पर जहांगीर का उन्हें **उलाहना** देना लिखा गया है। जिस समय बादशाह ने इन्हें उपालंभ दिया इन्होंने उस समय निवेदन कर दिया कि—"मेरे राज्यके कितने ही दुष्टोंका दमन करने में मुझे समय अधिक लग गया" परन्तु उस समय कोई विशेष घटना ऐसी नहीं हुई जो यहां उल्लेख करने योग्य हो। कवि राजा सूर्यमल्लजी अपनी पुस्तक में बूंदी का इतिहास लिखते २ बीच २ में प्रसंग लाकर

सामयिक घटनाओं का भी दिग्दर्शन कर गये हैं उनके मत से ये उस समय की बातें हैं जब जोधपुर नरेश सूरसिंहजी का स्वर्गवास होकर गजसिंहजी उनके उत्तराधिकारी हुए थे। बादशाह ने रत्नसिंहजी और गजसिंहजी को एक १ खासा हाथी दिया और जोधपुर नरेश को अपना साला मान कर एक घोडा विशेष दिया।

सूर्यमल्लजी के मत से बादशाह अकबर के समय संवत् १६५६ में **अंग्रेजों ने** भारतवर्ष में आकर माल की खरीद बिक्री में जब अपनी खूब **सत्यता जमा ली** तब संवत् १६६८ में इन्होंने बादशाह जहांगीर की सेवा में उपस्थित होकर घडियां, दूरबीन, आईने, काच के पात्र इत्यादि सामान नजर किया और इसी तरह नूरजहां, नव्वाब, राजा लोग और वजीर को भेंट देकर प्रसन्न करने के अनंतर अपना काम निकाल लिया। उन्होंने मूल्य देकर सूरत, उसके उत्तरकी खाडी, घोघा बंदर, खंभात आदिका **पट्टा लिखवाया** और अहमदाबाद समेत इन चारों नगरों में **अपनी कोठियां** बनवा लीं। सौराष्ट्रदेश से तापी नदी तक नैर्ऋत्य कोण को अपनी सीमा निर्द्धारित की। यहां ये लोग पुत्र, मित्र, कलत्रों सहित रहने लगे और रहकर इन्होंने अपना खूब **व्यापार बढाया**। इस प्रकार इन्होंने आर्य नरेशों को, मुसलमानों को और औरों को बहुत सी भेंटें दे २ कर उनके मन जीत लिये अथवा उनके मन, वाणी, धर्म और अधर्म की थाह पाली। और ऐसे लाखों रुपया कमाने के साथ इन बातों को लिख २ कर विलायत भेजते रहे। यह घटना जब प्रसंगोपात्त लिखी गई है तब इसका दूसरे इतिहासों से मिलान करने की आवश्यकता नहीं। हां! यह बात ध्यान में न आई कि जहांगीर के समय में सूरत प्रभृति नगरों में कोठियां खोलने का अंग्रेजों को पट्टा मिलने का समाचार सत्य होने पर भी न मालूम जहांगीर बादशाह ने अपने रोजनामचे में इसका वर्णन क्यों नहीं किया? खैर!

"जहांगीरनामे" में बादशाह जहांगीर के तीन पुत्र लिखे हैं। पहला खुसरो जो आमेर नरेश भगवन्त दासजी का दौहित्र था, दूसरा परवेज जो

ख्वाजाहसन की लडकी से पैदा हुआ था और तीसरा खुर्रम उदयसिंह(?) की लडकीसे। यह उदयसिंहजी कौन थे? सो माळूम न हो सका। खुसरो का जन्म श्रावण शुक्ला १३ संवत् १६४४ को, परवेजका कार्तिक शुक्ला ४ संवत् १६४६ को और खुर्रमका माघ शुक्ला १ संवत् १६४८ को। खुसरो पिता से विरोध करके बागियों में गिना जाता था। उसके उपद्रवों का हाल जहांगीर नामे में थोडा बहुत विस्तार से लिखा गया है। परन्तु उसका इस पुस्तक से विशेष संबंध नहीं इस लिये उसका यहां वर्णन करके विषयांतर में ले जाना भी अच्छा नहीं। किन्तु "वंशभास्कर" में लिखा है कि– "जहांगीर का बडा पुत्र जो कैद था उसे किसी तरह से मार कर छोटे पुत्र खुर्रम ने पिता की गद्दी लेनेकी इच्छा से उससे विरोध ठान लिया। वह दिल्ली से भाग कर पिता के वैरियों से जा मिला। उसने उन्हें हिस्सा देना स्वीकार कर दिल्ली का जब देश दबाना आरंभ किया तब बादशाह ने उस पर सेना देकर महाबतखां को भेजा और उसने खुर्रम को भगा भी दिया परन्तु वह दक्षिण देश—बीजापुर आदिके बादशाह को साथ लेकर नर्मदा नदी तक दिल्ली के राज्य को लूटने लगा।" यह मत सूर्यमलजी का है किन्तु टाड साहबने अपनी "एनल्स ऐंड ऐंटी किटीज़ आफ़ राजस्थान" में कुछ और ही तरह से लिखा है। उनका कथन है कि:–

"अब जहांगीर बादशाह हुआ। उसने अपने शाहजादे परवेज को दक्षिण का सूबा दिया। इस तरह उसे बुरहानपुर में अधिकार देकर जहांगीर उत्तर की ओर लौटा किन्तु खुर्रम का इससे द्वेष था इसलिये उसने षडयंत्र रच कर परवेज को कत्ल करदिया। इस हत्या कांड के बाद यह बादशाह को भी सिंहासन से उतार देने का प्रयत्न कर चुका क्योंकि आमेर नरेश का उससे मेल था और इससे बहुत भारी बगावत खडी होगई अथवा बाईस रजवाडे केवल राव रत्न के सिवाय सब बादशाह से फिराऊ होगये।"

इस विषय में इस तरह दो ग्रन्थकारों का मत प्रकाशित करनेके अनंतर तीसरे ने इस बात को किस तरह लिखा है सो भी यहां दिखला देने की

आवश्यकता है। "जहांगीरनामे" के लेखक का बयान इन दोनों से भिन्न है। उसमें अवश्य ही खुसरो का बागी होजाना और उसका कैद होना स्वीकार किया गया है किन्तु उसके मत से न तो खुर्रम के हाथ से खुसरो मारा गया और न परवेज। उससे मालूम होता है कि बादशाह की पहले २ **खुर्रम पर बहुत कृपा थी**। वह सब लडकों में इससे बहुत ही प्यार करता था। आरंभ में उसका वर्ताव इसके साथ वैसाही रहा जैसा एक योग्य पिता का प्यारे पुत्र के साथ रहा करता है। मेवाड के राणा अमरसिंहजी का विजय कर उन्हें बादशाह के आधीन कर देने पर पिता ने परवेज के समान उसे पंदरह हजारी मनसब और छः हजार सवार का अधिकार दे दिया। पिता ने प्यार में आकर पुत्र को शराब पीना सिखलाया उसने उसका फिर मनसब बढा कर बीस हजारी जात और दशहजार सवारों का कर दिया, उसने पहले शाह सुलतान खुर्रम की पदवी देकर फिर दक्षिण देश का विजय करने पर तीस हजारी जात और बीस हजार सवार रखने का मनसब देने के साथ **शाहजांहाँ का खिताब** देकर अपने सिंहासन के पास एक चौकी पर बैठनेका ऐसा सम्मान किया जैसा दिल्ली के साम्राज्य में पहले किसी शाहजादे का नहीं किया गया था। इसके सिवाय दक्षिण का देश जागीर में देकर जो कुछ वस्त्र आभूषण और इनाम दिया गया सो अलग ही।

"जहांगीरनामा" देखने से इतनी कृपा और ऐसा स्नेह होने के अनन्तर पिता पुत्रका **मन मुटाव** होजाना अवश्य मालूम होता है और इसका सूत्रपात करने में भी **नूरजहां कारण थी**। "जहांगीरनामा" के फुटनोट में मुन्शी देवीप्रसादजी लिखते हैं कि "ये जागीरें खुर्रम की थीं। जो नूरजहां ने, अपने दामाद शहरयार को दिला दी थीं क्योंकि वह खुर्रम का जोर घटा कर शहरयार को युवराज बनाया चाहती थी। बादशाह का दिल **खुर्रम** **फिरा दिया** था। इसीपर सब उपद्रव उठा जो आगे बढता गया।" इसके साथ मूल पुस्तक में लिखा है कि– "इन दिनों लगातार अर्ज हुई कि खुर्रम ने नूरजहां और शहरयार की जागीरों पर विना हुक्म हस्तक्षेप करके

जिस समय ये तीनों नरेश अपने दल सहित अपनी २ कपडों की नगरियोंमें निवास करते थे इन के आपुस में हंसी हुई । राजपूतों की-राजाओं की हंसी **दिल्लगी बुरी** होनी है । हँसी ठट्ठा का परिणाम कभी २ यहां तक होता है कि क्रोधके आवेश में आकर तलवार चल जाती है, बडे २ संग्राम हो जाते हैं और जब अपमानका बदला लेना इनका मूल मंत्र है तब सच पूछो तो देशी नरेशों के आपस में फूट होने के जो कई कारण पुराने समय में माने जाते हैं उनमें एक यह **हंसी भी** है । हां सो इन तीनों में साधारण बातें करते २ ही इसतरह दिल्लगी होने लगी:-

जयसिंह जी बोले:-"गौडों के प्रताप के आगे बारीगढ जाना कठिन होगया है । (हाडाराव से) आपकी सेना ही उनसे डर कर भाग गई थी । "

गजसिंह जी ने कहा:-"जहां भय होता है वहां विजय क्यों कर हो ? जिसे प्राण प्यारा है वह जीत थोडा ही सकता है । "मालिक जो काम करता है वही उसके नौकर करते हैं । " (तुम्हारे जैसे) कायरों का साथ करके हमें भी जान प्यारी होगई है । "

दोनों का इस तरह ताना सुन कर हाडाराव से सहन न होसका । उस समय उस जगह बादशाह की आज्ञा से ये एक ही उद्देश से इकट्ठे हुए थे । इन तीनों में पहले से स्नेह भी कम न था परंतु हँसी जो की जाती है वह मन बहलाव के लिये झूंठी की जाती है । झूंठी बात को झूंठी समझ कर दूसरा मनुष्य दिल्लगी में उडा दिया करता है परंतु सच्ची हँसी कलेजा जला देनेवाली है । इससे भीतर ही भीतर **द्रोह की आग** प्रज्वलित होकर चिनगारियां छोडने लगती हैं और इसका परिणाम तलवार है । हाडाराव को क्रोध बहुत आया । उन्होंने इन मर्म वाक्यों के बदले एक ऐसी बात कह दी जिससे उन दोनों ही में पानी मरता था । वह कडक कर बोले:-

"भय तो वहां है जहां बादशाह को बेटियां दी जाती हैं। हम भी तुम्हारे दादा की भुवा व्याह कर लज्जित होते हैं। इधर तुम्हारे बहनोई का कहा न माने तब भी नहीं बन सकता है। लडकियें मुसलमानों को देकर हमसे भी वैभव में आगे बढ निकले हो। हमने जब वहीं भय नहीं किया—तुम्हारा पिता हमने यहां मार लिया और इनके पितामह को कुत्ते की तरह मार भगाया तब ही भय न किया तो अब क्यों डरेंगे।" इस पर कोप करके वे हथेली में जल लेकर धरती पर डालते हुए—"हम आज इस तरह हाडाओं को जल दे चुके हैं। अब हमारा संबंध तुम से न होगा।" कहकर वहांसे चल दिये। इस पर अवश्य हाडाराव उन्हें मनाने के लिये जाने को खडे हुए क्योंकि ऐसे रस में विष पड जाना अच्छा नहीं हुआ परंतु साथ के भाई बेटों ने—सरदारों ने यह कहकर कि "ताली दोनों हाथों से बजा करती है। आप तो उनको मनाने पधारेंगे और वे मानेंगे कि डर कर आये हैं। फिर सहायता चाहते हैं।" रोक लिया दोनों नरेश हाडराव से रूठ कर दिल्ली चले गये। इस समय यहां यह लिख देना आवश्यक है कि कविराज सूर्यमल्लजी के मत से इन दोनों नरेशों में से एककी "बहन का पति और दूसरे का भानजा खुर्रम ही था।"

"इन दोनों राजाओं का दिल्ली पहुंचना जान कर वजीर एतमादुदौला बहुत नाराज हुआ। उसने कोप करके कहा कि—"तुम विना बुलाये यहां क्यों चले आये" बादशाह की आज्ञा का उल्लंघन करके रहोगे कहां?" सुनकर इन्होंने उत्तर दिया कि—"वहां रत्नसिंहजी से हमारी पटती नहीं है इसलिये या तो उन्हें बुलाकर उनकी जगह हम भेज दिये जायँ अथवा वह ही वहां बहुत हैं। यदि ऐसा न किया जाय तो किसी दूसरे को सेना नायक बना कर हमे साथ कर दें।" ऐसा उत्तर देकर जब वे दोनों वहां ठहर गये तब इधर हाडाराव ने सतपुडा पहाड के समीप युद्ध आरंभ कर दिया।

तीन २ राजाओं की जगह **अकेले हाडाराव**—महाबत खां और अजीम-बेग को पहले ही बुला लेने से केवल अकेले ही राव रत्नजी जिस समय एक **लोम हर्षण** संग्राम में जी तोड परिश्रम कर रहे थे, जब तोपों और बंदूकों के गगन भेदी नाद के साथ आकाश बादलों के बदले धूऐं से ढक रहा था और जब इन्हें मार काट के सिवाय कुछ सूझता ही न था उस समय बूंदी में एक **भयानक घटना** हो गई। यह घटना क्या वज्रपात था। बडे महाराज कुमार—राज्य के **अधिकारी की मृत्यु** से बढ कर राजा को और क्या कष्ट हो सकता है।

हाडा नरेश रत्नसिंहजी के बडे राजकुमार का नाम पाठक प्रथम अध्याय में पढ चुके हैं। वही कुमार **गोपीनाथजी** खूब अभ्यास करके मल्लविद्या में अच्छे कुशल हो चुके थे। उनके शरीर की शक्ति, उनके मन का हौंसिला बहुत बढ निकला था। यहां तक जवानी के जोश के साथ इनका बल उफन पडा कि यह जिससे भिडते उसे हराये बिना न छोडते। यहां इनकी जोडी का कोई न रहा। यह जटा विहीन **आठ नारियलों** को बगलों में, घुटने के नीचे और इसी तरह संधियों में दबा कर एक दम मे फोड डालते थे। जब यह कुँवरानी तंवर (तोमरी) जी को विवाहने गये तो रास्ते में इन्होंने एक कुए पर बैल छुडवाकर नो मुट्ठीका जल से भरा हुआ चरस बैलों के बदले आप ही **खैंच लिया था**। जोर अवश्य आया और कुछ दिनों तक इन्हें घोडे की सवारी त्याग कर पालकी में भी चलना पडा परंतु निकाला सो निकाला। यह घूंसा मार कर **भैंसे की कमर** तोड डालते थे। सिंहादिक हिंसक जीवों का यह **कटार** मार कर प्राण ले लेते थे और जिसके बलका गर्व करने की खबर इनके कानों तक पहुंचती उसे ही बुलाकर लडते और लडाई में उसे परास्त करते थे। इस तरह जब इनके बल की, वीरता की और दानीपन की कथा देशदेशान्तर में फैल रही थी तब भगवान् पंचशायक (कामदेव)ने धर दबाया यद्यपि इनके ग्यारह विवाह हो गये थे, उनसे इनके तेरह लडके और एक बाई भी होचुकी थी किन्तु फिर भी **व्यभिचार में** प्रवृत्त हुए।

टाडसाहब ने अपनी किताब में लिखा है कि:—"गोपीनाथजी बूंदी के युवराज पिता के सामने ही मर गये। उनकी मृत्यु राजपूतों के चाल चलन में एक और विचित्रता दिखलाती है। इतिहास की रोचकता में यह एक और चुटकुला है। बलदिया (चंदेरिया) जाति की एक ब्राह्मणी से गोपीनाथ (जी) का गुप्त प्रेम हो गया। खूब रात गये यह उसके मकान पर जाया करते थे। अंत में उसके पति ने इनको एक दिन पकड कर इनके हाथ पैर कस दिये। और सीधा महलमें जाकर हाडाराव से निवेदन किया—क्या पूछा कि—"मैने एक चोर को मेरी इज्जत लूटते हुए पकड लिया है। ऐसे अपराध का दंड क्या है?" "मौत ही" इसका उत्तर मिला। उसने दूसरे किसी की राह न देख कर मोगरी से उनका शिर फोड डाला और उठाकर उनके शव को चौराहे पर रख आया। यह खबर रावरत्न (जी) के कान तक पहुंची कि--युवराज मारे गये और उनकी लाश चौडे पडी हुई है परंतु जब उन्होंने इसका **असल कारण** जान लिया और जब वह पहले ही फैसला कर चुके थे तब सुनकर चुप हो गये।"

इससे पाठकों ने अवश्य समझ लिया कि इस वज्रपात को पिता ने उसी तरह **सह लिया** जिस तरह युद्ध में खचाखच तलवार के घाव सहे जाते हैं। तलवार का वार आदमी को उसी समय मार देता है इस कारण उसे कष्ट नहीं भोगना पडता किन्तु पुत्र शोक का जला हुआ आदमी केवल शरीर का लिफाफा बना रहने पर भी भीतर ही भीतर जल कर खाक हो जाया करता है। भगवान रामचंद्रजी का वियोग सदा के लिये वियोग नहीं था। उस वियोग में चौदह वर्ष के अनंतर फिर संयोग होने वाला था परंतु इस असह्य दु:ख की वेदना सहन न कर सकने से जब मंडलाधीश दशरथ ने प्राण दे दिये तब यदि इस वियोग में, जिसमें संयोग की कदापि आशा न थी हाडाराव स्वयं मर मिटते अथवा सुतघाती को मार ही बैठते तो कुछ आश्चर्य न था किन्तु राव रत्नसिंह जी जैसा भारत वर्ष में—संसार में विरला ही होगा। उन्होंने सतयुगी राजा सगर की तरह पुत्र को दोषी समझ कर **संतोष किया**। उन्होंने समझ लिया कि

यदि रण भूमि में हमारे ही समक्ष हमारा पुत्र शत्रु के तीरका, तलवार का अथवा भाले का इस तरह निशाना बन जाता तो हम क्या करते। कुछ भी सही परंतु वास्तव में राव रत्नसिंह जी राजोचित कार्य का--पुत्र से भी बढ कर **न्याय को प्यारा** समझने का इतिहास में एक ज्वलन्त उदाहरण हैं। उनका चारित्र सोने के अक्षरों में लिखे जाने योग्य है। यही बात इस प्रसंग पर मैंने "उम्मेद सिंह चरित्र" में कही थी और यही यहां लिखता हूँ।

ऊपर के लेख से पाठकों ने टाड साहब के लेख का आशय जान लिया। इससे विदित होता है कि जिस समय कुमार गोपीनाथजी का खून हुआ हाडाराव बूंदी में थे किन्तु सूर्यमल्लजी का कथन कुछ और ही तरह से है। उनके शब्दों में यह घटना इस प्रकार पर है कि:—

"एक चंदेरनी ब्राह्मणी अति रूपवती थी। उसके रूप लावण्य से मोहित होकर कुमार ने उसे महलों में बुला लिया। ऐसी बात एक दो समय छिप सकती हैं, सदा नहीं। इस तरह धर्महीन कुमार की निन्दा फैलते२ रत्नजी जब बूंदी आये तब उनके भी कानपर पहुंची। उनके पधारने की खबर पाकर चंदेरिया ब्राह्मणों ने उनके निकट उपस्थित होकर प्रार्थना की कि—"नगर में एक चोर है जो अपने जामे में समाता नहीं। उसका हम क्या करें?" इस पर हाडाराव ने यह न जाना कि यह शिकायत हमारे पुत्र की ही है। यदि जान लेते तो अवश्य उन्हें कारागृह में डाल देते किन्तु अपने स्वभाव से—योंही उन्होंने कह दिया (अथवा उनके राजधर्म वा होन हार ने कहला दिया) कि—"तुम्हारी इच्छा हो सो करो। तुम्हें अधिकार है।" इस तरह की बात चीत हो चुकने के अनंतर रत्नसिंहजी ने फिर दक्षिणकी ओर कूच किया......"

"यद्यपि राजा ने इनके ग्यारह विवाह कर दिये थे और उनसे तेरह पुत्र और एक बाईजी उत्पन्न भी होगई थी तथापि यह नई २ परनारियों को छिप २ कर बुलाया करते थे। गुडवाने को जीत कर जब राजा ने बूंदी की ओर प्रस्थान किया तब मार्ग में संस्कार हीन चंदेरिया बनजारों को बैल भर २ कर जाते देखा। उन्हीमें से राजा ने कितने ही को माल लाने

ले जाने की सुगमता करने के लिये बूंदी में ला बसा या था । ये चरणाद्रि (चुनार) अथवा चंदेरी से यहां लाये गये थे किन्तु कोई २ कहते हैं कि यह पंच गौडों में हैं और लोभ से इन्होंने यह पेशा स्वीकार कर लिया है । अब ये लोग कहते हैं कि हम बंगदेवजी अथवा देवसिंहजी के समय के आये हुए हैं । ऐसा होसकता है किन्तु इसका प्रमाण नहीं यह संदेह है । इनमें की एक चंदेरनी ब्राह्मणी का सुंदर यौवन देख कर कुमार औरों से अधिक उसमें आ-सक्त हो गये । राजा से छिप २ उन्होंने उस ब्राह्मणी से प्रेम किया और चंदेरिया लोग राजा की आज्ञा पा ही चुके थे इस लिये इस बात की घात में लगे रहे । कुमार ने यह बात जान ली थी किन्तु होनहार के वशीभूत कुमार ने प्राण जाने तक यह दुर्व्यसन न छोडा । वह सब चंदे-रियों को तिनके के समान गिनने और जिस तरह हिरणों के झुंड में सिंह विलास करता है वैसे ही रहने लगे । ये लोग बाग बाडियों में छिप २ कर मुद्दत तक घात लगाये रहे किन्तु इनको साहस न हुआ । साहस चाहे न हुआ किन्तु रत्नजी की आज्ञा पाकर उद्यम छोडा नहीं । कुमार जिस तरह परस्त्रीगामी थे उसी तरह शराबी भी थे । वह एकबार इन लोगों के पंजे में से निकल गये थे परन्तु फिर भी मद्य से मतवाले होकर उसके घर गये । इन्होंने इस काम की खबर लाने ले जानेवाली दूतियों को, दूतों को वहांसे हटा कर–अकेले ही रहकर उस ब्राह्मणी से रमण किया । शराब के नशे में जब इन्हें इसके बाद घोर निद्रा ने आ घेरा तब उन लोगों का दाव लग गया । उन्होंने मकान में घुसकर एक ही पलंग पर दोनों को कस दिया । बस इस तरह जब ये दोनों विवश हुए तब उन्होंने कटार से इनके प्राण लेलिये । इन दोनों के शवों को वे लोग चौराहे में डाल कर भाग गये ।... ....और राजदर्बार में इस बात की खबर होने से कुमार के बडे पुत्र शत्रु श-ल्यजी ने संवत् १६७१ में इनका क्षार बाग में दाह कर अंत्येष्टि क्रिया संपादन की । ''

इसके आगे का इतिहास पढने से विदित होता है कि इनके साथ सात मरानियां सती हुईं । कोई कहते हैं कि वह ब्राह्मणी उन्हींकी चिता में

जलाई गई और किसी का कहना है कि अलग। रत्नसिंहजी के पास इस हृदय बिदारिणी घटना का शोक सूचक पत्र पहुंचा तो इन्होंने लिख भेजा कि—

इस बात की मुझे पहले से खबर क्यों न दी गई। मैं अपने पुत्र को कैद कर के इधर आता। ऐसा करने में न तो लोग हँसाई होती और न अपयश। हमारे नसीब में जो बदा था सो हो गया अब चंदेरिया ब्राह्मण जो डर के मारे भाग गये हैं उनका **अपराध क्षमा** कर उन्हें पीछा बुलवा लो।''

टाड साहब के लेख में और सूर्य मल्लजी की राय में चाहे बहुत बडा अंतर ही क्यों न हो परंतु परिणाम दोनों का एक है इस लिये इस पर अब विशेष बहस करने की आवश्यकता नहीं परंतु प्रिय पाठको! आपने देखा रत्नसिंहके जी धैर्य को, **उनके न्याय को** और उनकी उदारता को! और इतिहासों में—और नरेशों में भी इन गुणों की थाह लगा कर जरा मिलान तो कीजिये। अवश्य ही गोपीनाथजी के हाथ से यह कुकार्य हुआ और बडे २ **ऋषि मुनियों से** ऐसा काम हो पडने के अनेक उदाहरण हैं। जब कामदेव के वश होकर ब्रह्मादिक देवता भी नाचते हैं तब कुमार किस गिनती में, परंतु रत्नसिंहजी के चरित्र को देखिये।

ख़ैर यहां इतना लिखने का प्रसंग आ गया है कि शत्रुशल्यजी इस समय बालक थे। उनका जन्म संवत् १६६२ में हुआ था। उनका वर्णन आगे चल कर समय आने पर किया जायगा। वह बडे राज कुमार थे इस लिये वही राव रत्नजी के युवराज बनाये गये।

अध्याय ९.

तिमुरनी विजय और खुर्रम पर चढाई।

राव रत्नसिंहजी के पिता राव भोजजी के दो खवासीने पुत्र भी थे। इनमें एकका नाम **शंकर सिंहजी** था। पिता का परलोक होजाने पश्चात् हाडाराव ने इनको बूंदी राज्य की सेना का प्रधान नियत किया था।

इन्होंने अधिकार पाकर चोरों के, डकैतों के और उठाईगीरों के **नाक में दम** कर दिया। जब तक यह जीवित रहे चोर लुटेरे ऐसे छिपे रहे जैसे सूर्य के प्रकाश से उल्लू। इस तरह प्रजा को ऐसा सुख होगया कि घर के किंवाड देने की भी आवश्यकता नहीं। किन्तु बनास नदी के निकट उत्थरना या उतराना गांव में सोलंखी– नाथायत सरदार रहते थे वे साहूकारों के सरदार नहीं चोरों के अफसर थे। वे मीनों और भीलों को रख २ कर लूट मार मचाया करते थे। बूंदी राज्य के अलोद गावँ में चोरी होकर बहुत सा रुपया जब लुट गया तो शंकर सिंहजी ने उन पर चढाई की। उन नाथावतों ने मार्ग में छिप कर शंकर सिंहजी को गोली से मार दिया और इस तरह तलवार से उनका मरने बाद शिर भी काट लिया। यह बात जब हाडाराव को विदित हुई तो उन्हें बहुत शोक हुआ और उन्होंने उमरावों को उलाहना भी कम न दिया परंतु होनहार प्रबल है।

खैर इधर जो कुछ होना था सो होगया किन्तु दक्षिण में **तिमुरनी पर गोले** मारने का अवसर हाथ आया। राव रत्नजी ने दुर्ग चारों ओर से घेर कर खूब गोले बरसाये। बडे २ ओलों के समान गोलों की मार से किले के कंगूरे, बुर्जें और कोट टूट टूट कर गिरने लगे। उधरसे भी खूब गोले बाजी हुई। अब निसैनियां लगाकर कोट पर चढ जाने–भीतर घुसजाने की नौबत आई। दो सीढियां भी लगाई गईं पर वीरों के भारसे टूट पडीं। संयोग वश तीसरी निसैनी वहां मौजूद न निकली तब घटा शिरोमणि नामक हाथी मंगाकर **कोट से भिडा** दिया गया। ऐसा किया अवश्य परंतु हाथी से कोट बहुत ऊंचा रह गया तब शंकर सिंहजी के भाई गोवर्द्धन सिंहजी शत्रुओंकी गोलियों की बाड लगने पर भी, घायल होते हुए भी **नट की तरह** उस पर चढ गये। आप क्या चढगये ऊपर जाकर इन्होंने खैंच २ कर अपने सुभटों को चढाया और किले वालों को खूब मार काट कर किले में अपना अधिकार जमाने के बाद वहां **विजय पताका** फहरा दी। बस देखते ही सेना में जय जय कार मच गया। बादशाह जहांगीर की दुहाई फिर गई। राव रत्नजी ने तिमुरनी गढ का किलादार इन गोवर्द्धन सिंहजी को ही

नियत किया और उनके घावों की चिकित्सा भी खूब की गई थी परंतु इन्हें आराम न हुआ। वहीं शरीर छोड कर गोवर्द्धन सिंहजी वीर गति को प्राप्त हुए। हाडाराव ने वहां अपने भतीजे सबलसिंहजी और मनोहरसिंहजी को दुर्ग की रक्षा पर नियत कर **बुरहान पुर को** प्रस्थान किया। यह युद्ध अवश्य ही दक्षिणियों के साथ था किन्तु कविराजा सूर्यमल्लजी ने इस प्रसंग में कुछ नहीं लिखा। बादशाह **जहांगीर** इस विजय का संवाद पाकर हाडाराव पर **बहुत प्रसन्न** हुआ और उसने इसके पारितोषिक में इनको एक हाथी, एक घोडा और जडाऊ सिरपेच दिया किन्तु दिया उस समय जब यह बुरहान पुर से दिल्ली गये।

ऐसे समय में हाडाराव को दक्षिण की ओर उलझा हुआ देखकर **खींचियों** का फिर वार चल गया। उन्होंने बूंदी की सेना से मऊ **फिर** छीन ली और ऐसे ही अवसर में जहांगीर के श्वसुर, दिल्ली सिंहासन के मुख्य वजीर और नूरजहां के पिता एतमादुद्दौला की मृत्यु से देशभर में हाहाकार मच गया। ऐसे न्यायी और प्रजापालक वजीर के वियोग से प्रजा उसीतरह रोई जैसे बेटे बेटी अपने माता पिता के लिये रोते है। बादशाह का जो यश था वह केवल **एतमादुद्दौलाकी बदौलत**। वह बडा न्यायी था। बादशाह स्वयं उसकी प्रशंसा में अपने रोजनामचे में लिखते हैं कि:—

"(संवत् १६७८ फा. वदी ११) तीन घडी रात गये (वह) परलोक को सिधारा। मैं क्या कहूं कि इस घटना से मुझ पर क्या बीती? वह बुद्धिमान मंत्री था और मिहर्बान मित्र भी। ऐसे बडे राज्य का भार उसके कंधे पर था। मनुष्य मात्र से असंभव है कि राज्य का अधिकार पाकर सब ही को राजी रख सके तो भी कोई आदमी एतमादुद्दौला के पास जाकर नाराज नहीं लौटा। वह स्वामी के हित का भी ध्यान रखता था और कामवालों को राजी और आशावान भी कर देता था। सच तो यह है कि यह हतकंडा उसीको आता था।"

प्रजा से, स्वामी से और राजा महाराजाओं से प्रशंसा पानेवाले वजीर का देहान्त होने पर बादशाह ने उसीके पुत्र, अपने साले और नूरजहां के भाई

आसिफ़ खान को वजीर नियत किया । नूरजहां वास्तव में इतने वर्ष पिता से कुछ शंकित रहती थीं अब मैदान सूना पाकर स्वयं हुक्म चलाने लगीं। बडे २ पदोंपर से राजाओं को, नव्वाबों को और उमरावों को हटा२ कर अपने गुलामों को वे उहदे दिलवा दिये। इससे देश भर में लूट खसोट, मार काट और चोरा डकती से हाहाकार मचगया। इस अवसर में बुरहान पुर से इसी विषय में हाडाराव का प्रार्थना पत्र बादशाह की सेवा में पहुँचा। नूरजहां चाहती ही थीं कि राव रत्नजी की वहांसे बदली हो जाय। उसने अर्जी पाते ही इनके बदले दूसरा हाकिम भेज कर इन्हें दिल्ली बुलवा लिया। आज्ञा के अनुसार हाडाओं के सूर्य राव रत्नजी नये हाकिम को काम संभला कर दिल्ली को चले गये और जाते जाते एक किला और जीत कर उसे सौंप गये। इस तरह **दक्षिण में इन्होंने छः** सात वर्ष निवास किया। बादशाह ने इन को सभा में बुला कर बहुत सन्मान किया, कुल की प्रशंसा की और जो कुछ ऊपर इनाम देना लिखा गया है वह इस समय दिया गया।

वह कितने ही मास तक जब दिल्ली रह चुके तब बादशाह से छुट्टी लेकर बूंदी आये। यहां पधार कर उन्होंने उन **चंदेरिया** ब्राह्मणों को जो हाडाराव के बडे राजकुमार युवराज गोपीनाथजी का वध कर चुके थे बुला कर उनका **संतोष किया** और इस प्रकार अपनी सच्ची उदारता—हाडाओं की उचित सहन शीलता—**सच्चे न्याय** का परिचय दिया। इसके अनंतर मऊ फिर जीत कर खींचियों का दमन करने के लिये उन्होंने सेना भेजी। केवल सेना ही क्यों मैंडक को मारने के लिये सिंह ने चढाई की। यह स्वयं खींचियों का विजय करने के लिये पधारे। जैसे किसीका घर सूना पाकर चोर लुटेरे उसमें जा छिपते हैं उसी तरह खींचियों ने मैदान सूना पाकर मऊ ले लिया था तो क्या किन्तु अब इनके गोलों की मार से उन लोगों का पैर उखड़ गया। वह अब पछताये और भागने का विचार करने लगे। परंतु इनकी सेना में से निकल कर भाग जाना मानो **मृत्यु के सामने** जाना था और भाग जाने के नाम पर उनकी **रजपूती भी लाजती** थी इस लिये तलवारें सूत कर इनके सामने हुए। १७ खींची सरदार और उनके २०० सैनिक खेत रहे। बूंदी-

नरेश के भाई केशव दासजी ने भी इस संग्राम में वीर गति पाई और १०० आदमी इनके भी मारे गये। केशव दासजी मारे तो गये परंतु शत्रुके मुखिया ईश्वरदासजी का कलेजा भालेसे फोड़ कर। विजय बूंदी की हुई और हाडाराव की वहां **दुहाई** फिर गई।

कविराज सूर्यमल्लजीकृत "वंशभास्कर" में बुरहान पुर विजय अथवा शाहजादा **खुर्रम पर सेना** चढ़ाने के विषय में जो उल्लेख है उसका संक्षेप इस रीति से है कि जब तक हाडाराव रत्नसिंह जी दक्षिण में रहे खुर्रम की दाल नहीं गलने पाई थी। इनके लौटते ही "बुढिया ने पीठ फेरी, और चर्खे की हो गई ढेरी"—खुर्रम ने फिर **शिर उठाया**। बीजापुर और भागपुर के मुसलमानों को अपना साथी बनाकर बादशाह की ओर से जो उस प्रदेश में हाकिम नियत थे उन्हें शाहजादा तिनके की तरह गिनने लगा। उसने उनसे दौलताबाद आदि के किले छीन लिये और बुरहानपुर को बांये देकर, मरहटे योद्धाओं को हिस्सा देने का लालच दिखाकर अपनी सेना में मिलाते हुए मैदान खाली पाकर बल के घमंड के साथ दिल्ली की ओर कूच किया। इस बात की खबर पाकर बादशाह ने सेनापति अजीम की अध्यक्षता में जोधपुर और आमेर के नरेशों को अपनी २ सेना सहित बिदा किया। खुर्रम का रास्ता रोकने के लिये राव रत्नजी भी **याद किये गये**। बादशाह ने उनके नाम फर्मान भेज कर उसमें लिखा कि—"राजा रत्न तुम को तुम्हारे न्याय से प्रसन्न होकर सब ही साथमें रखना चाहते हैं। इस कारण मेरी **गद्दी की लज्जा** रखने के लिये तुम निश्चय इस कार्य को करो। सेना के साथ तुम भी जाकर समर्थ **खुर्रम को मारो**। अथवा उसे पकड कर यहां भेज दो। और जो शत्रु उसके सहायक हों उनको अपनी २ करनी का फल चखाओ" जिस समय यह फर्मान पहुंचा हाडाराव मऊ विजय की तैयारी में जिसका वर्णन ऊपर किया गया है लगे हुए थे। फर्मान पाकर कुछ दुविधा में पड़े। इधर मऊ के लिये समय हाथ से जाता रहेगा तो आधा राज्य हाथ से निकला और उधर राज राजेश्वर की ऐसे जोर के साथ आज्ञा। जिसमें उन्होंने सिंहासन की लाज रखने तक का उल्लेख किया है। थोडी देर

सोच कर मऊ देने के लिये जो कार्य किया वह ऊपर लिखा ही जा चुका और दक्षिण की चढाई के लिये अपने **पौत्र शत्रुशल्यजी** को तैयार किया।

इस समय यद्यपि शत्रुशल्यजी केवल **सोलह वर्ष** की कच्ची उमर में थे, अभी अच्छी तरह उनकी मसें भी नहीं भीगने पाई थीं, जाना भी कोई तीर्थ यात्रा के अथवा विवाह शादी के लिये नहीं। मरने जाना था या **मारने जाना था।** परंतु जिस तरह सिंह का छोटासा बच्चा भी बड़े भारी मतवाले हाथी का गंडस्थल विदारण करने के लिये कभी मुख नहीं मोडता है उसी तरह दक्षिण के उस युद्ध में जिसमें पहले बड़े २ राजा महाराजा हार छूटे थे विजय करने के लिये जाने को यह **हाडा बालक** तैयार हुआ। तैयार होनेमें आश्चर्य ही क्या? जब उस समय वीर राजपूतों की— पराक्रमी हाडाओं को **जन्म घूटी के** साथ ही भगवान् श्रीकृष्णचंद्र के इस वाक्य की—हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्— की शिक्षा दी जाती थी। पितामह ने पौत्र की रक्षा के लिये सेना के मुख्य अफ़सर बना कर गौड जोगीदासजी को भेजा और जाती बार खूब ताकीद कर दी कि—"गौडों की परीक्षा का यही समय है। कहीं ऐसा न हो कि जैसे तुम्हारा पुत्र गुढवाने से भाग आया वैसे तुम भी समर भूमि में पीठ दिखा कर अपने वंश को लज्जित करो।" इससे जोगीदासजी अवश्य खिन्न हुए और उनके हृदय में इस अपमान की आग भी सुलगने लगी परंतु उस समय चुप चाप शत्रुशल्यजी के साथ हो गये। पीछे से अपने छोटे भाई हृदयनारायणजी को भी जो इन दिनों कोटे के जागीरदार थे शत्रुशल्यजी के साथ भेजा।

मार्ग में ही बूंदी की सेना शाही लशकर से मिलकर आगे बढी किन्तु हाडाराव को जो **संदेह** था वह सच्चा निकला। खुर्रम की सेना के निकट आते ही उन का **मन घबडा उठा।** पहले इनका पुत्र एक बार बूंदी से निकाल दिया गया था वह **वैर भी** इनके मन पर ताजा हो गया इस कारण इन्होंने खुर्रम से मिल कर **लाखैरी का पट्टा** लिखवाया। इस तरह करके

जोगीदासजी ने पहले अपनी निज की सेना हटाई, फिर रात्रि के समय स्त्री बालकों को वहां से अलग किया और तब लाग पा कर खुर्रम की सेना में जा मिले । जा मिले तो क्या हुआ किन्तु उसी रातको पेट में शूल की भयानक पीड़ा होकर उन्होंने शरीर भी छोड़ दिया । इस प्रकार प्राण बचाने का--स्वामी से विमुख होने का बदला उन्हें उसी क्षण मिल गया । मानो परमेश्वर ने दिखला दिया कि भीड़के समय बालक जामाता को छोड़ भागने का यह दंड है ।

खैर जो कुछ हुआ सो हुआ । इस बात की खबर उन जोगीदासजी के छोटे पुत्र रणछोड़जी ने जो राव रत्नजी के अब तक भी पूरे भक्त बने हुए थे बूंदी नरेश के पास पहुंचाई । हाडाराव ने करौली नरेश को पत्र लिख कर उसमें अपनी नातेदारी का, शत्रुशल्यजी उनके दामाद होने का संकेत करके सहायता भेजने को लिखा और उसमें सलाह दी कि बुरहान पुर जाकर शत्रुशल्यजी की सहायता करो क्योंकि वह अभी लड़के हैं और शत्रु का घात लग जाने की संभावना है । इसके अनंतर शत्रुशल्यजी ने शत्रुसेना के साथ कैसा युद्ध किया और रत्नसिंहजी क्यों कर इस संग्राम में संयुक्त होने के लिये बूंदी से कब विदा हुए और उन्होंने बूंदी का क्या प्रबन्ध किया सो आगामी अध्याय का विषय है ।

अध्याय ६.

हाड़ाराव को बुरहानपुर की सूबेदारी ।

गत अध्याय को पढने से पाठकों को राव रत्नसिंहजी का मऊ के विजय में लगा रहना और जोगीदासजी गौड़ के फिराऊ होजाने का हाल और करौली नरेश को पत्र लिखना मालूम होगया । उस चिट्ठी में यह भी लिखा गया था कि:—" स्वल्प वैर के कारण कहीं शत्रु बालक शत्रुशल्य पर घात न कर बैठे इस लिये संग्राम में से उसको निकालकर अपनी रक्षा में रखिये ।" जैसे यह पत्र लिखा गया था वैसे ही हाडाराव ने अपने भाई हृदयनारायणजी प्रभृति को भी लिख भेजा था । बड़ों की आज्ञा मान कर वह इस पर

यादवी सेना के साथ करौली अवश्य गये किन्तु बालक सिंह रणभूमि में हाथियों का गंडस्थल विदारण करने की आशा ही आशा में वहां से हटा देने पर जैसे खिन्न होता है वैसे ही यह भी दुःखित हुए।

इधर खुर्रम का जैसे २ दिन २ दिन आगे बढता गया त्यों ही त्यों वह अपनी सेना को भी आगे बढ़ाता गया। उसका इस तरह जोश खरोश बढता देख कर सेनापति अजीम ने हृदयनारायणजी को **बूंदी से फिर सेना** बुलाने की सलाह दी। इस पर बूंदी को पत्र लिखा गया और साथ ही शाही सेना के मार्ग रोकता हुआ **खुर्रम शेरपुर तक** आ पहुंचा। इस बात की खबर पाकर गौडों का दमन कर अपना लाखेरी परगना उनसे छुडा कर विजय पाने की इच्छा से **हाडाराव** ने अपनी सेना भेजने के अनंतर खुर्रम पर चढाई करने के लिये बूंदी से स्वयं **प्रयाण किया।**

इस तरह हाडाराव के आने की खबर पाकर अजीम ने और हृदयनारायण जी ने इनका स्वागत किया। किया क्या इन्हें पाकर उनके मुरझाये हुए मन हरे हो गये। अपने एक पराक्रमी शिरमौर के आजाने से इनको लडने के लिये दुगुना उत्साह बढा। इनके आने के पूर्व शाही सेना और बूंदी के हाडा वीर-दोनों ही दल उदास थे किन्तु इन्होंने आकर उनके **मन में रणोत्साह—** संग्राम भूमि में मरने और मारने का जोश भर दिया। इस अवसर में दिल्ली से वजीर आसफ खाँ स्वयं सेना लेकर समर भूमि में आ पहुँचे। दोनों के मिल जाने के बाद इनकी खूब ही **मिलकर बजी।**

इधर आसिफ खाँ और हाडाराव की अध्यक्षता में शाही सेना और उधर स्वयं खुर्रम की सरदारी में शत्रुसेना का **सामना हुआ।** यह युद्ध शेरपुर के निकट हुआ और बादशाही सेनाकी तोपों से गोलों की गर्म २ वर्षा ने शत्रुसेना के **पैर उखाड दिये।** यद्यपि खुर्रम की सहायता के लिये दो मरहटे और तीन मुसलमान नव्वाब संयुक्त हुए थे किन्तु मांगी हुई फौज से देश का विजय कभी नहीं होता है। खुर्रम के साथ ही ये भी **भाग निकले।** मैदान वजीर और राजा के हाथ आया।

खुर्रम ने, उसके सहायकों ने और साथ ही उनकी सेना ने यद्यपि भाग कर मैदान दे दिया किन्तु आगे भागते हुए उन्हें **लाज आई**। इस कारण कहीं **ठहर** कर ये फिर अपनी २ सेना सजाने लगे। और इस अवसर में अपना विजय प्राप्त करने के लिये समय देखते रहे। इन्होंने फिर क्या किया सो लिखने पूर्व यहां यह जतला देना आवश्यक है कि नूरजहां की कृपासे बुरहान पुर का जो सूबादार नियत हुआ था वह देवगढ की ओर से शत्रुसेना का जोर अधिक पडता देख कर घबडा उठा। उसने वर्जीर आसफखां को पत्र लिख-कर सहायता मांगी। इन्होंने रत्नजी की सलाह लेकर प्रथम तो जोधपुर और आमेरनरेश को सूबादार अजीम की सहायता के लिये भेजा और फिर बादशाह की आज्ञा से **हाडाराव को** वहां का **सूबादार** नियत कर दिया क्योंकि पहले जब तक राव रत्नसिंहजी बुरहान पुर में रहे सब तरह के उपद्रव दबे रहे थे। केवल इतना ही नहीं अपनी दो हजार सेना देकर हृदयनारायणजी को अजीम की सहायता के लिये भेजा।

हाडाराव **रत्नसिंहजी** इस प्रकार बादशाह जहांगीर की ओर से बुरहान पुर के क्या **दक्षिण प्रदेश के सूबादार** नियत होने पर वहां वर्षों का निवास मान कर एक बार अपना राज्य संभालने के लिये बूंदी आये। यहां केवल दो महीने रहे। इतने ही दिनों में इन्होंने करण सिंहजी और बलवंत सिंहजी को तो अपने राज्य का भार सौंपा और मनोहर सिंहजी को मऊका रक्षक नियत करने के अनंतर यह माता के चरणों में प्रणाम करके दक्षिण की सूबादारी पर बुरहान पुर के लिये बिदा हुए और जाते समय करौली से बालक शत्रु शल्यजी को बुला कर बूंदीमें रखते गये। इन्होंने अब राय मल्लजी के पौत्र बुद्धिचंद्रजी को तो तिमरनी का किलेदार नियत किया और हृदयनारायणजी को पत्र द्वारा खूब सचेत कर दिया कि समझ बूझकर काम करना और आगे बढकर हाडाराव ने बुरहान पुर में अपनी वीर वाहिनी सेना सहित प्रवेश किया। वहां कछवाहे द्वारकादासजी सेनापति बनाये गये। हमीर सिंहजी के पुत्र प्रताप सिंहजी और पूरावत सरदार को एलिचपुर का उपद्रव शान्त करनेके लिये बिदा किया।

कोई २ कहते हैं कि इनको आसेरगढ में रक्खा गया था और हाडाराव स्वयं बुरहान पुर में रहे थे। कुछ भी हो किन्तु इन्होंने वहां पहुंचकर पहले की तरह एक बार फिर शांति स्थापित कर दी। बुरहान पुर रह कर इस प्रकार हाडाराव केवल निरंकुशता से शासन ही नहीं करने लगे थे किन्तु अब इन्होंने नये २ परगने बादशाही साम्राज्य में मिला लेने का लग्गा भी लगा दिया। इनके चार्ज लेते ही नूरजहां के आश्रित अथवा जिस व्यक्ति की उसने शिफारिश की थी वह मुसलमान सूबा वापिस दिल्ली को चला गया।

जब इस प्रकार से हलचल मिट चुकी तब वजीर आसिफखां ने खुर्रम का मार्ग रोकने के लिये फिर सेना भेजी। शाही सेना में सम्मिलित होकर जब देशी राजा संग्राम में जाते हैं तब राठोड सेना के आगे हरोलमें रहा करते हैं और कछवाहे सेना के पीछे चंदोलमें। आमेर नरेश जयसिंहजी इस चालसे प्रसन्न नहीं थे। उन्होंने बादशाह से निवेदन किया कि—"यदि दो लाख सेना के साथ मुझे भेजा जावे और हरौलमें मुझे नियत कर दिया जाय और राठोडों के केवल ५००० सवार हैं इस लिये उनको चंदौलमें रहने दिया जाय तो विजय अवश्य होगा" बादशाह ने इस प्रस्तावको चाहे स्वीकार कर लिया किन्तु जोधपुर नरेश गजसिंह इस चालसे उदास होगये। वह इस क्रम को स्वीकार न करके अलग ही चलने लगे। और जयसिंहजी भी इस तरह अलग।

अध्याय ७.

खुर्रम की भागड़ और भीमसिंह की वीरता।

राना अमरसिंहजी के पुत्र करणसिंहजी पहले बादशाह की शरण में जाही चुके थे। अब उनके छोटे भाई भीमसिंहजी ने भी वही मार्ग लिया। वह शरण होने ही के लिये गये थे अथवा तीर्थयात्रा के लिये सो मालूम नहीं किन्तु उन्होंने भी बादशाह की सेवामें उपस्थित होकर **पट्टा लिखवाया**। मुन्शी देवीप्रसादजी के "जहांगीरनामा" में खुर्रम से हार कर राना अमरसिंहजी का स्वयं बादशाह की शरणमें जाना जहांगीर ने अपने रोजनामचे में लिखा है। मेवाडके इतिहास में इस का विरोध है किन्तु इस जगह मेवाड का इतिहास नहीं

लिखना है और न हाडाराव के चरित्र से इन बातों का कुछ सम्बन्ध है इस कारण दोनों ओर का बयान लिखकर खंडन मंडन करने की आवश्यकता नहीं। हां! यहां जो कुछ लिखा गया है वह प्रसंग आ पडने पर केवल उस समय की सामयिक घटनाओं का दिग्दर्शन कराने के लिये।

खैर! इन्होंने चाहे बादशाह से पट्टा ही क्यों न लिखवा लिया किन्तु कविराजा सूर्यमल्लजी के मतसे तथा पंडित गंगासहायजी के "वंशप्रकाश" के अनुसार खुर्रम ने इस समय उदयपुर की शरण अवश्य ली और यदि खुर्रम से हारकर ही रानाजी बादशाह के एक बार शरणागत होगये हों तो पुत्र ने उनकी शरण जाकर शरण का बदला शरणमें चुका दिया। खैर जो कुछ हो किन्तु सूर्यमल्लजी के मतमें इन भीमसिंहजी ने **खुर्रम की** रक्षामें अपने शरीर का **तिल तिल** कटवा दिया। यह बात प्रसङ्ग आ पडने पर आगे चलकर कही जायगी किन्तु इधर आमेर और जोधपुर अजीम की सेवा में अपनी सेना समेत आ सम्मिलित हुए और हृदयनारायणजी भी इनके साथ हुए। इस तरह जब इस ओर संग्राम के लिये पूरा साज सामान इकट्ठा होगया तो उधर खुर्रम ने भी दक्षिण में आकर लडाई ठान ही तो दी। बस खूब ही **घमासान** युद्ध हुआ। आंधी तूफान आनेसे जिस तरह भारतवर्ष का प्रशांत महासागर लहरों पर लहरोंसे भर जाता है उसी तरह दोनों दलों के सैनिकों से, हाथियों से, घोडों से, ऊंटों से, रथों से और तोपों से **मैदान भर गया**। उस समय कहीं सिपाही तो कहीं हाथी और कहीं घोडे तो कहीं ऊंट, गोलियों के ओलों से, तलवार की खचाखच से और भालों की मार से गिर २ कर ढेर के ढेर इकट्ठे होने लगे। कहीं किसी नरेश का छत्र या चंवर गिर पडा है तो कहीं जेवरों में से टूट २ कर हीरे मोती ही गिरते हैं। कायर लोग जब जान बचाकर भाग जाने की चेष्टा कर रहे हैं तब आकाशमें उड २ कर चीलहों ने, कौवों ने और गिद्धों ने घायल सैनिकों के, मरे हुए वीरों के हाथ पैर ले २ कर विमल आकाश को काला कर दिया है। बडी २ तोपें, छोटी मोटी बंदूकें अपने २ शब्दों से पृथ्वी को गुंजाकर आकाश को धुआंधार करने के साथ कोसों तक के निवासियों को युद्ध की

सूचना देती हुई कायरों के हृदय को दहला रही हैं । उत्तर का पवन शाही सेना के अनुकूल होकर सैनिकों का मरने मारने के लिये प्राण जाने तक भी पीछा पैंड न रखने के लिये और इस तरह **"नमक का हक"** अदा करने के लिये जब दूना चौगुना उत्साह बढ रहा है—उनके हृदय में नया २ जोश पैदा करके अपनी वर्षों की रुकी हुई शक्ति का खूब ही उपयोग हो रहा है तब खुर्रम की **मांगी हुई सेना** में शाही सेना की मार से खलभली मचगई है। हाडाराव रत्नजी इस समय बीजापुर में अडे हुए हैं तो शाही सेनापति अजीम भागपुर में । अब खुर्रम की मांगीहुई सेना के **पैर उखड** गये । एक ओर मरहटे भागे तो दूसरी ओर खुर्रम के मुसलमानों ने भी संग्राममें **पीठ दिखा** कर कायरपन का परिचय दिया । इस प्रकार जिन लोगों के बलसे खुर्रम ने पिता से लडकर वैर सिसाया था--जिनकी सहायता के भरोसे वह जन्मदाता पिता का विरोधी बनकर पुत्रधर्म से विमुख हुआ था वे ही इसकी नाव मझधार में छोडकर **भाग निकले** । जबतक खुर्रम को इस बात की खबर न मिली वह अवश्य आमेर की कछवाही सेना से **जान झोंक**कर लडा किन्तु जब पीछे से--पीठ की ओरसे उस पर अधिक जोर पडने लगा—जब पीठ फेर कर देखते ही उसने मैदान सूना पाया तब उस की भी **अकल ठिकाने** आगई । वह यद्यपि अपने को बहुत बडा बहादुर मानता था—और था भी क्योंकि उसने अनेक युद्धों में विजय पाकर अपनी वीरता की बानगी पहले कई बार दिखला दी थी, किन्तु इस समय वह **हिम्मत हार गया** । यदि ऐसे स्थान पर कोई क्षत्रिय नरेश होता—कोई हाडा सूर होता तो अवश्य ही शत्रु को पीठ दिखाने में उस की जननी लाज जाती किन्तु खुर्रम को अब एक पल भी समरभूमि में ठहरे रहने की हिम्मत न हुई ।

उदयपुर नरेश **महाराना** अमरसिंहजी का खुर्रमसे हार मानकर बादशाह जहांगीर की शरणमें आना, उनका बादशाह की सेवा में उपस्थित होना और उनके पुत्रों का बादशाह की सेवा करके इनाम और पदवियां पाना जैसे मुन्शी देवीप्रसादजी के "जहांगीरनामे" में लिखा हुआ है उसी तरह "वंशभास्कर" की टिप्पणी में बारहट कृष्णसिंहजी. मेवाडी इतिहास के आधार पर

लिखते हैं कि—"विक्रमी संवत् १६७१ में महाराना अमरसिंह (जी) के साथ बादशाह जहांगीर की संधि हुई तब शाहजादा खुर्रम ने भीमसिंह को अपने साथ लेजाकर बादशाह से उसे राजा की पदवी के साथ बड़ा दरजा दिलवाया था । तब ही से भीमसिंह बादशाही सेवा में रहता था । इसके लिये ऐसा प्रसिद्ध है कि शाहजादा खुर्रम की माता भीमसिंह के राखी बांधती थीं । इस कारण खुर्रम को भीमसिंह भानजा कहा करता था । इसी लिये भीमसिंह शाही सेना से निकल कर खुर्रम का सहायक हुआ परन्तु मेरे विचार से भीमसिंह जी का यह कार्य सराहने योग्य नहीं है क्योंकि उन्होंने बादशाह की सेवा स्वीकार कर—उसकी सेना के साथ खुर्रम से लडते २ जब यह शत्रु से मिल गये तो उन्होंने संधि का भंग अवश्य किया किन्तु कविराजा सूर्यमल्लजी के मत से इस घटना का स्वरूप कुछ और ही मालूम होता है । उनके लेख का सारांश यह है कि जब खुर्रम के पैर उखडने लगे तब उसकी एकाएक नजर **भीमसिंहजी** के ऊपर पडी । वह लपककर उनके पास पहुंचा और इस तरह जब खुर्रम ने उनकी **शरण** आ पकडी तब भीमसिंहजी ने शाही पट्टे की कुछ पर्वाह न कर खुर्रम का साथ दिया । मैं नहीं कह सकता कि शाही सेना का यह युद्ध दक्षिण में होते २ काशी तक कैसे आ पहुंचा अथवा उस प्रान्त में भी कोई काशी है किन्तु लोग कहते हैं कि खुर्रम की ओर से भीमसिंहजी प्रयाग के सूबादार थे । और यह युद्ध काशी के निकट पंचक्रोशी में हुआ था । खैर कुछ भी हो **भीमसिंहजी** निर्भय होकर खुर्रम की सहायता करने के लिये बादशाही सेना में भी घुस गये । उनका साथ उनके बाल मित्र सगतावत मान सिंहजी ने दिया । इनके अचानक पहुंचते ही यदि शाही दल में तहलका मच गया तो कुछ आश्चर्य नहीं क्योंकि जिसे अब तक मित्र अथवा अपना साथी समझे हुए थे वही अब शत्रु बनकर जब टूट रहा था तो कौन जानता थ कि यह मित्र है, मित्र के शरीर में शत्रु है अथवा प्रकट ही शत्रु बन कर लडने को आ खडा हुआ है । इस बात से जब उसका संपट न बंध सका तब **बादशाही सेना भाग निकली** । सच मुच ही भीमसिंहजी ने अपने

भीम पराक्रम से शाही दल विचलित कर दिया। इस युद्ध में शाही सेना का खूब ही संहार हुआ। आमेर की, हाडाओं की और मुसलमानों की सेना से जब भीम सिंहजी के शस्त्रों का प्रहार सहन न हो सका तब तीनों ही दलों ने—उनके मुखियाओं ने **पीठ दिखा दी**। वह कन कन की हो कर भागने लगी। इस समय बूंदी सेना के प्रधान नायक हृदयनारायण जी भी भागने वालों में थे। इस प्रकार जब शाही सेना भागने लगी तब भीम सिंहजी ने भीम की तरह समरभूमि में अडिग खडे रह कर जीत के नकारे बजा दिये—विजय की भेरी बजा दी। उस समय उनके सामने लडने के लिये जब और किसी को चाहे खडा नहीं देखा तब एक ओर जोधपुर नरेश गजसिंह जी को अपनी सजी हुई सेना के साथ डटे हुए देख कर भीम सिंहजी ने अवश्य ही अपना जय घोष बंद कर दिया और तब भीम सिंह जी उनसे जा मिले। गजसिंह जी ने उनको बहुतेरा समझाया परंतु भीम सिंह जी भिडे सो भिडे ही। समर अवश्य ही लोमहर्षण था क्योंकि इस लडाई में **भीम सिंहजी कट कट टुकडे २** हो गये। उनके मित्र मान सिंह जी मारे गये और इस तरह विजय लक्ष्मी उनके पैरों में लेट गई। उन्होंने अवश्य ही मर कर वह गति पाई जो रणभूमि में लड कर प्राण दे देने वाले क्षत्रियों का मुख्य उद्देश्य है—वह गति जिसके लिये भगवान श्री कृष्णचंद्र ने महारथी अर्जुन को उपदेश दिया है। इस प्रकार से जोधपुर नरेश गजसिंह जी ने भीम सिंहजी को मार कर यद्यपि बादशाही सेना की बिगडी हुई बात सुधार दी किन्तु खुर्रम का क्या हुआ? वह वहाँ एक पल भी न ठहरा। वह भागा और संग्राम भूमि में से पीठ दिखा कर भागा सो भागा ही।

बादशाह जहांगीर को अपनी सेना की ऐसी **भद्दी हार**—एक बार विजय होकर खुर्रम के भागने से मैदान अपने हाथ आने पर भी हार सुन कर जो खेद हुआ सो वही जानें किन्तु उन्होंने हाडाराव रत्नसिंह जी के पास **उलाहना** अवश्य लिख कर भेजा। उस फर्मान में लिखा यह गया कि—"यदि तुम्हारे छोटे भाई (हृदयनारायणजी) न भाग खडे होते तो

मेरी सेना के पैर कभी न उखडते। सच मुच तुम्हारे भाई ने रणभूमि से भाग कर **कुल पर कलंक** लगा दिया।" इस बात को जान कर हाडाराव ने भाई पर बहुत कोप किया। **हृदयनारायणजी** की जागीर के कोटा आदि गांव खाल्से कर लिये और वह भी लज्जा के मारे दूनी के गढ में बहुत काल तक **छिपे रहे**।

कर्नल टाड साहब ने इस स्थल पर बूंदी का इतिहास बहुत ही सिकोड दिया है यदि इस लिये वह इस युद्ध का अपने ग्रंथ "एनल्स ऐंड ऐंटीक्विटीज़ आफ राजस्थान" में कुछ उल्लेख न कर सके हों तो जुदी बात है क्योंकि उन्हे राजपूताने की सब ही वीर क्षत्रिय जातियों का इतिहास लिखना था किन्तु जहांगीर बादशाह के रोजनामचे में जिस के आधार पर मुन्शी देवीप्रसाद जी का "जहांगीरनामा" बना है कुछ नहीं लिखा है। हां टाड साहब मानते है कि हृदयनारायणजी ने पंद्रह वर्ष तक बादशाह की ओर से कोटा पट्टे में पाया और "जहांगीरनामा" में भी उनको बादशाह से ९ सदी मनसब और ६०० सवारों का अधिकार मिला था। ऐसी दशामें जब इन दोनों ग्रंथोंकी राय से हृदयनारायण जी स्वतंत्र हो चले थे तब हाडारावको बादशाह ने उपालंभ क्यों दिया?

खैर मुन्शी देवी प्रसादजी के जहांगीरनामे के अनुसार इस तरह खुर्रम का बादशाही सेना के साथ कोई युद्ध न हुआ तो न सही किन्तु उससे विदित होता है कि एक युद्ध खुर्रम के वजीर—या नाक के बाल सुंदर ब्राह्मण के साथ शाही फौज का हुआ था और उसमें सुंदर मारा जाकर उसका शिर बादशाह की भेंट किया गया। बादशाह इसीको पुत्र का बहकाने वाला मान कर लिखता है कि—"उसके कान कोई मोतियों के लालच से काट ले गया था। उसके मिट जाने से बे दौलत (खुर्रम) ने फिर कमर न बांधी। मानों उसकी दौलत, हिम्मत और अक्ल यही हिन्दू कुत्ता था।" यह घटना कबूल पुरे या विलोच पुरे के आस पास की बतलाई जाती है किन्तु यह नहीं लिखा गया कि ये दोनों स्थान किस परगने में थे। संभव है

कि ये आज कल के संयुक्त प्रान्त (आगरा और अवध के सूबे) में हों क्योंकि उसी जगह कोल (अलीगढ) से २० कोश पर इनकी सेना होना लिखा गया है। इस युद्ध में सीसोदिया भीम सिंहजी के काम आने का जब इशारा नहीं है तो शायद यह नहीं और और ही कोई संग्राम हुआ है। इस के लिये उसी पुस्तक में देखा गया तो एक जगह भीम सिंह जी के मारे जाने की जो कथा लिखी हुई है उसका आशय यों है:-

"शाहजादों के आपुस में लडने की खबर इस तरह पहुंची। जब सुलतान परवेज और महावत खां प्रयाग के पास पहुँचे तो अबदुल्ला खां किले का घेरा छोड कर झूसी को लौट गया। फिर अबदुल्ला खां और भीम ने जौनपुर का रास्ता लेकर शाहजहां से बनारस आने की अर्ज कराई। खुर्रम से अबदुल्ला खां राजा भीम और दर्या खां रास्ते में आ मिले। उधर शाहजादा परवेज और महावत खां ने दमदमे में आकर डेरा डाला। इस लडाई में खुर्रम के सहायक खानदौरां का सिर काट लिया गया। अब खुर्रम ने अपने सर्दारों से सलाह पूंछी तो अक्सर खैरखाहों और राजा भीम ने तो यही सलाह दी कि मैदान में लडना चाहिये। परंतु अबदुल्ला खां इस बात पर बिलकुल राजी न हुआ। वह कहता था कि शाही लशकर में ४० हजार सवार हैं और हमारी सेना में नये पुराने मिला कर ७ हजार भी नहीं। इस लिये यह मुनासिब है कि जहांगीरी सेना को यहीं छोडकर दक्षिण को कूच करदें परन्तु **शाहजहां ने** गैरत और बहादुरी से इस बात को कुबूल न करके **लडने की ठान दी**। बादशाही सेना इतनी अधिक थी कि शाहजादे की सेना को तीन ओर से घेर लिया। इस घेरे में शाहजादा भी आ गया था क्योंकि वह सारी सेना के बीच में घोडे पर सवार हो कर डटा हुआ था। खुर्रम का तोपखाना शाही तोपों के आगे ठहर न सका। दर्या खां भाग गया। हिरावलके बांये हाथ की सेना भी भागी। परन्तु **राजा भीम** ने बादशाही फौज के बहुत होने की कुछ पर्वाह न कर अपने थोडे से पुराने राजपूतों के साथ सेना में घुस कर **तलवार बजाई**। उस शेर मर्द ने अपने राजपूतों समेत लडाई के

मैदान में पांव जमा कर ऐसी बहादुरी दिखाई कि चुने हुए बहादुरों ने जब तक चारों ओर से उसे घेर कर तलवारों से मार न गिराया तब तक जहां लों उसके दम में दम रहा लडा किया ।'' इसके अनन्तर उस जगह शाहजादे खुर्रम का शाहजादे परवेज से हार कर पटना को चला जाना बयान किया गया है ।

''वंशभास्कर'' में कहे हुए भीम सिंहजी के मारे जाने के हाल का सम्बन्ध इस घटना से कितने ही अंश में मिलता हुआ है क्योंकि उस युद्ध में भीम सिंहजी का खेत रहना लिखा हुआ है और इस में भी । उस युद्ध का स्थल काशी के आस पास बतलाया गया है और इसका भी वहां ही । उस युद्ध में भीम सिंहजी के मारे जाने पर या उससे पहले ही खुर्रम का भाग जाना दिखलाया गया है और इस इतिहास से भी लडाई के मैदान में से निकल जाना मालूम होता है । इतनी बातें मिलती जुलती होने पर भी दोनों युद्धों में धरती आकाश का सा अन्तर है । ''वंशभास्कर'' के लेख से भीम सिंहजी जोधपुर नरेश गजसिंह जी से लड कर वीरगति को प्राप्त हुए और ''जहांगीरनामे'' में उनका परवेज के अनेक साथियों से घेर कर बध किया गया । जब इन दोनों युद्धों की गवाही टाड साहब की किताब में नहीं मिलती है तब मैं क्यों कर कह सकता हूँ कि दोनों में कौन ठीक है । खैर इसका विचार पाठक पाठिकायें स्वयं करलें अथवा और कोई तीसरा—नहीं चौथा इतिहास उपलब्ध हो तो भी निर्णय किया जा सकता है किन्तु उसमें पक्षपात न होना चाहिये ।

बादशाह जहांगीर के कृपापात्र **महावत खां** का नाम इस पुस्तक में कई बार आया है किन्तु काल पाकर वह क्यों कर बादशाह से **बागी होगया** सो प्रसंग आ पडने पर लिखा जा सकता है । यहां इतना अवश्य लिख देना चाहिये कि हाडाराव रत्न सिंहजी के पौत्र श्याम सिंह जी और भाई केशवदास जी के पुत्र श्याम सिंह जी इन दोनों की उमर इस समय १९ । १९ वर्ष की थीं । ये दोनों ही अपने कुल धर्म को कच्ची उमर में न जान कर महावत खां में **जा मिले** और इधर अजमेर के सूबादार अमानत खां के पास बूंदी के भाई दयालु सिंहजी भी जाकर अपयश भाजन बन गये ।

इसके अनन्तर फिर रत्नसिंहजी लड़ाई के मैदान में क्यों कर पहुंचे और बहादुरी दिखला कर उन्होंने किस तरह नाम कमाया सो आगामि अध्याय में लिखा जायगा।

अध्याय ८.

हाडाराव की जीत और कैद में खुर्रम।

कवि शिरोमणि सूर्यमल्ल जी ने एक युद्ध में शाहजादा खुर्रम के भाग जाने और सीसोदिया कुंवर भीम सिंह जी के खुर्रम की ओर से कट मरने का वृत्तान्त प्रकाशित करने बाद खुर्रम के युद्ध का अपने ग्रन्थ में सिलसिला यों दिया है। उनके "वंशभास्कर" से विदित होता है कि शाहजादा **खुर्रम** एक बार इस तरह संग्राम में परास्त हो कर भीम सिंहजी की बदौलत जय लाभ करने के अनंतर चुप नहीं रहा। उसने फिर कुछ दिन मेवाड नरेश करण सिंह जी की शरण में रह लेने बाद दक्षिण की ओर कूच किया। वह पहले दौलताबाद जाकर अपनी बेगमों और बाल बच्चों से मिला। फिर आगे बढ कर बीजा पुर और भाग नगर वालों को मिलाया। इस तरह उसने नवीन २ नब्वाबों को मिला कर **एक लाख सेना** इकट्ठी कर डाली। उसके सरदारों में फैजुल्ला खां, अमर सिंहजी, आकबत खां, अबदुल्ला, दरिया खां, कुतुबुद्दीन, गुमान खां, मुहम्मद तकी इत्यादि थे। अब कितने ही मरहटे भी आ मिले। इस में दूलह खुर्रम बना और सारी सेना बराती। सबके परामर्श से ठहराव यह हुआ कि पहले बुरहान पुर का विजय कर फिर पूर्व में आसरे गढ जीतना। इसके अनंतर मालवा जीत लिया जायगा। इसी उद्देश्य से इन्होंने अपनी सेना को दो हिस्सों में विभाजित किया। एक का अधिनायक खुर्रम और दूसरे के और सब। इस प्रकार की रचना कर इन्होंने दक्षिण पर चढाई की। इसका एक भाग सतपुडा पहाड की कंदराओं में जा छिपा और दूसरे भाग ने प्रकट रूप से चढ कर बुरहान पुर पर हमला किया।

शत्रुसेना का आक्रमण सुन कर **हाडाराव** रत्नसिंहजी के शरीर का रक्त संग्राम भूमि में तलवारों के हाथ दिखा कर मरने मारने के लिये उबल उठा।

जिस तरह मनुष्य को विवाह के लिये उत्साह होता है उसी तरह इन्हें युद्ध करने के लिये जोश आया। शत्रुसेना का हमला होते ही यह न मालूम क्यों किले की लडाई करने के बदले मैदान के संग्राम से राजी हुए। इन्होंने किले के दक्षिण द्वार खोल कर अपनी सेना सहित खुर्रम पर **धावा किया।** हाडाराव ने अपना घोडा तोपों के शिर पर रक्खा। हाडाराव की सेना ने इस तरह तोपों से गोलों का मेह बरसा कर शत्रुसेना को छिन्न भिन्न कर दिया। खुर्रम की फौज में तोपखाने का जो जथा था वह **बिखर गया।** अब जब दोनों सेनाएं आपस में निकट आकर भिड पडीं तब हाडाराव ने, इनके सरदारों ने और इनकी सेना ने जान झोंक कर तलवारें खूब ही **खचा खच** बजाईं। दोनों सेनाओं की इस तरह तलवारों की खचा खच से बहादुरों के शिरों का, हाथों का, पैरों का, और अंगों का ढेर लग गया, रक्त के पनाले बह २ कर बुरहान पुर की प्यासी धरती का तर्पण हुआ और दो घडी तक संग्राम का एक **अजब रंग** जम गया कि क्या कहा जाय।

इस तरह चाहे हाडाओं की—वीर हाडा जाति की तलवारों के घाव न सह कर अथवा किसी प्रपंच से ही सही—खुर्रम की सेना ने रणभूमि से **मुख मोड दिया।** रण के मद में मतवाले हाडाराव ने शत्रुसेना का **पीछा किया** और किया भी बहुत थोडे वीरों के साथ। खुर्रम की सेना इनसे लडती झगडती इन्हें जब दूर तक निकाल ले गई तब अचानक शाहजादा की उस फौज ने जो अब तक गिरि कंदराओं में छिपी हुई थी आकर **बुरहान पुर के किले** पर हमला किया। हमला क्या किया वह सीढियां लगा कर पहले दुर्ग के जीव रखे में और फिर किले के भीतरी हिस्से में **जा घुसी।** रत्न सिंहजी किले की रखवाली के लिये जिन सुभटों को छोड गये थे वे सबके सब वहीं मारे गये। यद्यपि इस तरह और सब मारे गये किन्तु जिस बुर्ज पर सेनापति द्वारका दास जी कछवाहे थे वह शाहजादे की सेना के हाथ न आने पाया। केवल एक ही तोप के बल से उन्होंने शत्रु सेना को उस ओर फटकने तक न दिया। जिन्होंने उस ओर को कदम बढाया वे ही, उसी समय मर कर धरती पर दंडवत करने लगे। इनके साथ हरपाल सिंह जी, लाल सिंहजी,

नीमावत सरदार और बालनोत सरदार इस तरह चार उमराव थे—सबके सब इस बुर्ज पर ऐसे डटे रहे जैसे **अंगद का पैर**। जिस समय बुरहान पुर के किले पर—नगर पर इस तरह खुर्रम की सेना ने अचानक अधिकार जमाया उस समय **हाडाराव** रत्न सिंहजी वहांसे आध कोश के अंतर पर शाहजादे की दूसरी सेना से लडने में फंसे हुए थे। वहीं आकर इन्होंने इन्हें किला छिन जाने की खबर दी। सुन कर इन्हें ज्यों शोक हुआ त्यों कुछ हर्ष भी हुआ। बस अपने भाई, भतीजों और अपने वीर सुभटों को संभाल कर इन्होंने तुरंत ही किले की ओर धावा मारा। जिस समय यह अपने सवारों के साथ घोडा फेंकते हुए बुरहान पुर के दक्षिण द्वार पर पहुंचे तो वह बन्द था। निसैनियां (सीढियां) इनके पास थीं ही नहीं। बस इस लिये उस हाथी को जो रणभूमि में जाकर सूंड से स्वयं शत्रुओं पर खड्ग का प्रहार करता था बुलवाया। हाथी ने यों आकर दरवाजे के **किंवाड** तोडे और किलेमें घुस कर वहां के प्रहरी गण को मारने और इस तरह रत्न सिंहजी को किलेमें घुसा देने के लिये वहां सबके आगे हुआ। ऐसे रत्नसिंह जी **भीतर** घुसे और उनके साथ उनकी सेना भी घुस पडी। घुसते समय शकुन भी अच्छे हुए। किलेके भीतर उसी द्वारके निकट एक परमेश्वर का भक्त रहता था। उसने आकर राजा को आशीर्वाद दिया और साथ ही कह दिया कि भगवान्‌ने आज मुझे स्वप्न में पधार कर कहा है कि शत्रुओं का संहार करके अपने कार्यका साधन करो।

भीतर प्रवेश करके यह चुप चाप चले गये हों सो नहीं। इनके पहुंचने से पहले केवल एक बुर्जके सिवाय इनकी सेना जो किले के भीतर थी **सब कट चुकी** थी। भीतर शाहजादे की सेना ने जगह २ अपने थाने जमा लिये थे। इस समय मानों सारा किला ही उसने हथिया कर अपना अधिकार कर लिया था। इस कारण भीतर जाकर भी हाडाराव को तलवार बजानी पडी। **बाजार** में तलवारों की खचा खच और गोलियों की मार से वहां के नर नारियों में **खलभली** मच गई। अवश्य ही जब यह स्वयं बुरहान पुर के सूबादार थे इन्हें वहां की प्रजा प्राणोंसे भी प्यारी थी और इस

कारण प्रजा को दुखी देखकर यह भी दुखी होते थे किन्तु उस समय बुरहान पुर के शरीर पर ज्वर चढा हुआ था । बस उसको उतारने के लिये इनकी तलवार, इनकी बंदूकें कुटकी थीं । इनके शस्त्रों से बाजार में लहू इस तरह फैल गया जैसे रंगरेजों की दूकान पर कुसुम के माट फूट जानेसे धरती लाल हो जाती है । वीर हाडाओं की तलवार यवनों के गले पर बस वैसे ही गिरती थी जैसे यमराज की कृपाण । ऐसे लडते २ ये लोग किले के बीच में जा पहुंचे । भतीजे केशवदासजी, कुमार माधव सिंहजी और कुमार हरि सिंहजी हाडाराव के आगे तलवारें चलाते जाते थे इनके हमले से यवन सेना छिन्न भिन्न होकर—छितर बितर होकर मुर्दों का ढेर लग गया । एक ओर खुर्रम, और मुहम्मद तकी, अबदुल्ला खां और गुमान खां और दूसरी ओर शत्रुसेना के सारे ही नरेश एक ओर आमेर नरेश द्वारकादासजी और दूसरी ओर स्वयं हाडाराव । खूब ही घमसान मच गया । इसमें दक्षिणियों का घमंड टूट गया ।

इस लडाई में राजकुमार **हरि सिंहजी** के तीन तीरों से बिंध कर शाहजादा **खुर्रम घायल** हुआ । घायल ही न हुआ किन्तु हरि सिंहजी ने उसे **पकड कर** सिंह के समान पराक्रम दिखाया । ऐसे खुर्रम कैद हुआ और साथ ही मुहम्मद तकी भी । "वंशभास्कर" में--"बंधिय तैसहि पग्घ बिछोरि--" लिखा है जिसका मर्मांश यह है कि पगडी बिखेर कर उनकी मुशकें कस दी गई । उनके शस्त्र छीन लिये गये और दो सो वीर हाडाओं की रक्षा में उनको रक्खा गया । राजाने कुमारों के कन्धे थोप कर उन्हें शाबाशी दी । और तब आप शत्रुकी बची हुई सेना का संहार करने के लिये हाथी चल होने पर भी अचल हाथी की तरह—पर्वत की तरह अंगद केसे पैर रोप कर खडे हो गये । इन्होंने अबदुल्ला खां और गुमान खां का वध किया, साथियों सहित संतू और रामधन मरहटा सरदारोंको मारा और शेष शत्रुओंका जब संहार किया तो दूसरी ओर जयपुर वाले द्वारकादासजी ने भी अपना कर्तव्य पालन करने में कसर नहीं की । वह अडिग पहाड़ की तरह शाहजादे की सेना का किले पर सर्वत्र अधिकार हो जाने पर एक—केवल एक तोपके भरोसे एक ही बुर्जमें डंटे

हुए थे। तीन दिन तक दिन रात अविश्रान्त युद्ध से किले में अपना अधिकार जमा कर चौथे दिन उसी बुर्ज में पहुचे जिसमे कछवाहे सरदार अडे हुए थे। दोनों के मिलाप से दोनों ही का उत्साह दूना हो गया। अब एक और एक दो नहीं-एक और **एक ग्यारह** हो गये। दोनों ने मिल कर जब शत्रु सेना के बडे २ नायकों को घेर लिया तब भाग नगर के नरेश, बीजापुर के शासक, दरिया खां, आकबत खां, कुतुब खां, फैजबख्श और अमर इत्यादि ने इनके भालों की मारसे घबडा कर अपने प्राणों की भिक्षा मांगी। राजा ने कहा कि—अपनी २ जान लेकर निकल जाओ। और कुछ मत ले जाओ। हां फिर कभी हमारा सामना करके इधर मरने को **मत आना** केवल इतना ही नहीं बरन् उन लोगों ने इकरार किया कि—"बादशाही सेना से जब २ हमें युद्ध करना होगा तब २ हम हाडाओं को देखते ही अलग हो जायंगे। पराक्रमी हाडा वीरों का कभी **सामना न करेंगे**। जहां आपका पीला निशान उडता हुआ दिखाई देगा वहींसे हम मुड जायगे। आपके और हमारे बीच परमेश्वर है, कुरान है और पंजतन पाक है"। इस प्रकार से लिखवा कर राजा ने उन्हें प्राण दान दिया, उनकी इज्जत बचाई और चुपचाप उन्हें निकाल दिया।

ऐसे राजा ने आधा कटक नगर बाहर निकाल दिया और आधे में घुस कर खड्गों के प्रहार से बिलकुल विचलित कर दिया। प्रातःकाल से लेकर सायं काल तक युद्ध होता रहा। अंत मे **विजय श्री** हाडाराव के पैरों पर लोटने लगी। खुर्रम और मुहम्मद तकी तो पहले कैद हो ही चुके थे। दो मुसलमानों और दो ही मरहटे सरदारों को मार कर पांच मुसलमान सरदारों को निकाल दिया। इस तरह पहले युद्धमें हृदय नारायणजी के भाग जाने से जहांगीर ने राव रत्नसिंहजी को जो उपालंभ दिया था उसकी केवल मरम्मत ही न हुई बरन् बादशाह की कृपा का—**आनंद का ठिकाना** न रहा। वीर हाडाओं ने, पराक्रमी रत्नजी ने दिखला दिया कि हाडा राजपूत किस तरह रणभूमिमें अचल की तरह प्राणों की बाजी लगा कर भगवान् कृष्णचंद्र के "हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा मोक्ष्यसे महीम्"

का उदाहरण बनते हैं। समरभूमि मे पैर रखने के अनंतर "**गाढा* टले परन्तु हाडा न टलें**" की कहावत कितनी वार बीर हाडाओं ने कैसे सच्ची कर दिखाई है। राव रत्न सिहजी की तरह प्राणों की बाजी लगा कर, अपने आपे को कार्य की न्योछावर करके जो लडते हैं विजय सदा उनके आगे हाथ बांधे खडी रहती है।

बस ऊपर जो कुछ लिखा गया है वह "वंश भास्कर" के आधार पर किन्तु मुन्शी देवी प्रसाद जीके "जहांगीर नामे" मे खुर्रम के साथ एक वार के सिवाय ऐसे किसी भी संग्राम का वर्णन नहीं है जिनमे शाहीसेना के मुखिया हाडा राव रत्नसिंहजी हों। उसमें यद्यपि इनकी बीरता की, इनकी बादशाह पर भक्ति की, बादशाह की इन पर कृपा की और इनके सुकार्यों की प्रशंसा कर बादशाह के हाथ मे उन्हे पदवियों पर पदवियां, इनाम पर इनाम और जागीर पर जागीर दिलवाई गई है। जो कुछ किया गया उसके लिये समय आने पर आगे लिखा जायगा किन्तु न तो इस युद्ध का कहीं नाम है और न शाहजादा खुर्रम का कैद होना ही और सो भी हाडाओंकी कैद में आना माना गया है। मेरी एक चिट्ठी के उत्तर मे मुन्शी देवी प्रसाद जी ने जोधपुर से लिख भेजा है कि:—

" हां खुर्रम का राव रत्न (जी) की कैद में रहना न तो जहांगीर की तवारीख से पाया जाता है और न शाहजाहां की से सो यह वैसी ही **दन्त कथा** है जैसी कि उदय पुर वाले कहते हैं। वे कहते है कि खुर्रम को बाप ने जब निकाल दिया तब वह उदय पुर आकर राजा जगत् सिंह-जीकी शरण में रहा। और जब जहांगीर मरा तब राना जी ने खुर्रम को अपनी फौज के साथ भेज कर तख्त पर बैठा दिया।"

"जहांगीर नामा" के मत से खुर्रम का हारना, भाग जाना अवश्य पाया जाता है। उससे रत्न सिंहजी द्वारा संधि होने की बात चीत भी हुई थी। उसके देखने से हाडाराव के बुरहानपुर का सूबादार होने की अवश्य झलक निकलती है किन्तु इन से खुर्रम का युद्ध होना कहीं नहीं लिखा गयाहै।

---

* गाढा—गाढेराव एक हाथी का नाम था जो समर भूमि में अचल खडा रहता था।

राजपूताने के सुप्रसिद्ध इतिहास लेखक टाड साहब का कथन देशी रजवाडों के विषय में लोहे की लकीर समझा जाता है । उन्होंने परवेज के युद्ध में मारे जाने और खुर्रम का विजय होने का उल्लेख करने के साथ ही:-

"सागर फूटा जल बहा, अब क्या करैं जतन्न,
जाता घर जहांगीर का, राखा राव रतन्न"

यह पद्य देकर लिखा है कि अपने दोनों पुत्र माधव और हरि के साथ रत्न ने बुरहानपुर पहुंच कर उपद्रवियों को युद्ध मे परास्त किया। यह युद्ध कार्तिक शुक्ला १९ मंगल वार संवत् १६३९ में हुआ । इस संग्राम में राव रत्न के दोनों पुत्र बहुत घायल हुए । इस सेवा के उपलक्ष्य में राव रत्न को बुरहान पुर की सूबेदारी मिली और उन के पुत्र माधव को कोटा जागीर । यद्यपि जिस युद्ध में रत्नसिंह जी का विजय हुआ वह परवेज और खुर्रम का नहीं था । किन्तु ऊपर जो पद्य लिखा गया है उस से स्पष्ट होता है कि राव रत्न ने खुर्रम की प्राणरक्षा की और इसी तरह जहांगीर के जाते हुए घराने को बचा लियां । बूंदी के इतिहास में इस दोहा की घटना का जिस प्रकार पर उल्लेख है उसका स्पष्टी करण जब अगामि अध्याय में पाठक पढ लेंगे तब उन्हें मालूम हो जायगा कि कवि राजा सूर्य मल्लजी के लेख में कहां तक सत्यता है किन्तु जब टाड साहब जैसे अनेक इतिहासों की छानबीन करके निर्णय करने वाले के लेख से बुरहानपुर से राव रत्न सिंहजी का उपद्रवियों को दमन करना, वहांका गवर्नर नियत होना और जहांगीर के घराने की रक्षा करने के लिये खुर्रम की प्राण रक्षा करना पाया जाता है तब सूर्य मल्लजी के लेख में और टाड साहब के निर्णय में थोडा बहुत अंतर होने पर भी मानना पडता है कि बूंदी का इतिहास सचाई से भरा हुआ है, और "जहांगीर नामे" और शाहजहां नामे में खुर्रम के बूंदी वालों की कैद में आजाने का हाल न लिखने का कारण यही ध्यान में आता है कि एक क्षत्रिय नरेश की कैद में बादशाह के चले जाने से उन्होंने अपनी जाति का [illegible] समझा। ऐसे पक्षपात का दोष उन मुसलमान लेखकों पर आ [illegible]

जिनके आधार पर मुन्शीजी ने ये किताबें लिखीं । स्वयं मुन्शीजी पर नहीं । क्योंकि मुसलमानी इतिहास में उनका ज्ञान पूरा है । और वह पक्षपाती भी नहीं हैं । किन्तु उन्होंने जितना इस विषय में जाना वह केवल मुसलमानी इतिहास से । खैर !

इस तरह विजय पाकर हाडाराव ने समर भूमि में जाकर घायलों को संभाला । शत्रु और मित्र का उस समय विचार न कर सब का इलाज करवाया । द्वारका दासजी को करवर, हरिसिहजी को कापरेन, माधव सिंहजी को कोटा और केशव दासजी को खटकड प्रदान किया । और भक्त जगदीश दास को जो इन्हें बुरहानपुर मे प्रवेश करते समय मिला था लाख रुपया और बरोदा ग्राम दिया । कोटा माधव सिंह जी को मिलने के विषय मे टाड साहब का और सूर्यमल्लजी का जो मत भेद है उसका विचार आगामि किसी अध्याय में किया जायगा ।

अध्याय ९.

कैदमें रक्षा ।

कविराजा सूर्यमल्लजी के लेख के अनुसार शाहजादा **खुर्रम** और मुहम्मद तकी कैद अवश्य किया गया किन्तु यह **कैद नाम मात्र** की थी । राव रत्न सिंहजी ने इनकी रखवाली के लिये अपने छोटे पुत्र हरि सिंहजी को नियत करके उनसे खूब ताकीद कर दी थी कि "इन दोनों को किसी बात का कष्ट न होने पावै ।" पिता की आज्ञा का पुत्र ने किस तरह पालन किया सो पाठकों को कुछ पक्तियां पढने पर विदित होगा किन्तु इन दोनों के बुरहान पुर में कैद होजाने की खबर पाकर बादशाह जहांगीर ने राजा को लिखा कि "जय लाभ का सुसंवाद सुन कर तुम से मिलने को जी चाहता है । वहां का प्रबंध ठीक करके यहां चले आओ और पुत्र को मुहम्मद तकी के साथ यहां भेज दो । उन्हें लिवालाने के लिये सैयद भेजे जाते हैं ।" सैयद इस तरह का फर्मान लेकर जब बुरहान पुर पहुंचे तो नरेश ने उनको उचित

स्थान देकर उनकी पहुनाई की, मुहम्मद तकी के पैरों में बेडियां डालीं और शाहजादा को देखा तो बहुत दुर्बल पाया। हाडाराव शाहजादे की सूरत देखते ही उदास हो गये। उससे दुर्बलता का कारण पूंछा।

वह–"एकान्त में कहूंगा"

राजा–(सब लोगों को हटाकर) अच्छा फर्माइये।"

वह–"कुमार हरिसिंह **मुझे गुलाम की** तरह कैद रखता है। मुझ से पंखा झलवाता है, **हुक्का** भरवाता है और जो कहीं मैं हां के बदले ना भी कह दूं तो **नाक मल** देता है। गर्म २ रोटी खाने का भी मुझे अवसर नही मिलने पाता है। यदि उसे कोई समझाता है तो उसकी बात पर कान ही नहीं देता है। इस लिये इसे बदल दीजिये और हां! एक निवेदन और है। मुझे झूंठ मूंठ ही बीमार बताकर वहां **(दिल्ली) न भेजो**। आपके शरण में आवा, मेरे **प्राण बचे हैं**। वहां जाने पर मैं मारा जाऊंगा।" सुन कर हाडाराव ने ऐसा ही करने का शाहजादा को बचन दिया। और तब पैरों में हलकी २ सी चांदी की बेडियां (सैयदों को दिखलाने के लिये) डाल कर उसके घावों पर अपने हाथ से पट्टियां बांधीं और बीमार बनानेके लिये दस्त की दवा दी। अब हरिसिंहजी की जगह कुमार माधव सिंहजी को शाहजादे की रक्षा के लिये नियत किया। इनके साथ कितने ही बूढे २ विश्वास पात्र सरदारों को नियत कर राजा ने सब से कह दिया कि:—

"जो कुछ यह कहें सो करो"

जब इतना हो चुका तो अब जहांगीर के भेजे हुए सैयद बुलाये गये। आने पर उनको राजा ने समझाया कि–"शाहजादा बीमार है। आरोग्य होने पर शीघ्र ही हम भेज देंगे। अभी आप लोग मुहम्मद तकी को ले जाइये।" हाडाराव की इस बात को मान कर वे जब शाहजादा को वहां छोडते हुए मुहम्मद तकी को लेकर चल दिये तब नरेश ने शाहजादे के जो नाम मात्र के बंधन थे वे भी **खुलवा** दिये और राज कुमार माधव सिंहजी के पिता की आज्ञा से भी **बढकर आदर** खुर्रम का किया। अब उसको

बैठने को गद्दी, बिछाने को पलंग दिया गया। और पहनने को अच्छे २ वस्त्र और आभूषण। अब शाहजादे को ताजा और नाना प्रकार का, ऋतु के अनुकूल और इच्छा भोजन मिलने लगा। पिता से छिपा २ कर हंसी खेल भी होने लगा। केवल यदि कुछ रोक थी तो शस्त्रों की। इनके सिवाय कुमार माधव सिंहजी ने शाहजादे की खूब सेवा सुश्रूषा करके उसे **प्रसन्न कर लिया**। बस यहीं उन्हें **कोटा मिलने** का बीजारोपण हुआ। नगर वाले जानते थे कि खुर्रम कैद है किन्तु उसे आमोद प्रमोद में यह भी खबर नहीं थी कि दुःख क्या वस्तु है। अस्तु !

इस तरह बुरहानपुर रह कर शाहजादा चाहे जितना सुख भोग रहा हो परंतु बादशाह जहांगीर को उसे रत्न सिंहजी का न भेजना **पसंद न आया।** उसने हाडाराव को इस बात के लिये उपालंभ देकर शीघ्र ही खुर्रम को लेकर उन्हे दिल्ली में उपस्थित होने की आज्ञा दी। और फर्मान में लिखवाया कि–"यदि मार्ग मे मरने योग्य न हो तो उसे शीघ्र ही यहां **हाजिर करो।** मिस करके न रह जाय।" नरेश ने जब शाहजादे खुर्रम को बादशाह का फर्मान सुनाया तो उसने हाथ जोडकर गिडगिडा कर कहा कि–"मुझे वहां मत भेजो। मैं आपका **शरणागत हूं।**" सुनते ही हाडाराव बडे असमंजस में पड गये। उन्होंने मन मे सोचा कि:–

"यदि खुर्रम को साथ लेकर वहां चले जायं तो बादशाह इससे क्रुद्ध है इसका निश्चय **घात होगा** और जब यह हमारी शरण में ही आया हुआ है तब इसे देकर निज **धर्म से विमुख** होना है। फिर बादशाह के दूसरा कोई पुत्र भी नहीं। यह जो समय पाकर सिंहासन पर बैठेगा तो **हमारा उपकार** क्यों न मानेगा।"

इनके इस प्रस्ताव को सब ही अफसरों ने, भाई बेटों ने, पसंद किया और वही बीमारी का बहाना निश्चय किया गया। इस तरह धर्म और कर्म दोनों का साधन जिस बात से हो सकता था वही करने का मनसूबा पक्का हुआ॥ तब रत्नजी ने आधी सेना वहां रखकर सब लोगों से कह दिया कि:–

"दो बातों की याद रखना। एक बुरहानपुर की सीमा में कभी शत्रुको प्रवेश न करने देना और चाहे तुम्हारे प्राण ही क्यों न चले जायं परंतु कुल सूबे भर को प्रसन्न रखना और दूसरे खुर्रम यहां से निकल कर न चला जाय। इसे प्राण के समान रखना।"

इस प्रकार खूब लोगों से ताकीद कर सूबेदारी का प्रबंध ठीक कर **हाडाराव** वहांसे विदा हुए और शीघ्र ही बादशाह की सेवा में **उपस्थित** हुए। पहुंचते ही बादशाह ने फिर वही सवाल किया तब इन्होंने निवेदन किया कि:—

"वह मार्ग में ही मरजाता। भय है कि वह वहां पर शीघ्र ही शरीर छोड देगा।"

इनके इस कथन का वजीर आसिफ खां ने भी समर्थन किया और तब बादशाह ने **बुरहानपुर विजय** करने के उपलक्ष्य में कोहमुख हाथी, दिलयार नाम की ईरानी तलवार, सिरपेंच, पहुंची जोडा, आंवले के नाम वाले मोतियों का चौकडा, मणियों की मूंठ का खंजर, खास पोशाक, फौलादी बखतर और चांदी का नक्कारा दिया और टोंक, टोडा, रामपुरा, मालपुरा, चेचत, जीरपुर, खैराबाद—ये सात परगने बूंदी के निकट और तीन परगने दक्षिण में बादशाह ने अपने हाथ से **राजाका कंधा थोप** कर देदिये और साथ ही कहा कि:—

"**तुम्हारे घराने** को अभी तक किसी ने विजय नहीं किया। हां! पहले सुर्जन ने संग्राम में गुडवाना जीता और फिर भोज ने सूरत और अहमदनगर का विजय किया। किन्तु उनकी जीत तुम्हारे विजय के **पासंगे में भी नहीं है।**"

इस तरह भारतवर्ष के सम्राट से प्रशंसा पाकर, इनाम पाकर और 'वाह-वाही लूटकर जब रत्नसिंहजी अपने खीमों को लौटने लगे तब उन्होंने बादशाह का, शिवप्रसाद नामक हाथी जो लडाई के काम में बडा बहादुर था भेट किया। ऊपर जो कुछ लिखा गया है यह सूर्य मल्लजी कृत "वंश-

भास्कर " के इस प्रकरण का सारांश है किन्तु मुन्शी देवीप्रसादजी के " जहांगीरनामे " में चाहे बादशाह की आज्ञा से खुर्रम के कैद होने का वर्णन न हो किन्तु जहांगीर ने अपने रोजनामचे में हाडाराव रत्नसिंहजी के विषय में जो कुछ लिखाहै उसका सारांश यहां प्रकाशित करदेना आवश्यक है। उक्त पुस्तक को देखने से विदित होता है कि बादशाह जहांगीर ने इनको "**सर बुलंदराय**" अर्थात् जिसका शिर सदा ऊंचा ही रहता है, की पदवी दी थी। जहां २ रत्नसिंहजी का प्रसंग आया वहां २ बादशाह ने इसी नाम से इनका संबोधन किया है। बादशाह ने रणथंभोर किले की प्रशंसा करते हुऐ एक जगह लिखा है कि "राव सुरजन भाग्य की अनुकूलता से शुभचिंतकों की श्रेणीमें संकलित हुआ और विश्वासपात्र सुभटों में गिना गया। उसके पीछे उसका **पुत्र भोज** भी बडे अमीरों में था। अब उसका पोता सर बलंद राय **शिरोमणि सेवकोंमें** है"। खिलअत और इनाम की तो बात ही क्या किन्तु उससे मालूम होता है कि बढाते २ बादशाह ने उनको पांच हजारी तक का मनसब दे दिया था और बादशाह लिखता है कि—"मैंने **राय राज** का खिताब जो दक्षिण के खिताबों में सब से बढकर है सर बुलंदराय को दिया।" और यह दिया कब जब उसके पास खबर पहुंची कि—"शाहजहां देवल गांव में पहुंच गया और याकूत खां हबशी अंबर के लशकर से बुरहानपुर को घेरे हुए है। सर बुलंदराय किले में जमा हुआ बराबर लड रहा है परंतु ये लोग कुछ कर नहीं सकते।" खैर! रत्नसिंहजी की बहादुरी का वर्णन बुरहानपुर के एक युद्ध के विषय में इस किताब में इस तरह लिखा है:—

"शाहजहां वहां जाकर देवल गांव में ठहरा। अबदुल्ला खां और मुहम्मद तकी को सेना देकर कहा कि याकूत खां से मिलकर बुरहानपुर घेरें। आप भी आकर लालबाग में उतरा जो शहर के बाहर है। **रावरत्न** और दूसरे सरदारों ने जो किले में थे शहर और किले को मजबूत करके मुकाबिला किया। शाहजहां ने फर्माया कि एक तर्फ से अब-

दुल्ला ग्वां और दूसरी ओर से शाहकुलीग्वां कोट पर चढे। अबदुल्ला खां की तर्फ गनीम शाही सैनिक) बहुत थे। वहां सख्त लडाई हुई। और शाहकुली ग्वां, फिदाई खां और जां निसार के साथ कोट की दीवार तोडकर अंदर घुसगया। सर बुलंद राय अपने काम के आदमियों को अबदुल्ला खा के मुकाबिले पर छोडकर शाहकुली ग्वां के ऊपर आया। शाहकुलीखां किले के सामने उससे लडा और जब कई उसके साथी मारे गये तो उसने अंदर जाकर दर्वाजा बंद कर लिया। जब सर बुलंद राय ने किले को घेरकर जोर दिया तो शाह कुलीग्वां कौल कसम लेकर उससे मिला। शाहजहां ने इस हाल को सुनते ही फिर अपनी फौज जमा करके हमला करने का हुक्म दिया। इसमें मुबारिकखां और जांसुपार खां वगैरह बहादुरों ने बहुत जान मारी मगर कुछ काम न निकला। शाह-जहां ने तीसरी बार खुद सवारी करके हल्ला कराया। उसके बहादुर साथियों ने हर तर्फ से आगे बढकर बहादुरी की। किलेवालों में से भाइयों समेत बूदन खां, बाबा मीरक, लशकरखां का दामाद और रावरत्न के बहुत से राजपूत मारे गये। और बाकी लोग भी घबडा उठे थे। इतने में एक गोली सैयद जाफर के गले से छिलती हुई निकलगई। जाफर घबराकर भागा। उसे देखकर दक्षिणी भागे और शाहजहां की फौज के कितने ही नामर्दों को भी अपने साथ लेगये फिर इसी हालत में यह भी खबर लगी कि शाहजादा परवेज और खानग्वाना महावत खां बंगाले से लौट कर नर्मदा नदी तक पहुंचगये हैं। तब शाहजहां लाचार होकर बालाघा-टको लौट गया।"

गत पृष्ठों को पढने से पाठकों को अब मालूम होजायगा कि कविराजा सूर्यमल्लजी का और मुन्शी देवीप्रसादजी का लिखा हुआ बुरहानपुर का यह युद्ध एक ही है। दोनों के लेखों का मतलब एक ही है। हां दोनों में यदि बहुत बडा अंतर है तो यही है कि सूर्यमल्ल जी–बूंदी के समस्त इतिहास खुर्रम का बूंदी वालों की कैद में रहना मानते है और मुन्शी देवीप्रसादजी की पोथी से उसका भागजाना। कुछ भी हो जो कुछ है यह पाठकों के

सामने है और यदि कैद ही न हुआ हो तो कर्नल टाड साहब का लिखा हुआ वह दोहा मिथ्या ठहरता है जिसमें जहांगीर के नष्ट होते हुए घर की रत्नसिंहजी का रक्षा करना लिखा हुआ है और जब यह पद्य राजपूताने भर में प्रसिद्ध है तब खुर्रम का कैद होना मिथ्या नहीं हो सकता क्योंकि यदि कैद होकर राव रत्नजी की रक्षामें न रहता तो वह टाड साहब के लेखानुसार परवेज से युद्ध में मारा जाता और इस तरह जहांगीर का कुल कुनबा ही नष्टा होजाता।

जिस समय हाडाराव बादशाह के बुलाये हुए दिल्ली में निवास करते थे एकाएक खबर पहुची कि सिंधु नदी के पार कलावीसका किला महावत खां से सर न हो सका। इसपर बादशाह ने राव रत्नसिंहजी को वहां का विजय करने के लिये शीघ्र ही प्रस्थान कर जाने की आज्ञा दी किन्तु हाडाराव राव सुरजनजी के कौल के अनुसार वहां न गये। इन्होंने किस तरह नाहीं की और जब इनके ही कारण दक्षिण का उपद्रव दबा हुआ था तब बादशाह इनको दूसरी ओर क्यों भेजने लगा था—सो आगामी अध्याय में लिखा जायगा।

अध्याय १०.

प्रतिज्ञापालन और खुर्रम को प्राणदान।

बूंदी के अधीश रत्नसिंहजी के स्वर्गवासी युवराज गोपीनाथजी के पुत्र श्यामसिंहजी और हाडाराव के भाई केशवदासजी के पुत्र श्यामसिंह का केवल पंदरह २ वर्ष की कच्ची उमर में अपने स्वामी का आश्रय छोड कर न मालूम किसकी बहकावट से महावत खां के पास चला जाना पाठकोंने सातवें अध्याय में और उसकी सहायता के लिये जहांगीर की राव रत्न को भेजने की आज्ञा भी गत अध्याय में पढी। इसके बाद क्या हुआ सो यहां दिखला कर तब इस पोथी का सिलसिला आगे बढाना होगा।

हाडाराव के पोते और भतीजे ने जब कलावीस के दुर्गका किसी तरह विजय न होते देखा तब **कुलधर्म पर कुठार** चलाने के लिये, अपने पूर्वपुरुषों की कीर्ति में बट्टा लगाने के लिये और उनकी दृढ–प्राणोंसे भी प्यारी प्रतिज्ञा का सर्वनाश करने के लिये महावत खां को सलाह दी कि "हमारे स्वामी राव रत्नजी को बुलवाइये। उनके बिना अब यह दुर्ग टूटना असंभव है।" इनकी सलाह के अनुसार उसने बादशाह की सेवा में प्रार्थनापत्र भेजकर उसमें लिखा कि–"यहां अफगानियों का जोर बहुत बढता जाता है। किला टूटना कठिन है इसलिये **बूंदीनरेश** को भेज दीजिये। हम दोनों मिलकर हुजूर की राज्यसीमा का बहुत विस्तार करदेंगे।" बस इसी को लेकर जहांगीर ने हाडाराव को वहां जाने की आज्ञा दी और वजीर आसिफ खां के परामर्श से दी। उन्हें विश्वास था कि राव रत्न जैसे बहादुर के लिये **विजयश्री** सदा हाथ बांधे तैयार रहती है। जो एक युद्धमें प्राण की बाजी लगाकर जयलाभ कर चुका है, जिसके जीवन का मुख्य उद्देश्य ही **मरना या मारना** है और रणभूमिमें मरकर शयन करने को स्वर्गका द्वार समझता है–जिसके पूर्वपुरुषोंका–जिसकी जाति का ही यह अटल सिद्धान्त है उसे इस लडाई में जाने से नाहीं क्यों? किन्तु क्षत्रियजाति का–हाडा कुल का प्यारा धर्म ही इसके बीच में आकर **खडा होगया**। इस युद्ध में तलवार बजाकर नाम पाने के लिये **हाडाराव की नसें** अवश्य फडक उठीं परंतु इससे पहले राव सुरजनजी, हाडाराव रत्नसिंहजी के पितामह और बूंदी राज्य के विस्तारक सुरजनजी ने बादशाह **अकबर से** नीचे लिखी **हुई प्रतिज्ञायें** करवालीं थीं:–

(१) हम अपनी लडकी बादशाह को न देवें।

(२) हमारे रनवास की स्त्रियां नोरोज पर बादशाह के जनाने में न जावें

(३) अटक नदी के पार जाने का हम पर दबाव न डाला जाय।

(४) हम बादशाह के आम और खास दर्बारों में शस्त्र बांधकर आ सकैं।

(५) दिल्ली नगर में और लालकोट तक हमारा नक्कारा बाजे।

(६) हमारे घोडे के दाग न लगै।

(७) हम किसी राजा के अधीन होकर युद्ध में न भेजे जायं।

(८) हमसे जजिया न लिया जाय।

(९) हमारे पवित्र मंदिरों की प्रतिष्ठा की जाय।

(१०) जैसे दिल्ली बादशाह के लिये है वैसे बूंदी हाडाओं के लिये रहै।

(११) हमारी सेना के समीप गोवध न होने पावे।

(१२) हमारी फौज के निकट मूर्तियां न तोडी जायं।

(१३) वर्षा ऋतु में हम विना छुट्टी अपने देश को जा सकैं और

(१४) बादशाह की सवारी के समय हम विना आज्ञा भी घोडे पर चढ सकैं।

इनमें पहली सात शर्तों का उल्लेख बूंदी के इतिहास में है। ८, ९ और १० टाड साहब ने उनसे भी अधिक लिखी हैं और ११ से १४ तक राव भोजजी ने बादशाह अकबर से लिखवाई थीं। इन्हींमें की **तीसरी शर्त** ने बीच में आकर इनका हाथ पकड लिया। इन्होंने बादशाह की आज्ञा अवश्य ही माथे चढाई परंतु साथ ही निवेदन भी करदिया कि:—

"मैं वर्षों से परदेश में हूं। मेरा रुपया भी बहुत खर्च होचुका है। हुजूर का विजय कर मैंने उधर के प्रदेश जीते और शत्रुओं को कैद कर लिया सो हुजूर को मालूम है ही। फिर यदि आप कहीं भेजैं तो मुझे जाने में नाहीं नहीं है किन्तु सुरजनजी की प्रतिज्ञा पर पानी फेरकर अटक **नदी के पार** उतरना हमारे लिये **मरजाने** से भी बढकर है।"

इसपर वजीर ने भी बादशाह को बहुतेरा समझाया परंतु जहांगीर ने जो कुछ एक वार आज्ञा देदी थी उसे न छोडा। इस तरह जब हाडाराव निराश होगये तब उन्हों ने मथुरादास वैश्य के पुत्र अमात्य केशवदास से कहा:—

"तुम बूंदी जाकर राज्य की रक्षा करो। पौत्र शत्रुशल्य को किसी वहाने से प्राणरक्षा के लिये ससुराल भेजदो। मेरा कुटुम्ब सहित अब **मर मिटना** निश्चय ही है। नगर में सूरजपोल दर्वाजे के बाहिर जो वस्ती

है उसकी रक्षा के लिये कोट का काम अंधूरा है उसे बनाकर पूरा कर दो। *इस युद्ध की बात किसी पर प्रकट न होने दो। मैं भी थोडे समय में* बूंदी आऊंगा। "

इस आज्ञा के अनुसार केशवदास ने बूंदी आकर सब कार्य किया। इधर राव रत्नजी ने एक पत्र भेजकर महावत खां को समझाया:—

" मित्र! आप हमारे सहमत हैं अथवा हमारे सिद्धान्त को भली भांति जानते हैं फिर आपने हमें बुलवा कर अच्छा नहीं किया। वहां आने से यहीं मरजाना अच्छा है सो अब आप हमारे मरने का संवाद सुनकर प्रसन्न होना। जब हम मरजायंगे तब बहुत पछतावोगे। "

इस तरह इन्होंने केवल महावत खां को ही पत्र न लिखा किन्तु कोप करके उन दोनों कुपूतों को भी धमकाया। उन्हें एक आज्ञा पत्र में लिखा कि:—

" जब पूर्वजों की आज्ञा को पैरों से कुचल कर तुम लोग अटक नदी के पार उतर गये तब तुम जीते नहीं हो। तुम **मुर्दे से भी बढकर हो**। तुम तो गिरे और अब मुझे भी गिराना चाहते हो। अब बूंदी में न आने पाओगे। अब कुटुंब से, नातेदारों से और जाति बिरादरी से अलग हुए। हे पागलो! तुम्हें जाति बाहर रहकर उमर बिताना पडेगा। कुलवृद्धोंको पूछ कर क्यों न गये? "

पितामह के पत्र को पाकर पौत्र को परम पश्चात्ताप हुआ। पितृव्य के परामर्श से भाई का पुत्र बहुत पछताया, इस पत्र को पढकर उन्हें पूर्व पुरुषों की प्रतिज्ञा याद आगई। अब इन्हें वैसा ही पछतावा हुआ जैसा ब्याज के लोभ में मूलधन खोकर बनिये को होता है। इन्होंने यह बात नव्वाब से कही और तब महावतखां ने बादशाह की सेवा में दूसरा प्रार्थना पत्र भेजकर उसमें लिखदिया कि " जो दुर्गम दुर्ग था वह अब सुगम होगया इसलिये राजा को भेजने की आवश्यकता नहीं है। " इस प्रार्थना पत्र को सुनकर जहांगीर ने **अवश्य ही अटक पार** भेजने का विचार छोड दिया और इस तरह यह हाडा जाति के **प्यारे धर्म** के साथ ही अपने प्राण की, अपने

राज्यकी रक्षा करने में समर्थ हुए। नहीं तो इन्होंने केशवदास को जो आज्ञा दी थी उससे निश्चय है कि यह अपनी **जान ही झोंक देते**—अपना सर्वस्व नष्ट कर देते किन्तु अटक पार जाकर अपने पूर्व पुरुषों की प्रतिज्ञा को—अपने धर्मके सिद्धांतो को हरगिज भी पैरों से न कुचलते खैर यह कथा यहीं समाप्ति हुई।

अब बादशाह ने इन्हें आज्ञा दी कि— "तुम फौरन बुरहानपुर चले जावो और वहां पहुंचकर पापी **खुर्रम** को अब **मार ही डालो**।" और ऐसा काम करो जिससे प्रतिपक्षी फिर शिर न उठाने पावैं और वे हमारे आतंक से कायर के कायर बने रहें। बादशाह की आज्ञा इन्होंने अवश्य ही शिरोधार्य की किन्तु एकान्त में इनसे वजीर आसिफ खां ने बुलाकर कहदिया और उचित ही कह दिया कि—

"मेरी भगिनी नूरजहां बेगम की बहकावट से बादशाह ने कोप में आकर भूल से पुत्रवध की आज्ञा देदी है किन्तु उसका वध करदेने से **जहांगीर पुत्रहीन** होजायगा क्यों कि उसके अब एक ही पुत्र बचा है। इस कारण वहां जाकर उसे निकाल दो।"

यह परामर्श हाडाराव को पसंद आया। उन्होंने बादशाह से **बूंदी जाने** की छुट्टी पाकर यहां आने के अनंतर शायद पहला काम यही किया कि बुरहानपुर में अपनी सेना के नायक द्वारकादासजी कछवाहे, राजकुमार माधवसिंहजी और भतीजे केशवदासजी को आज्ञा पत्र द्वारा हुक्म दिया कि "अवसर पाकर रात्रि के समय शाहजादे **खुर्रम को** चुपचाप **निकाल दो**। इस बात को क्या अपने और क्या पराये कोई भी जानने न पावैं। इस प्रकार उसके प्राण बचाकर बादशाह के **वंश की रक्षा** करो। हां इतना उससे लिखवा लेना कि बूंदी वालों ने मेरे प्राण बचाकर मुझ पर बहुत अहसान किया है। कुमार हरिसिंह पर कृपा करके लाखेरी का परगना उसे दे दिया गया है।"

आज्ञा पाते ही कछवाहा सरदार ने राजकुमार माधवसिंहजी से एकान्त में सलाह की। "बादशाह की आज्ञा शाहजादे का वध करादेने की है। तब

भी राजा आप पर कृपा करके आप को यहां से जीते जागते निकाल देना चाहते हैं। हमारा कथन स्वीकार कर राजकुमार हरिसिंह पर आपका जो कोप है उसे भूल जाओ और अपने हाथ से यह लिखदो कि मेरा प्राण हाडाओं के अनुग्रह से बचा है। लाखेरी हाडाओं की नगरी है। इसे गौड मुझसे न पा सकेंगे। हाडाराव रत्नजी ने अभी जो देश विजय किये हैं वे उन्हींके बने रहेंगे। हां यदि राज्य पाकर हमारी भी उन्नति करो तो यह आप की विशेष कृपा होगी।" ये बातें इन तीनों ने मिलकर शाहजादा **खुर्रम से कही।** उसने **अपने ही हाथ से** जो कुछ ऊपर लिखा गया है राव रत्नसिंहजी के नाम **लिखकर** उसमें लिखदिया। इतना उसमें विशेष लिखा किः—

"मांगने में मुझे संकोच नहीं है। मैं भी आपसे एक बात मागता हूं माधवसिंह बहुत नम्र है उसने मुझे सर्वथा मालिक मानकर मेरा आदर किया है। मैं कैद था किन्तु फिर भी उसने मेरा मन से, वाणी से और शरीर से सत्कार किया है। इस कारण **बाबाजान** (हाडाराव) उसे अधिक भूमि देकर उसका विशेष रूप पर सम्मान करना। आपका मुझ पर यह दूसरा अहसान होगा। इस तरह लिखकर शाहजादा खुर्रम ने **कुरान की**— परमेश्वर की सौगंद खाकर उन्हें भरोसा दिलाया और तब कुछ बीमारी का बहाना करके सब लोगों ने उसे अकेले में छोडदिया। केवल इतना ही क्यों जिधर होकर जाने का मार्ग न था उधर से उसे **निकाला**। शाहजादे ने आज समझा कि मेरा नया जन्म है। पाठक समझे **कोटा राज्य** माधवसिंहजी को मिलने का जो बीज पहले डाला गया था यह उसीका अंकुर था।

इसके आगे लेखनी के घोडे दौडाने से पहले मुझे कुछ बूंदी की भी सुधि लेनी चाहिये। मेरा कलम अवश्य ही हाडाराव की आज्ञा के साथ ही बुरहानपुर वहां की घटना लिखने के लिये जा पहुंचा परंतु बूंदीमें पीछे से क्या हुआ सो लिखे विना अब आगे बढना नहीं चाहता। यहां हाडाराव रत्नसिंहजी ने आकर **रत्नदौलत** के नाम से एक बडा महल जिसमें अब बडे २ अवसरोंपर दरबार हुआ करता है बनवाया, नगरके चारों दर्वाजों पर बुर्जें बनवाईं, खाइयां बनवाईं। बूंदी नगर इन दिनों दक्षिण की ओर बहुत

बढ चलाथा। इसी भाग को पुरानी बूंदी कहा करते है किन्तु कविराजा सूर्यमल्लजी के लेख से विदित होताहै कि यह **पुरानी बूंदी** नहीं है, पुरानी बूंदी सूरजपोल और भैरव दर्वाजे के बीचमें है। वह भी मीनों से जीतकर बूंदी नरेश समरसिंहजी की बढाई हुई है किन्तु मीनों की राजधानी—असली बूंदी इन दोनों दर्वाजों के मध्य है, यही **मीनों का गांव** बूंदी है। इस तरह मीनों का गांव बूंदी और नरेश समरसिंहजी की बसाई बूंदी के चारों ओर **कोट बनवाकर** फिर भी वस्ती बढी सो नगर से इधर उधर बसाई गई। राव रत्नजी ने किले तारागढ पर और शहर कोट पर नई २ तोपें डसवाई। लज्जा के मारे—डरके मारे भाई हृदयनारायण इन्हीं के किले में छिपे हुए थे। उन्हें बुलाया। उनके पुत्र जैतसिंहजी को बुलाया। भाई की जगह उनका सम्मान किया। पौत्र शत्रुशल्यजी के अधिकार में करणसिंह जी, बलवन्तसिंह जी और जैतसिंहजी को यहां का रक्षक नियत करके शत्रुशल्यजी के छोटे भाई इन्द्रशल्यजी को इनके साथ रखकर पौत्र वैरीशल्यजी को नैणवा नगर का विजय करने के लिये भेजा और पाटन, करवर आदि परगने पहले ही इस राज्यमें मिला लिये गये थे।

इस तरह अपने अधिकृत राज्य को अपने सुशासन से दबाये रखने की इच्छा से इन्होंने रणछोडदास जी गौड को टौंक, महाराज सिंहजी सोलंखी को मालपुरे, वैश्य टोडर मल्ल को टोडे, दुर्जनशल्यजी कछवाहा को रामपुरा, और रघुनाथजी भूत्या को चंचत में रखकर और शेष को शेष काम सौंप दिये और तब बुरहानपुर को जो पत्र लिखा गया था उसकी तामील क्या हुई सो देखने लगे।

ऊपर लिखी हुई रीति से शाहजादा खुर्रम के निकाले जाने की जब खबर हाडाराव के पास पहुंच चुकी तब उक्त प्रकार से राज्य का प्रबंध कर **राव रत्नसिंह जी** बुरहान पुर को विदा हुए। इन्होंने बून्दी से प्रयाण करने पूर्व बादशाह जहांगीर की सेवा में निवेदन पत्र भेज कर शाहजादा खुर्रम के भाग जाने की सूचना देते हुए खेद प्रकाशित किया और बुरहानपुर जिस

समय पहुंचे तो जिन लोगों के पहरे में से खुर्रम का भाग जाना प्रकट किया गया था उन्हें कैद पाया। इन्होंने वहां जाकर केवल लोग दिखाने के लिये सेनापति द्वारकादासजी को और राजकुमार माधव सिंहजी को **बहुत फटकारा** उन्हें कैद करदिया और उनकी **ड्योढी बंद करदी** अर्थात उन्हें अपने पास आने तक न दिया। अवश्य ही खुर्रम को निकाल देने में बादशाह की आज्ञा का भंग हुआ और जो हुआ सो इस सिद्धान्त के विरुद्ध भी किन्तु जिस आज्ञा से जहांगीर का पुत्र होते हुए केवल क्रोध के आवेश से नूरजहां के षड्यत्र से पुत्र हीन होकर मरना संभव था, जो आज्ञा सदा के लिये मुगलों के हाथ से दिल्ली का सिंहासन निकल जाने का कारण थी वह राजभक्ति के सिद्धान्तों के आगे सर्वथा मान्य नहीं थी। बादशाह की उस समय की आज्ञा वैसी ही थी जैसी कोई रोगी कडुई दवा पिलाने पर वैद्य को गालियां देने लगे। खैर इन्होंने केवल लोग दिखाने के लिये उक्त दोनों को दंड दिया किन्तु वास्तव मे कैद जिसे कहना चाहिये सो कुछ नहीं।

बादशाह जहांगीर के पास जब इस बात की सूचना पहुंची तो वह **क्रोधके मारे** कांप उठा। उसने तुरंतही उन दो सैयद बंधुओं को जो पहले खुर्रम की खबर लेने के लिये भेजे गये थे, फिर भेजा और उनसे ताकीद करदी कि—"गुप्त और प्रकट रीति से इस बात का निर्णय करो कि खुर्रम किसी की असावधानी से भागा है या जान बूझ कर निकाल दिया गया है? और निकाला तो किसने?" बुरहान पुर में इन दोनों के आजाने पर हाडाराव-ने इनका आतिथ्य सत्कार कर जहां तक बन सका इन्हें **विश्वास दिलाया** कि "शाहजादा जिनकी असावधानी से भागा था उन्हें दंड दिया गया है।" किन्तु इनके वहलाने फुसलाने से, रुपया दे कर राजी कर देने से प्रजा वर्ग में के कुछ आदमी ऐसे भी निकल आये जिन्होंने इस भेद का **कच्चा चिट्ठा** सैयद बंधुओं को सुना दिया। उन्हें निश्चय होगया कि इस भेद की असल जड कछवाहे द्वारका दासजी हैं। बादशाह की आज्ञा थी कि "जो असली अपराधी हो उसे बांध लाना।" बस इसीके अनुसार इन्होंने रत्नसिंहजी से पूंछे बिना अपने ५०० सवार और ८०० पैदल सिपाहियों सहित कछवाहा

सरदार :पर आक्रमण किया। यदि यह बात रत्नसिंहजी को पहले से किसी तरह विदित हो जाती तो अनुभवी हाडाराव अवश्य ही कोई ऐसा प्रयत्न करते जिसमें खून खराबी न होती किन्तु होनहार सदा ही प्रबल होता है। बस दोनों का **लोम हर्षण** संग्राम आरंभ हो गया। एक घडी भर ही सही किन्तु दोनों ओर के सैनिकों की लाशों पर लाशें गिरने लगीं। किले के फाटकों पर पक्का प्रबंध करके कछवाहा सेनापति लडने के लिये आ डटे। कुमार माधव सिंहजी अवश्य तलवार सूत कर उनका साथ करने को तैयार हुए परंतु द्वारका दासजी ने उन्हें आने न दिया और इस तरह दो सैयदों से अकेला कछवाहा इस प्रकार से भिड गया जैसे दो सिंहों का एक ही शूकर सामना करने को तैयार होता है। "वंशभास्कर" कहता है कि मर २ कर वीर सैनिकों के ज्यों २ कबंध फिर संग्राम में वीरता दिखाने को खडे हुए त्यों २ मुसलमानियों की चूडियां झड २ कर वे विधवा होने लगीं। यद्यपि द्वारका दासजी ने केवल अकेले ही दो से लडने पर भी अब तक पीछे को पैर नहीं हटाया था किन्तु नरेश ने अपने पुत्र भतीजे और दूसरे सरदार उनकी सहायता के लिये भेजे और तब दोनों पक्ष समान होने पर दोनों **सैयद मारे** गये और मरने से-घायल होने से जो उनकी बची बचाई सेना थी वह **भाग निकली**। जो मारे गये अथवा मार कर मरे उन्होंने वीर गति पाई ही किन्तु दोनों ओर के योद्धाओं में से जो कुछ कम घायल हुए थे उनका नरेश ने इलाज करवाया और बादशाह के पास इस शोकजनक घटना की सूचना देने के लिये जो **आवेदन** पत्र भेजा उसमें लिखा कि:–

"यदि सैयद बंधुओं को हमारी सचाई देखने के लिये भेजा गया था तो उन्हें चाहिये था कि वे हमें इस बात को जतलाते तो सही। हम यथा संभव उन को संतुष्ट कर देते अथवा सेनापति और राजकुमार को उनके साथ कर देते। वृथा लडाई ठानने में क्या लाभ हुआ। अचानक नगर में घुस कर वे आप मारे गये और हमारा एक बहादुर सेनापति जो बादशाह की सेवा में बडी २ वीरता दिखा कर विजय प्राप्त कर चुका था काम आया।"

बादशाह जहांगीर का इस बात से संतोष न हुआ । वह खुर्रम को निकाल देने से इन पर क्रुद्ध तो हो ही चुका था अब प्रज्वलित अग्नि में सैयदों की मौत ने घी की आहुति डाल दी । नूरजहां बेगम जो इन पर पहले ही से राजी न थी उसने फूंक कर उस आग को और भी बढाया और तुरंत ही बादशाह ने अजमेर के सूबादार अमानत खां को बूंदी छीन लेने और रत्नसिंहजी को पकड लाने की आज्ञा दी । आज्ञा दे तोदिया करै किन्तु ये दोनों कार्य करके सफल होना कुछ दालभात का खाना नहीं था । तलवार की धारा पर नाचना था ।

खैर ! बादशाह की आज्ञा पर अमानत खां ने बूंदी पर चढाई की और बूंदी के निकट पनवाड में डेरा किया । प्रातःकाल ही जब अमानत खां अपनी सेना सजा कर बूंदी पर हमला करने के लिये हाथी पर आरूढ हुआ तब अग्वयराज पोता भूपति सिंहजी जो अमानत की सेना में थे सूबादार की हरोल में से अलग हो कर उस से सलाम करके जाने लगे । अमानत के पूछने पर उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि-"हमारे शस्त्र बूंदी पर आक्रमण करने को नहीं है । बूंदी हमारी माता है और क्षत्रिय अपनी माता पर शस्त्र नहीं उठाते । भले ही आप सीसोदिया, राठोड, पवार, यादव, चाहुवान आदि सब सरदारों से पूछ लें ।" इस पर सब ही उपस्थित उमराव हां ! हां ! ! कह उठे और इस लिये बूंदी का विजय असंभव समझ कर अमानत खां ने लशकर की बाग पीछी मोड ली । इस तरह संग्राम होने २ बच गया और यही बात सूबादार ने बादशाह को लिख दी ।

अध्याय ११.

बादशाह का कोप और जहांगीर कैद में ।

गत अध्याय में खुर्रम को निकाल देने और सैयद बन्धुओं के मारे जाने से राव रत्न सिंहजी पर बादशाह के कोप होने का और साथ ही अजमेर के सूबादारकी बूंदी पर चढाई करने और लडाई किये बिना ही वापिस चले जाने का हाल लिखा गया है । अवश्य ही इस संग्राम में हजारों

सुभटोंके प्राणों की रक्षा केवल **भूपतिसिंहजी** के **अदम्य साहस** से हुई। उनकी चमकती हुई तलवार ने ही मातृभूमि की रक्षा की और इस लिये वह अमानत खां को छोड कर बूंदी चले आये। यहां आने पर **युवराज शत्रुशल्यजी** ने उनका बहुत आतिथ्य सत्कार किया। प्रपितामही (राव रत्न की माता) की आज्ञा से युवराज उन्हें पाच ग्राम जागीर में देने लगे किन्तु उन्होंने यह कह कर इस जागीर को स्वीकार न किया कि—"मेरी सेवा इतनी बढ कर नहीं है।" और नोताडा साल्हडा और तारज—इन तीन गावों को ग्रहण कर नोताडे में जा निवास किया। वहां उन्होंने काल दुकाल में प्रजा की रक्षा के लिये एक बाग और एक बावडी बनवाई इन को (शायद) पहले से विदित था कि संवत् १६८८ का दुर्भिक्ष वास्तव में बडा दारुण होगा। उस साल लोगों को मुट्ठी भर अन्न मिलना भी कठिन क्या कठिन से भी बढ कर होगा। इस कारण नोताडा के बनियों के पास जो बूंदी के पुराने तौल का **२४ हजार मन गल्ला** था उसे भूपति सिंहजी ने खरीद कर दीन दुखियों को—ब्राह्मण साधुओं को **बांट दिया**। बांटा और इनके मूल्य में अपनी जागीरी के गाव बन्धक रख दिये। रत्न सिंहजी की माता ने इनसे कहा भी कि इस तरह शक्ति से अधिक खर्च करके राजा करण और विक्रमादित्य न बन जाओ किन्तु भूपति सिंहजी ने जो किया सो किया ही।

ऐसे बूंदी विजय करे बिना अमानत खां का अपना सा मुँह लिये लौट जाना **बादशाह** ने चाहे सुनही क्यों न लिया किन्तु उस समय वह वास्तव में दिल्ली का—भारत वर्ष का राजाधिराज न था। जहांगीर उस समय नूरजहां के **हाथका खिलौना** था अथवा सच पूंछो तो महावतखां का कैदी था। कवि राजा सूर्य मल्लजी ने अपने ग्रंथ में इस घटना का जो उल्लेख किया है उसका निष्कर्ष यह है:—

"वजीर एतमादुदौला (अयाज) की मृत्यु होने पर उसकी तनया नूरजहां बेगम **लाज के लंगर** तोड कर बादशाह की स्वामिनी बनने के साथ पति की, परिजनोंकी, प्रजा की और साम्राज्य की **मालिकिन** बन बैठी।

अब बादशाह की आज्ञा के बदले उसकी इकडंकी बजने लगी। उसने कितने ही सुभटोंको, कई एक सचिवों को शाह के कान भर२ कर मरवा दिया, कैद करवा दिया, सर्वस्व हरण कर निकलवा दिया और इस तरह **शाकिनी** (डाकिनी) बन कर दिल्ली साम्राज्य का संहार करने लगी। ऐसा कर उसने राज्य भर मे—देश भर में अपना चक्र फैला कर सब बडे २ पदों पर सर्वत्र अपने ही अपने आदमी भर दिये। उसके चंगुल में खुर्रम न फँसा—यही उस पर **नूरजहां के** कोप का कारण था। उसी ने बुरहानपुर सैयद बन्धुओं को भेजा था और उसी के बहकाने से जहांगीर **रत्नजी से रूठ गया**। उसीने कान भर २ कर अपने भाई आसफ खां की विजारत छीन कर दूसरा वजीर बनाया। उसी की बदौलत बादशाह महावत खां से नाराज हुआ। किला कलावीस का विजय (जिसका वर्णन दशम अध्याय में है) महावत खां से न हो सका तो नूरजहां ने ही बादशाह को उस पर क्रुद्ध कराया। इसी की आज्ञा से वह दिल्ली बुला कर इसके बदले दूसरा भेजा गया। दिल्ली आकर जब उसने यहां का रंग ढंग देखा तो यहां बिलकुल तख्ता उलटा हुआ पाया। आसिफ खां की विजारत छीन कर नूरजहां की इकडंकी बजने मे **अराजकता** फैल गई—हाथ को हाथ खाने लगा और देश की वही हालत होगई जो बलवे के पूर्व हुआ करती है। बादशाह की आज्ञा को प्राणों की बाजी लगा कर साधन करने वाले हाडाराव उदास हो गये। महावत खां ने बादशाह की कुशल पूछने के लिये जो दूत भेजे थे उन्हें कैद कर दिया गया। इस बात से महावत खां का जी डर गया। अब वह बुलाने पर भी जहांगीर की सेवा में उपस्थित न हुआ। केवल यही क्यों उसने (नूरजहांके क्रीतदास—इन्द्रिय लोलुप) **बादशाह** और (उसकी प्राणेश्वरी) **नूरजहां** बेगम को पकड कर कैद कर लेने का षड्यन्त्र रचा।

"काल पाकर जब राजदम्पती शिकार के लिये नगर के बाहिर गये तब महावत खां का जोर चल गया। उसने दोनों को पकड कर **कैद किया** और उसके पास राव रत्न सिंहजी के नाती और भतीजे—दोनों एक ही नाम

वाले श्याम सिंह जी रहते थे उन्हों ने बादशाह की प्यारी बेगम के **जेवर छीन लिये** । इन दोनों पर विश्वास करके महावत खां ने राजदम्पती को इन्हींके डेरों में रखा था। थोडे समय में उसने बादशाह को और जहांगीर के चिरौरी करने पर नूरजहां को **छोड दिया** । महावत खां के यहां जिस समय बादशाह कैद था उसे हाडाओं पर कोप करने का समय न मिला और इस लिये अमानत खां के लौट जाने का खबर पाकर यह चाहे मन मार कर ही रह गया किन्तु छुटकारा पाते ही फिर नूरजहां ने उसे **भड़काया** । इधर **अमानत** खां ने भी हाडा जाति से अपना अपमान समझ कर बादशाह के नाम निवेदन पत्र में इस तरह उभारा:—

"अब समझ लीजिये कि स्वयं स्वामी बन कर हाडाओं ने आपका सिंहासन छीन लिया। आप बूंदी छीनना चाहते हो और ये दोनों मिलकर आपकी दिल्ली। रत्नसिंह और महावत खां—दोनों जग विदित मित्र हैं। जब ये दोनों मिल जायंगे तो इन्हें जीतना नहीं बन सकेगा। इधर के जितने क्षत्रिय नरेश हैं वे सब मुझसे बदल गये। जो राज्य रखना अथवा अपना कल्याण चाहते हो तो अपनी **सेना यहां भेजो** "

इसे पढ कर बादशाह मन मार कर अवश्य रहा किन्तु जब उसका जोर चला तब उसके मन में से—उसके हृदयमें से महावत खां को जला कर भस्म कर देने के लिये होली के समान कोपाग्नि की ज्वालायें उठने लगीं । **महावत** खां ने समझ लिया कि अब मेरी मौत मेरे ही शिर पर नाचने लगी है इस लिये वह अपने धन को, अधिकार को और समृद्धि को तिनके की तरह त्याग कर अपनी जान और अपने साथियों को लेकर भागा। गया सही किन्तु देश के स्वामी के भय से जाकर यदि छिपै भी तो कहां छिपै। खैर ! इसके कष्ट को देखकर दयालु आसिफ खां को दया आई और उसीकी शरण में इसने अपना कालक्षेप किया।

इधर जब बादशाह और बेगम स्वतन्त्र हुए तब उन्होंने बेगम के आभूषण लूटने—क्या मानो अपनी लाज लूटने के अपराध में दोनों ही हाडा कुमार

श्यामसिंह जी को किसी तरह का बहाना निकाल कर धोखे से मार डालने अथवा मरवा देने का संकल्प किया। इनमें से राव रत्न सिंहजी के पौत्र और गोपीनाथजी के पुत्र श्याम सिंहजी तो **मार ही लिये** गये किन्तु केशवदास जी के पुत्र भाग कर खैरी आगये। बादशाह ने गुप्त दूत भेज कर रत्न सिंह जी के मन में राजभक्ति ओतःप्रोत भरी हुई पाई और तब हाडाराव के नाम लिख भेजा कि—"इस कुपूत श्यामसिंह ने हम दम्पती के आभूषण लूट लिये हैं इस लिये वहां आते ही इसे मार कर अपने पापों का प्रायश्चित्त करो।" पाप क्या और जब पाप ही नहीं तब प्रायश्चित्त क्या? किन्तु बादशाह हाडाराव में आज्ञा भंग करने का पाप ही समझता था। वह नूरजहां बेगम और अजमेर के सूबादार अमानत खां का बहकाया हुआ था इस लिये एक निर्दोष नरेश को सदोष समझ कर उसने ऐसा लिखा अथवा उसकी हृदयेश्वरी ने लिखवाया।

खैर पत्र पाकर राजा ने श्यामसिंह जी के पिता **केशवदासजी** को जो उस समय बुरहानपुर की सेना के मुख्य अधीश थे दिखलाया। यद्यपि संसार में पुत्र के समान कोई प्यारा नहीं होता है। लडका चाहे कुपूत हो चाहे सुपूत किन्तु जब पुत्र पिता का दूसरा शरीर है तब प्राण से भी अधिक प्यारा होना चाहिये। होता है और साहूकारों को जैसे मूलसे भी व्याज प्यारा होता है वैसे ही। कुछ भी हो परंतु उन्होंने अपने बडे भाई से बूंदी नरेश से विनय कर दिया कि:—

"अवश्य उसका वध करके **देश का कल्याण** कीजिये। वह पहले ही कुलकानि त्याग कर जब अटक पार चला गया तो हमारे हिसाब से **मर चुका।**" कुपुत्र के पिता का—अपने शरीर, अपने आत्मज और अपने सर्वस्व से बढ कर देश की रक्षा अधिक प्यारी समझने वाले भाई केशव दासजी के ऐसे वाक्य सुनने पर भी हाडाराव ने श्याम सिंहजी को लिख दिया कि—"अब बूंदी राज्यसे निकल कर महाबत खां और वजीर आसिफ खां जहां हों वहीं चले जाओ।" इधर इस प्रकार का पत्र लिख कर

सिंहासन के–दिल्ली साम्राज्य के–बादशाह का अपमान करने वाले अपराधी का केवल अपना आत्मीय समझ कर चाहे भाग जाने का अवसर दे दिया किन्तु ऐसे नराधम को अपने राज्य में रखने से न तो हाडाओं की चिर प्रचलित राज भक्ति का ही साधन हो सकता था और न उसे आश्रय देने में बूंदी राज्य का और साथ ही देश का कल्याण था किन्तु उस समय भारत साम्राज्य का शासन बिगडते २ उस अनी पर आ पहुंचा था कि पैर २ पर अराजकता फैल जाने का डर था इस कारण राव रत्नसिंहजी ने अपने पौत्र युवराज शत्रु शल्यजी को लिख भेजा कि:–

जैसे बने तैसे श्याम सिंह को शीघ्र मार डालो। हो सके तो उसे भाग जाने का अवसर देना नहीं तो मार तो डालना ही।''

आज्ञा पाकर शत्रुशल्यजी ने नक्कारा निशान के साथ उन पर चढाई की, जान लेकर भाग जाने का भी अवसर दिया किन्तु अटक पार जाकर पूज्य पुरुषों के कोप भाजन बनने पर भी–बादशाह का भारी अपराध करने पर भी हाडा जाति से–राजपूत जननी के उदर से जन्म लेकर यदि वह भाग जाते तो उनकी जाति लाज जाती, उनकी जननी लाज जाती इसलिये वह वहीं लड कर मर गये। इस बात की खबर पाकर बादशाह और नूर-जहां–दोनों अपना कोप त्याग कर हाडाराव से प्रसन्न होगये।

ऊपर जो कुछ बादशाह के महावत खां की कैद में आ जाने और छूट जानेके लिये लिखा गया है वह 'वंश भास्कर' से ले कर मैंने अपनी भाषा में लिखा है किन्तु मुन्शी देवीप्रसादजी के जहांगीरनामे में इसका कुछ और ही स्वरूप है। उस पुस्तक का वह भाग चाहे जहांगीर के लिखाये हुए रोजनामचे का सार नहीं है वह हिस्सा जहांगीर की मृत्यु के बाद मुहम्मद हादीका लिखाया है। इस पुस्तक के पढने से विदित होता है कि महावत खां बादशाह का बहुत कृपापात्र था। वह जहांगीर की ओर से काबुल का सूबेदार था। वह गैयूर बेग काबुली का बेटा था। नाम उसका जमानाबेग किन्तु पदवी खान खानां सिपहसालार की थी। उसका मनसब सात-

हजारी और सात ही हजार सवारोंका था। उस पोथी के मत से बुरहान पुर के सूबादार रत्नजी नहीं किन्तु महाबत खां था। उसका पहला अपराध यह हुआ कि उसने बंगाल की सूबादारी में अब तक जो हाथी जमा किये थे वे बादशाह की दर्गाह में न भेजे और उसके हिसाब में सरकारी रुपया भी बहुत बाकी बतलाया गया। हाथी उसने अवश्य सरकारी फील-खाने में ला बांधे किन्तु दूसरा अपराध यह किया कि अपनी लडकी बादशाह से पूंछे बिना शेख ख्वाजा बरखुरदार को ब्याह दी। बादशाह ने इस पर नाराज होकर उसके दामाद को पिटवाया और निकाल दिया। कवि राजा सूर्यमल्ल जी ने बादशाह का कोप हो जाने पर महावत खां का आसफ खां की शरण गहना लिखा है किन्तु इस पुस्तकमें इन दोनों की शत्रुता है। आसफ का महावत की कैद में आजाना और आसफ खां का महावत को छल से बादशाह पास बुलाना। खैर इन दोनों के चरित्र से मेरी पुस्तक का विशेष संबंध नहीं इस लिये यहां वही बात लिखना चाहिये जो बादशाह के कैद होने से संबंध रखती है।

इस पुस्तक "जहांगीर नामे" के मत से आसफ खां इसे बे इज्जत और खराब करना चाहता था महावत खां इस बात को जान गया था इस लिये चार पांच हजार इकरंगे रक्त के प्यासे राजपूतों को मरने मारने के लिये साथ ले आया था। इस प्रपंच में भी नूरजहां का हाथ बतलाया जाता है क्योंकि वह न मालूम क्यों महावत खां का शाहजादा परवेज के साथ मेल देख कर जलती थी और दोनों का साथ रहना पसंद नहीं करती थी। उसे बुलाने का यही कारण था। बादशाह का डेरा उन दिनो पंजाब में भट नदी के पार था। उसके आते ही सरकारी हिसाब की जब तक सफाई न हो ले और ऐसे ही जब तक मुकदमों के दावे न चुकादे उसकी ड्योढी बंद कर दी गई थी। अब महावत खां ने देखा कि जानपर आ बनी है तब उसने दो हजार राजपूत भट नदी का पुल जला कर शाही सेना को रोक देने के लिये नियत किये थे। बादशाह और बेगम नदी पार और उनकी सेना नदी के दूसरे किनारे पर थी। बस लाग पाकर वह घोडे पर चढे हुए ही बादशाही डेरे (दौलत

खाने) तक जा पहुंचा । वहां से पैदल जा कर उसने गुसल खाने के किवाड़ तोड डाले । अब उसने जहांगीर के पास पहुंच कर अर्ज किया कि—"जब मुझे यकीन हो गया कि आसफ खां की दुश्मनी से छुटकारा न पा कर बे-मौत मारा जाऊंगा तो लाचार साहस करके हजरत की पनाह में आया हूं। यदि कतल के लायक होऊं तो अपने हुजूर मे सजा दीजिये" इतने में उसके शस्त्रधारी राजपूतों ने आकर शाही कनातों को घेर लिया । उस समय बादशाह के पास केवल दश बारह सरदार थे । जहांगीर का मिजाज उसकी बे अदबी से बिगडा हुआ था । उसने दो बार तलवार की मूंठ पर हाथ डाला मगर मीर मंसूर के समझाने से परमेश्वर के भरोसे चुप होगया । फिर राजपूतों ने भीतर और बाहर से दौलत खाने को ऐसा घेरा कि सिवाय बादशाह और महावत खां के और कोई न दिखाई दिया। बादशाह कपडे पहनने भीतर जाने लगा तो उसने न जाने दिया । तब लाचारी से खासा घोडे पर चढ कर उसके साथ हो गया । महावत खां ने गडबड बतलाकर बादशाह को हाथी पर चढ़ाया और इस तरह उसे शिकार के बहाने अपने डेरे पर लिवा लाया । इसके आगे बेगम नूरजहां का भी बादशाह के पहुंचाया जाना महावत खां की सेना से नूरजहां की सेना का युद्ध, दोनों का उसके बंधन में से निकल जाना और इससे पहले वा पीछे थोडी २ लडाई का हाल दे कर महावत खां का लशकर से निकाले जाकर खुर्रम की शरण में चला जाना लिखा हुआ है ।

बस यही दोनों इतिहास कारों का मत है । दोनों के मत का उल्लेख कर उसमें से सांच झूंठ का निर्णय करने की इस जगह इसलिये आवश्यकता नहीं है कि राजदम्पती को कैद हो जाना जैसा एक में है वैसा ही दूसरे में और इसी तरह दोनोंका छूट जाना भी । इस बात से इस चरित्र नायक का कुछ लगाव नहीं इस लिये यह किस्सा विस्तारसे लिखना भी विना प्रयोजन है ।

इस घटना के अनंतर कवि राजा सूर्यमल्ल जी ने **जहांगीर** की अधिक विषय लोलुपता से बीमारी बढकर संवत् १६८४ में मृत्यु होना लिखा है । मुन्शी देवीप्रसाद जी के जहांगीरनामे में पंजाब की यात्रा में राजोर के मुकाम पर इसी संवत् की कार्तिक कृष्णा ३० को पहर दिन चढे ६० वर्षकी

उमर में बादशाह का परलोक गमन बतलाया गया है । बादशाह पहले से बीमार तो था ही । बीरम कल्हे के मुकाम पर गोली मार कर हिरनों का शिकार करते समय एक प्यादा हिरन को पकड कर जब ला रहा था तो पैर फिसल जाने से पहाड से लुढक कर बुरी तरह मर गया । यह हाल देखकर बादशाह की तबियत बिगड गई । दौलत खाने में आकर उसने उस प्यादे की पुत्र हीन माता को कुछ दिया भी परंतु "बादशाह के दिल को तसल्ली नहीं होती थी मानों **यमराज** इस रूप में उसको दिखलाई दे गया था । बादशाह को उस घडी से चैन न था । हाल और का और हो गया था ।" उस पुस्तक के मत से अधिक **शराब** और अधिक **शिकार** ही उसकी **मृत्यु** का कारण हुआ । मरने से पहले उसकी चालीस वर्षोंकी साथिन अफीम छूट गई और नाना पदार्थ बढिया से बढिया तैयार रहने पर केवल एक प्याला अंगूरी शराब के सिवाय औरों को देख कर तरसना शेष रहगया ।

खैर कुछ भी हो । इस तरह दिल्ली के साम्राज्य का—भोग विलास का सुख लूट कर जहांगीर बादशाह कबर में जा सोया । उसके चरित्र के जितने से हिस्से का मेरी पुस्तक से संबंध था वह गत पृष्ठोंमें लिख दिया गया । विस्तार का न तो यहां प्रयोजन था और न मैं ने किया । उसके चरित्र की जो कुछ भली या बुरी बातें हैं । इसमें हैं । अब समालोचना पाठक कर लैं ।

अध्याय १२.

खुर्रम को बादशाहत ।

दिल्ली के राज्य सिंहासन के स्वामी **जहांगीर** बादशाह के परलोक को प्रयाण करने के समय खुर्रम के सिवाय उसके **सब बेटे मर चुके** थे । खुर्रम जब पितृद्रोही होकर पिता के सुख को, पिता के प्रेम को लातों से कुचल कर कलंक का काला टीका अपने शिर पर लगा चुका था तब उसकी अनुपस्थिति में यदि जहांगीर के नाती **दावर बख्श** को जो बादशाह के बडे पुत्र खुसरो का पुत्र होने से राज्य का अधिकारी भी था "जहांगीरनामे" के

मूल लेखक ने उस के **शिर पर छत्र** रख दिया तो कुछ अनुचित नहीं था। यह घटना न तो बूंदी के इतिहासों में है और न "टाडराजस्थान" में। खैर न हो तो न सही किन्तु दिल्ली का साम्राज्य उसके नसीब में नहीं था। वह केवल दादा की अन्त्येष्टि क्रिया करने के लिये छत्रधारी हुआ और बादशाह का शरीर लाहोर में रावी नदी के पार नूरजहां के बाग में दफनाया भी गया किन्तु अब अनेक वर्षों की भागदौड के अनन्तर राज्य लक्ष्मी **खुर्रम के पैरों** से आ चिपटी। राज्य पाने की अत्यन्त लालसा होने पर भी जो इतने दिनों जंगल २ भटकता फिरता था, जिसके लिये पिता ने मार डालने तक की आज्ञा देदी थी वही प्रारब्ध के योग से अब भारत वर्ष का—दिल्ली के राज्य **सिंहासन का स्वामी** हो गया। हुआ अवश्य परन्तु सूर्यमल्लजी के मत से केवल बूंदी नरेश की कृपा से हाडाराव ने उसकी प्राण रक्षा कर बादशाह का कोप भी सहा किन्तु आगामि पृष्ठोंमें अब देखना है कि बादशाह बन कर वह बूंदी वालों के ऐसे महत् उपकार का क्या बदला देता है।

जिस समय बादशाह जहांगीर का देहान्त हुआ बूंदी वालों के इतिहास के अनुसार खुर्रम दक्षिण में था। वहां पर राव रत्न सिंहजी ने उसके नाम निवेदन पत्र लिख कर शीघ्र दिल्ली पहुंचने का आदेश किया। खुर्रम कूच दर कूच चलकर दिल्ली पहुंचा और पिता के राज्य सिंहासन पर बैठ कर उसने अपना नाम (पिता का दिया हुआ) **शाहजहां रक्खा**। इस जगह मेवाड के इतिहास, उदयपुर राज्य की शरण में रहना और उसी का खुर्रम को अपनी सेना के साथ दिल्ली. पहुंचा कर गद्दी पर बिठलाना जिस तरह बतलाते हैं उसकी सूचना किसी गत अध्याय में मुन्शी देवीप्रसाद जी की चिट्ठी से मालूम होती है। संभव है कि बुरहान पुर से निकाले जाने पर वह **उदयपुर वालों की शरण** में चला गया हो किन्तु राव राजा शत्रुशल्य जी के समय में अर्थात् राव रत्न सिंह जी मृत्यु के कुछ वर्षों बाद ही विश्वनाथ पंडित का बनाया हुआ संस्कृत "शत्रुशल्य चरित्र" जब खुर्रम के बूंदी वालों की कैद में रहने और हाडाराव की कृपा से उसके प्राण बचने की

साक्षी देता है तब मुझे तो इसमें सन्देह नहीं है कि बूंदी के इतिहास "वंशभास्कर" में जो कुछ इस विषय में लिखा गया है वह सत्य है।

खुर्रम ने शाहजहां नाम से जब दिल्ली के सिंहासन पर पदार्पण किया उस समय उसकी उमर छतीस वर्ष की थी और उसके चार शाहजादे--दाराशिकोह, शुजा, औरंगजेब और मुरादबख्श थे। इनमें पहले तीन जवान और चौथा अभी बालक था। बादशाह ने गद्दी पर बैठते ही सब राजाओं को—समस्त नवाबों को दिल्ली में उपस्थित होने की आज्ञा दी और बीजापुर से अपनी बेगमों और शाहजादों को भी बुलवा लिया। उसने राज्य की बाग हाथ में आते ही आसफ खां को वजीर और महावत खां को प्रधान सेनापति बनाया। और समस्त सर्दारों, सब ही राजाओं तथा नव्वाबोंसे नजर न्योछावर ले कर उनके सम्मान सत्कार से उनके मन में अपने लिये विश्वास पैदा किया। "और सब आये किन्तु राव रत्नजी नहीं आये। भला वह अब तक क्यों नहीं आये?" ऐसा प्रश्न जब शाहजहां ने किया तब वजीर आसफ खां ने उत्तर दे दिया कि—"वह शाही सीमा पर अडे हुए हैं। उस देश का भय मेट कर आपकी आज्ञा पाते ही अवश्य चले आवैंगे।" इस अवसर में अपने पुत्र माधव सिंहजी और हरिसिंह जी को बुरहान पुर से बूंदी भेज कर अपनी सेना सहित हाडाराव आगरे को बिदा होगये। यह जिस समय बादशाह के निकट पहुंचे शाहजहां शायद आगरे में था। यह वहां पहुंचे अवश्य किन्तु इस संदेह से कि हमने बादशाह को कैद करके उससे लेख लिखवा लिया है इस कारण हमसे कदाचित् प्रसन्न न हो।" इन्होंने दश दिन तक मीठापुर में ही अपना डेरा डाला।

यों निकट आने पर भी जब हाडाराव बादशाह की सेवा में दश दिन तक उपस्थित न हुए तो शाहजहां ने फिर कहा और तब वजीर आसफ खां ने बूंदी के वकील को समझाया कि "उन्हें यहां ले क्यों नहीं आते?" इस पर गंग वकील ने निवेदन किया कि—"वह पधारने को तैयार हैं किन्तु मार्ग में गोवध बहुत होता है। इस लिये आ नहीं सकते।" वजीर ने इस बातपर मार्ग का गोवध बंद करवाया और तब हाडाराव ने बादशाह की सेवा में उपस्थित हो

कर बडी नम्रता के साथ सलाम किया। बादशाह ने बडी अनुकूलता के साथ बातें करके कछवाहा द्वारकादासजी की संतान का हाल पूंछा, कुमार माधव सिंह जी की कुशल पूंछी और तब कहा कि "हरि सिंह मतवाले को हमें दे दो। "बादशाह के ऐसे हुक्म पर इन्होंने एक हाथी उसकी भेट किया और हरि सिंह जी के लिये निवेदन कर दिया कि वह मतवाले की तरह न मालूम कहां भटकता फिरता है। हां आपकी आज्ञा के अनुसार **माधव सिंह** को परगने समेत **कोटा** दे दिया गया है। बादशाह बोला—"अपने दोनों कुमारों को बुला लो हम गई गुजरी बात को कुछ भी न गिनैंगे।" हाथी जो बादशाह को इस समय नजर किया गया वह तोपों की धनाधन से नहीं घबराता था। उसकी मस्ती छुडाने के लिये **अडसठ** दिनों के लंघन करा कर शाहजहां के सामने लाया गया था।

वजीर आसफ खां और सेनापति महाबत खां से इनकी मित्रता थी ही। बस उनके भरोसे यह निर्भय होकर अपने स्वरूप के अनुसार रहने लगे। समय पाकर हाडाराव ने वजीर से कहा कि—"मेरी वृद्धा माता **द्वारका की यात्रा** करना चाहती हैं इस लिये शाही आज्ञा से एक राहदारी का फर्मान मिल जावै ताकि किसी तरह की रोक टोक न हो। बादशाह से निवेदन करने पर इन्हें इस विषय का एक आज्ञा पत्र मिल गया। इस तरह बहुत दिनों तक आगरे में निवास करके हाडाराव ने बूंदी जाने की छुट्टी मांगी। और बादशाह को संतुष्ट किया।

फिर यह छुट्टी ले कर बूंदी पधार आये। यहां पहुंच कर पहले हाडाराव ने अपनी **वीरप्रसू** जननी के चरणों में प्रणाम किया। माता ने द्वारका परस कर संवत् १६८६ में उस मंदिर की रचना समाप्त करवाई जिस का आरम्भ राव सुरजन जी ने किया था। जो साथ गये उनको राज्य की ओर से खर्च दिया गया। इस मंदिर के बनाने में एक लाख तेतीस हजार रुपया खर्च किया। इसके सिवाय राजमाता ने **बारा में** एक बृहत् मंदिर बनाकर रणथम्भोर से लाई हुई श्री कल्याणरायजी की मूर्ति पधराई। खटकड के निकट **गोपालपुरे** में भगवान का मंदिर बना कर उसमें मूर्ति की

स्थापना की, और बूंदीनगर के पास बावडी बन वाई जो अब **रानीजी की बावडी** के नाम से प्रसिद्ध है।

बादशाह का इशारा तो पहले से हाडाराव से माधवसिंहजी को अधिक २ देने का हो ही गया था अब इन्होंने अपना बुढापा निकट आता समझ कर **माधवसिंहजी को कोटा**, खजूरी, अरण्डखेडा, केथून, आवां, कनवास, मधुकरगढ, डीगोद, और रहल–यों नो परगने दिये। और साथ ही हाथी, घोडे, चंवर, मोरछल, पोशाक, आभूषण और बहुत सा धन देकर अपने सामने ही अपने मझले पुत्र को **राजा बनादिया**। पति के स्वर्गवासी होने पर माधवसिंहजी की माता जांबवती जी अपने पुत्र के पास कोटे जा रहीं थीं इस कारण उनकी जागीर के नानता, कुनाडी, सगतपुर, नानणा, कांस्या बडी ये **पांच गांव** जो नदी चंबल से बूंदी की ओर हैं कोटाराज में संयुक्त होगये। बूंदी के इतिहास में कोटा राज्य बूंदी से अलग होजाने का इस तरह उल्लेख किया गया है। किन्तु टाडसाहब के मत से, जिसका वर्णन गत किसी अध्याय में किया गया है कोटा राज्य बादशाह जहांगीर ने माधवसिंहजी को उनका बुरहानपुर समर में पराक्रम देखकर स्वयं दिया था। मुन्शी देवीप्रसादजी अपनी चिट्ठी में लिखते हैं कि–"माधवसिंह को कोटा **चाकरी करने** से मिला है। यह खुर्रम की पहले से नोकरी करता था। एक तांबापत्र सं. १६३९ का माधवसिंह का दिया हुआ बूंदी या कोटे किसीके पास है वह जाली है। कोटा शायद संवत् १६८९ में उसको मिला होगा।"

ताम्रपत्र के संवत् में कुछ गलती होगई हो अथवा पुराना अधिक पड-जाने से आठ की जगह तीन पढा जाता हो परन्तु केवल संवत् की दहाई में ही भ्रम होजाने से जब मुन्शी देवीप्रसादजी जैसे इतिहासज्ञ इसे जाली बत-लाते हैं तब किसी पक्के प्रमाण से ही कहते होंगे। चाहे इन्होंने अपने पत्र में स्पष्ट नहीं किया है किन्तु जो बात टाडसाहब ने लिखी है उसकी झलक इसमें अवश्य है। कुछ भी सही यदि शाहजहां की आज्ञा से रत्न सिंह जी ने अपने पुत्र माधवसिंहजी को कोटा दिया हो तो क्या और उन्होंने बाला २ बादशाह से पाया हो तो क्या? दोनों का मतलब वास्तव में एक ही है अब

दोनों मतों की भिन्नता मिटने का इस समय कोई साधन उपस्थित नहीं है तब माधाणी हाडा, माधवसिंहजी को पिता प्रदत्त राज्य मिलने में अपना गौरव समझते हों तो पिता का दिया हुआ मानलें और मुसलमान बादशाह का दिया हुआ मानने से उनकी प्रशंसा होतीहै तो वैसे ही सही हां! मेरी समझ में राजकुमार माधवसिंहजी अवश्य पिता का दिया हुआ ही जानते होंगे क्यों कि संसार में सब के उपकार गिनने में आते हैं किन्तु माता पिता के उपकारोंकी सीमा नहीं। जब उन्हें जन्म दिया, शरीर दिया, विद्या दी, वीरता दी, और सर्वस्व दिया तो एक राज्य किस बिसात में। फिर माधवसिंह जी उसी पिता के पुत्र थे जिसने पिताकी आज्ञा बिना बादशाह अकबर को चुनारगढ न देकर अपनी पितृभक्ति का परिचय दिया था।

खैर! कोटा राज्य के अलग होने का आरम्भ का यही इतिहास है। इस के वाद बूंदी कोटा का आपस में कैसा वर्ताव रहा सो कुछ तो इस पुस्तक के आगामि पृष्ठों में लिखा जायगा और कितना ही "उम्मेदसिंह चरित्र" में लिखा गया है। यह बंबई के "श्रीवेंकटेश्वर प्रेस" में छपा है.

अध्याय १३.

रावरत्नजीका स्वर्गवास।

हाडाराव रत्नसिंहजी ने मझले कुमार माधवसिंहजी को कोटा देकर जैसे वहांका महीप बनाया सो गत अध्याय में लिखा जा चुका। ऐसे ही इन्होंने छोटे पुत्र **हरिसिंहजी** को कापरैन और पीपलदा जागीर में दिया। इनके सिवाय सारसला और मऊ आदि सात गांव और दिये। पहले हाडा कुल की इकीस शाखायें थीं। अब माधवसिंहजी के सात पुत्रों में से पांच का वंश चलने से छःवीस और हरिसिंहजी और **जगन्नाथ सिंहजी** की संतति बढकर अट्ठाईस शाखायें होगई। हरिसिंहजी के पुत्र चार और जगन्नाथजी के पुत्र तीन थे।इन में जैतसिंहजी और फतेहसिंहजी नामी बहादुर थे और हाडाराव की सेना में इन्होंने काम भी भारी २ किये थे।

इस तरह छुट्टी के दश महीने तक बूंदी में रह कर **रावरत्नजी** ने अपने पुत्रों और पौत्रों को जब जागीरें बांट दीं तब आपने फिर दक्षिण की ओर चढाई करने पर मन लगाया। और अपनी सजी धजी सेना के साथ अपने **प्रपौत्र** (नाती के पुत्र) भावसिंहजी को, जिनकी उमर उस समय केवल आठ वर्ष की थी, साथ लिये हुए **बुरहानपुर** जा पहुंचे।

इधर बादशाह शाहजहां अपने हाथ से अपनी कैद के दिनों में चिलमें भरवाने और चपतें लगाने वाले **हरिसिंहजी को**—उस रणबांके हाडा को जिसने तीर से घायल करके खुर्रम को पकड लिया था—न भूला। उसने पहले ही कह दिया था और हरिसिंहजी को कष्ट न पहुँचाने का "अभय" भी देदिया था किन्तु हठीले और मतवाले हरिसिंहजी की ढिठाई का विचार करके, बादशाह के कोप को सोचकर कहीं कोई बखेडा न हो पडे—इस डर से नरेश ने इनको बादशाह के **पास न भेजा** और इस कारण शाहजहां ने हाडाराव के राज्य के अभी दिये हुए नये परगने सातों ही **खालसे** कर लिये। इन सात परगनो में से शाहजहां ने टोडा आदि चार सीसोदियों को देदिये। उदयपुरनरेश करणसिंहजी का इस समय स्वर्गवास होचुका था और उनके बडे पुत्र जगत्सिंहजी जिन्हें ये परगने दिये गये गद्दी विराजे थे।

राव **रत्नसिंहजी** का जीवन भर समर भूमि में लडते लडते बाल पकजाने पर भी— बुढापा शरीर पर झलक आने पर भी **साहस बूढा** नहीं हुआ। यमपुर की महा यात्रा का समय पास आजाने पर भी स्वामिभक्ति ने उनके **अदम्य उत्साह** को उत्तेजित किया और इस कारण जिसके एक बार प्राण बचाकर दिल्ली का साम्राज्य दिलाने का अवसर दिया उसके दिये हुए सात परगने उतार कर शाहजहां के कृतघ्नता दिखानेपर भी यह उसकी ओर से—अपने कर्तव्य पालन से—उसका राज्य बढाकर निष्कंटक करदेने से **उदास नहीं** हुए। इन्होंने बुरहानपुर पहुंचकर उस सूबे का—उसके आस पास के प्रदेशों का और फिर दूर २ तक का दौरा किया। इस दौरे में कोई इनके आतंक से भयभीत होकर इनका अधीन बनगया, किसीने लड झगड कर

हार खाने बाद इनकी शरण ली और किसी को संग्राम भूमि में सदा के लिये सुलादेने बाद बादशाह के **राज्य को बढाया** । इन्होंने अपनी विजय से प्राप्त तिमरनी और आसेरगढ में अच्छे २ किलादार नियत करके सह्याद्रि पर्वत तक और इधर अरिगांव, इलपुर, रोजा, असाई, लेकर गोदावरी तक धूलिया नासिक और त्र्यंबक पर जा अधिकार किया । वहांसे चलकर नांदेर में दो मास निवास कर तापी और गोदावरी के बीच का सारा प्रदेश **विजय किया** ।

जिन दिनों नांदेर से चलकर काली बाई पहुंचे देश में दारुण दुष्काल से हाहाकार मच रहा था । उन दिनों न तो अंग्रेजी राज्य की सी शांति ही देश में विराजमान थी और न वनजारों के बैलों के सिवाय आज कल की तरह रेलवे लाइन का सा कोई अन्न लाने ले जाने का **साधन था** । वहां जब प्रजा को ही अन्न के नाम पर मुट्ठीभर चने मिलना कठिन होगया था तब हाडाराव की वीर बाहिनी सेना के लिये अन्न कहां से । किन्तु ऐसे भयंकर समय में अमात्य **केशवदास** ने अन्न के भंडार खोलकर सबकी रक्षा करी और इस लिये "**दलथम्भन**" की पदवी पाई ।

इसके बाद हाडाराव रत्नसिंहजी के शरीरान्त होने के सिवाय कविराजा सूर्यमल्लजी के "वंशभास्कर" में उनके किसी युद्ध का वर्णन नहीं है । उनके मत से कालीबाई पहुँचने पर रावरत्नजी को एकान्तर ज्वर आया । और संवत् १६८८ में मार्गशीर्ष शुक्ला १० को मंगलवार के दिन प्रहर भर दिन शेष रहे इन्होंने इस असार संसार को छोडकर वीरगति के साथ स्वर्ग पाया । इनका जन्म संवत् १६२५ में हुआ था । यह बूंदी की गद्दी पर संवत् १६६४ में विराजे थे । इस कारण इन्होंने **तरेसठ वर्ष** की आयु में **चौबीस वर्ष** तक राज्य किया । यह बूंदी के इतिहास का सारांश है किन्तु टाड साहब ने इस घटना को कुछ और ही प्रकार से वर्णन किया है । वह लिखतेहैं किः—

" राव रत्न जब बुरहानपुर के सूबादार थे उन्होंने वहां अपने नाम का रत्नपुर नामक एक नगर बसाया था जो अब तक विद्यमान है । इन्होंने

दूसरा एक और महत्कार्य करके केवल सम्राट् को ही प्रसन्न किया हो सो नहीं किन्तु अपने पुराने स्वामी—मेवाड के राजा को भी बहुत सन्तुष्ट किया। राजसभा का एक जोरदार उमराव दर्याखां उन दिनों उस प्रदेश में अपने अत्याचार से, अंधाधुन्ध मचाकर प्रजा को बहुत पीडा दे रहा था। हाडा ने इस पर आक्रमण किया, हराया और पकड कर बादशाह के पास हाजिर कर दिया। इस नामी सेवा के उपलक्ष्य में बादशाह ने इनको नौबत दी, पीला निशान देकर वह–झंडा नरेश के आगे चलने का अधिकार दिया और एक लालझंडा इनके शिबिरों में (डेरों के पास) खडा करने को दिया। ये तीनों अभीतक इनके उत्तराधिकारियों के पास मौजूद हैं। रावरत्न ने केवल अपने राजपूत भाइयों का ही उपकार न किया किन्तु समस्त हिन्दूजाति के धर्म की रक्षा कर यश प्राप्त किया। हाडाओं को इस बात का गर्व है कि उनके शिबिरों के निकट पवित्र गोमाता का वध करके उसके रक्त से वहां की भूमि कोई मुसलमान भ्रष्ट नहीं करने पाता। यह ऐसी बडी २ सेवाओं के अनन्तर बुरहानपुर के निकट एक युद्ध में मारे गये। और अपनी वीरता और नेकी के लिये समस्त हाडाओं में सदा के लिये अपना नाम अमर कर गये।

ऊपर जो कुछ "टाडराजस्थान" से उद्धृत किया गया है वह साहब बहादुर लिखित रावरत्नसिंहजी के कामों की समालोचना है। अवश्य ही बूंदी के इतिहास में और टाड साहब के लेख में हाडाराव की मृत्यु की घटना परस्पर मेल नहीं खाती हैं। एक उनका ज्वर से परलोक और दूसरा संग्राम-भूमि में मारा जाना बयान करता है। इस विषय में तीसरा कुछ भी उल्लेख नहीं करता तब इसके सत्यासत्य के निर्णय करने का भी कोई साधन नहीं होसकता। उनका बसाया हुआ रत्नपुर जब अभी तक विद्यमान है और बादशाह शाहजहां का दिया हुआ पीला झंडा जब अभी तक बूँदी के नरेश श्रीमान् महारावराजा रघुवीर सिंहजी बहादुर की सवारी में सब से आगे "निशान के हाथी" के नाम से हाथीपर आगे २ चलता है और लाल झंडा सेनाप्रयाण में लशकर के दोनों ओर खडा किया जाता है, भारतवर्ष के

अंग्रेजसम्राट् श्रीमान् पंचम जार्ज के दिल्ली दर्बार के समय संवत् १९६८ में खडा किया गया था। और दिल्ली के मैदान में बूंदी के शिबिरों में खडा किया गया था तब यह भी निर्विवाद है और दर्याखां के युद्ध का वर्णन चाहे बूंदी के इतिहास में न हो तब टाड साहब जैसे प्रामाणिक ग्रंथकार ने किसी प्रामाणिक मार्ग से जानकर ही लिखा होगा किन्तु साहब बहादुर मेवाड के राजाओं को राव रत्नजी का पुराना मालिक बतलाकर कुछ भूल अवश्य करगये हैं। बूँदी के किसी इतिहास में अथवा किसी प्रामाणिक ग्रंथ में कहीं इस बात का पता नहीं है कि किसी बूँदीनरेश ने कभी किसी उदयपुर नरेश की सेवा की हो। मेवाड के इतिहास में राव सुरजन का उनके अधीन रहना बतलाया जाता है और राज्यपाने से पहले वह जबतक बूंदी के छुटभैया थे उस समय यदि उन्होंने कुछ काल तक उदयपुर नरेश के पास निवास किया तो यह बूँदीनरेश का मेवाड नरेश की सेवा करना नहीं कहला सकता। इस तरह की घटना से मेवाड का इतिहास भी खाली नहीं है। वहांके इतिहास में मेवाड के युवराज का बादशाह की सेवा करना बतलाया जाता है। खैर इन झगडों से न तो मुझे यहां लिखने से कुछ प्रयोजन और न इस चरित्र में इस बात के समावेश करने की आवश्यकता।

हां टाडसाहब ने यह बहुत ही उचित लिखा है कि हाडाराव धर्मरक्षा करके—देशसेवा करके अपना नाम अमर करगये बरन संसार के प्यारे बनगये। उन्होंने अपनी सारी आयु रणभूमि में बिताई, उन्होंने पग २ पर पराक्रम दिखाया, उन्होंने जहां जिस पर, हथियार उठाया उसे मारकर वा जीतकर छोडा। हारखाने का या मारखाने का पाठ ही उन्होंने पढ़ा नहीं था। वह जहांगीर और शाहजहां जैसे प्रतापी बादशाहों की जो भारत के इतिहास में कैसे ही संग्राम क्यों न होते रहे किन्तु एक छत्र राज्य करने वालों में गिने जाते हैं परम शुभचिन्तकता करके अपना जी झोंकदेने पर भी उनसे कभी दबे नहीं। पूर्व पुरुषों की प्रतिज्ञा का पालन करने और स्वधर्मरक्षा के विचार से उन्होंने यदि अटक पार न जाना चाहा तो शाहजहां के हजार दबाव डालने पर भी न गये तो न गये। उन्होंने अपनी शक्ति दिखलाकर

अपनी सेना के निकट **गोवध बंद** करवाना चाहा तो करवा कर छोडा। उस समय उनके साथ—उनकी तरह भारतवर्ष के और २ भी हिन्दूनरेश यदि कुछ साहस करते तो आगे पडकर देशभर की गोहिंसा बंद करवा कर छोडना उनके लिये कोई बडी बात नहीं थी। उन्होंने प्यारे पुत्र के परलोक प्रयाग करने का वज्र दुःख सहन करलिया किन्तु न्याय पथ से—**राजधर्म** से वह एक अंगुल भर भी न हटे। ऐसे पराक्रमी नरेश का मरना नहीं, शरीर छोड देने पर भी अपनी आत्मा को अमरपुर (स्वर्ग) में निवास देकर युगयुगांतर तक अपना **यश अमर** कर जाना है। और इस कारण वह भगवान् कृष्णचन्द्र के इस वाक्य के—"हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्" के ज्वलंत उदाहरण थे।

वह इस तरह केवल बूंदी राज्य की सीमा, यहांका नाम, हाडाकुल की कीर्ति वढाकर स्वर्ग को सिधारे हों सो नहीं। उन्होंने टाड साहब के मत से दक्षिण में केवल रत्नपुर ही नहीं बसाया किन्तु उनका कुटुम्ब भी एक रत्नपुर से—अच्छे नगर से कम न था। उनके पिता और पितामह के कारण हाडाओं की शाखा—प्रशाखाओं का जो विस्तार हुआ वह तो अलग ही किन्तु हाडाराव रत्नसिंहजी ने अपने नौ विवाह किये थे। मैं स्वयं बहुविवाह का पक्षपाती नहीं हूँ, एक स्त्री की विद्यमानता में दूसरा विवाह करना मेरी समझ में अयोग्य है और चाहे संतान हो चाहे न हो किन्तु एक स्त्री के मर जाने पर भी दूसरा विवाह करना मुझे पसंद नहीं है किन्तु यह बात सर्व साधारण के लिये होसकती है। राजाओं के लिये नहीं। राजा को एक के बाद दूसरा और दूसरे के बाद तीसरा—इस तरह अनेक विवाह करने पडते हैं। ऐसे बहु विवाह का जो हेतु आज कल माना जाता है केवल वही कारण नहीं है। यदि किसी ने इन्द्रियलोलुपता से अनेक विवाह किये हों तो वह बात जुदी है किन्तु मोटा कारण जो लोगों के ध्यान में है वह यही है कि राजाओं की लडकियां राजाओंके लिये ही हैं इस कारण राजा लोग छोटे ठिकानों में देना हलका समझकर बडे २ राजाओं के घर में लडकी देते हैं। और ऐसे बहु विवाह की प्रथा चली है। किन्तु मेरी समझमें इसके सिवाय एक और मुख्य कारण तो यह

है कि उन्हें वंश की रक्षा कर राज्य का स्वामी और उसके सहायक पैदा करने के लिये बहु विवाह करने पडते हैं और दूसरे उन्हें अपने लिये युद्ध में सहायता देने वाले अनी बनी के सर्दार तैयार करने के लिये : क्योंकि जैसा समय पर सगोत्र सपिंड और सकुल्य काम देसकता है उतना दूसरा नहीं। इसके उदाहरण एक नहीं अनेक मिलैंगे। भला राव रत्नसिंहजी ने जब अपना जीवन भर युद्ध ही युद्ध में बिताया तब यदि नौ विवाह न करते तो आज राजपूताने में हाडाजाति का अधिक भाग केवल उन्हींके वंशका कहां से दिखलाई देता। यही क्यों बरन यदि उनकी संतति का इतना विस्तार न होता तो इस जाति के इतने वीर ही कहां से होते और क्यों कर यह इतनी शक्ति ग्रहण करते।

बस इसलिये ही राव रत्नजी ने अपने नौ विवाह किये। इनका पहला विवाह आमेरनरेश विश्व विख्यात राजा मानसिंहजी की कन्या से, दूसरा तंवर नरेश नृसिंह सिंहजी की दुहिता से, तीसरा सोलंखी भोजावत् सरदार की बाई जांबवती से, चौथा फिर आमेर के कछवाहा घराने की पुत्री अमान-कुंवरजी से हुआ। इनमें पट्टरानी का नाम राम कुमरि और दूसरी रानी का नाम राजकुमरि था, चौथी रानी को विवाहने के लिये यह गये नहीं किन्तु उनका डोला आगया था। पृथ्वी सिंहजी और शार्दूल सिंहजी की कन्यायें—श्यामकुंवरि और लाडकुमरिजी से इनका पांचवां और छठा विवाह हुआ। जोगी दासजी गौड की बाई गंगाकुंवरि, सातवीं मोहन सिंहजी की कन्या श्याम कुंवरि, भीम सिंहजी सीसोदिया की लडकी देव कुमरि, अचल सिंहजी की बेटी रम्भावती—यों अनुक्रम से नौ विवाह हुए। इनमें से हाडाराव रत्न सिंहजी के चार पुत्र और दो कन्यायें हुईं। कन्यायें विवाह से पूर्व ही देव धाम पधार गईं।

बडे राज कुमार गोपी नाथजी के ग्यारह विवाह और उनसे तेरह पुत्र हुए एक, कन्या भी। दूसरे भाई माधव सिंहजी के भी नौ विवाह हुए। उनके सात पुत्र और सात ही कन्यायें हुईं। तीसरे हरिसिंह जी के आठ विवाह से आठ पुत्र और तीन कन्यायें हुईं। चौथे जगन्नाथ सिंहजी के चार विवाह

किये गये। इनसे तीन ही पुत्र हुए। इस तरह वंश की वृद्धि होकर पौत्रों के कितनी सन्तानें हुईं सो लिखना तो क्या किन्तु ऐसे राव रत्नसिंहजी के नौ रानियां, चार पुत्र, दो पुत्रियां, तीस पुत्रवधुयें, एकतीस पौत्र और ग्यारह पौत्रियां होकर इनकी कुल संख्या **अट्ठासी** हुई। यदि इनमें पौत्रों के विवाह की, उनकी सन्तानों की संख्या जोडी जाय तो **दो सो के लगभग** पहुँच जायगी। फिर इस कुटुम्ब को एक नगर की उपमा दी जाय तो क्या आश्चर्य ! क्योंकि इनके बडे पौत्र राव राजा शत्रुशल्यजी के **१६ विवाह** और इनके और २ भाइयों के भी अनेक विवाह हुए थे।

कोटे में माधानी क्षत्रियों की जो कोठडियां हैं वे अवश्य माधव सिंहजी की सन्तानों में से हैं किन्तु शत्रु शल्यजी के भाई इन्द्रशालजी का **इन्द्रगढ**, वैरी सालजी का **बलवन**, मुहकम सिंहजी का **आंतरदा**—ऐसे ही **खातोली, पीपलदा, नीमोदा** आदि सात कोठडियां बूंदी की हैं। गत शताब्दि तक बूंदी के अधीन थीं। और किस प्रकार झाला जालिम सिंह जी के प्रपञ्च से वे कोठे में जा मिलीं और क्योंकर टाड साहब ने इस पर खेद प्रकाशित किया है सो मेरे बनाये "उम्मेदसिंहचरित्र" में कुछ विस्तार से लिखा गया है। यहां उसका उल्लेख करना आवश्यक नहीं।

अस्तु काली बाई के निकट जिस समय हाडा राव रत्न सिंहजी का स्वर्गवास हुआ उनके **पर पोते** भावसिंह जी आठ वर्ष की उमर में उनके साथ थे। हिन्दुओं में परपोता होने से स्वर्ग की निसैनी अथवा सोने की निसैनी पर चढने का उत्सव हुआ करता है। रावरत्नजी के जब एक नहीं कई एक पोते मौजूद थे तब वह सोने की निसैनी पर क्या चढे मानो उनके पुण्य प्रताप ने उनके पर पोते के हाथ से चिता पर चढा कर स्वर्ग में चढा दिया। इन्हींने परदादा की अन्त्येष्टि क्रिया की। इनकी रानियों में सात का देहान्त इनके समक्ष हो चुका था। बची हुई दो रानियों में से एक "तंवरजी" ने खबर पाकर जीते हुए चिता में अपना शरीर भस्म कर पति का साथ दिया और कोटा नरेश माधवसिंह जी की माता उनके साथ कोटे चली गईं। बूंदी खबर पहुंचे पर पौत्र शत्रु शल्यजी ने पितामह का **मौसर** (नुकता) बडी

धूम धाम से किया। इसमें खूब दान पुण्य किया गया। यहां पाठकों के ध्यान देने योग्य यह है कि उनकी सात रानियों का पहले स्वर्ग वास हो चुका था, एकने सहगमन किया इसकारण नो में एक को ही विधवापन भोगना पडा। ऐसी जगह कहना पडता है कि पुण्यवान् के लिये सब ही सीधा है।

खैर जन्म भर संग्रामों में जुटे रहने, सेना की सजावट, यात्रा और दान पुण्य में लाखों रुपये खर्च करने पर भी राव रत्न सिंहजी ने बूंदी के महलों में रत्न दौलत के नाम से एक महल, जो बडे२ दर्बारों के समय काम आता है बनवाया, गढ में नौठान, रत्ननिवास, रत्नमहल, रत्नमंदिर बनवाया। इनकी दो रानियों ने मिल कर रत्नमंडप बनवाया। इन्हीं राव रत्नसिंहजी की बनाई शहर की खाइयां हैं, परकोटा है, रत्नबाग है और क्षारबाग (सारबाग) है। यह वही सारबाग है जिसमें बूंदी नरेश के पूर्वजों का अग्निसंस्कार होता है। राव रत्न के समय की बनी हुई इमारतें लाखों रुपयों की लागत की हैं, लाखों रुपया ही इनका सेना सजाने में, संग्राम करने में, आने जाने में और दान पुण्य में खर्च हुआ। इस समय यह प्रश्न उठ सकता है कि इस तरह लाखों ही लाखों का जोड लगाते २ करोडों रुपया कहांसे आया इसका उत्तर महात्मा तुलसी दास जी के वाक्य में एक ही है—

"मुनि बोले मुनि अति सुख पाई,
　　पुण्य पुरुष कहं महि सुख छाई।
जिमि सरिता सागर महं जाहीं,
　　यद्यपि ताहि कामना नाहीं।
तिमि सुख सम्पति बिनहिं बुलाये,
　　धर्मशील पहँ जाहिं सुहाये।"

अथवा—राजपूताने की कहावत के अनुसार—"खर्च को भाग मोटो है।"

मैं ऊपर कह आया हूँ कि संवत् १६८८ में हाडाराव रत्न सिंहजी का जब स्वर्गवास हुआ देश में दारुण दुर्भिक्ष की पीडा से चारों ओर त्राहि २ मच रही थी। अमात्य केशवदास सोमानी के सुकार्य से हाडाओं की सेना में अकाल अपने हाथ पैर न फैलाने पाया और इस तरह बालक के हाथ से

अपने मालिक का अंतिम संस्कार करवा कर भाव सिंहजी को बूंदी भेज दिया और बुरहान पुर की सूबादारी को उसी तरह डांटे रहा जैसे हाडाराव रहते थे। इस "दलथंभन" अमात्य ने बूंदी नरेश की ओर से बादशाह के पास निवेदन पत्र भेजकर बूंदी जाने की आज्ञा मांगी और इस तरह राव रत्नसिंह जी का चारित्र समाप्त हुआ।

रत्नजी के चरित्र के साथ यह अध्याय समाप्त करने पूर्व पंडित गंगासहाय जी के "वंश प्रकाश" से लेकर यहां इतना और लिख देना चाहिये कि शत्रुशल्यजी के भाई इन्द्रशल्यजी को अणघोरा, ढीपरी और ककरावदा दिया गया। इन्द्र गढ उन्हीं का वसाया हुआ है। इन्द्र शालजी के छोटे पौत्र अमर सिंहजीने गौडों को जीत कर खातोली ली। इनके छोटे पुत्र को नाना के यहां से नीमोला मिला। राव रत्नजी ने वैरी शल्यजी को वलवन और आमथून, मुहकम सिंहजी को करवर, महासिंह जी को जजावर और राज सिंहजी को हरिगढ प्रदान किया था। इनमें से करवर पीछे से खालसे हो गई। बाकी जो जिसे दी गई वह उसीके वंशधरों के पास है। परन्तु यह विदित न हुआ कि यह हरि गढ कौन सा है और इसके जागीरदार कौन?

अध्याय १४.

परिशिष्ट।

यद्यपि गत तेरह अध्यायों में हाडाराव रत्न सिंहजी की जीवन लीला समाप्त हो गई किन्तु मुन्शी देवीप्रसाद जी जोध पुर निवासी रचित "शाह-जहां नामे" में इनके चरित्र से संबंध रखनेवाली दो चार बातें ऐसी रह गईं जिनका यहां उल्लेख किये विना इस चरित्र को समाप्त कर देना उचित नहीं है। गत बारहवें अध्याय में बादशाह जहांगीर के परलोक को प्रयाण करने पर "जहांगीरनामे के मत से उसकी जगह उसके पोते दावरबख्श का छत्र धारी वनना लिखा हुआ है। इस बात का अनुमोदन मुन्शी देवी प्रसाद जी का "शाहजहांनामा" भी करता है। उसमें इस बातका जो उल्लेख है उसका सार यही है कि राजोर में जहांगीर के मर जाने पर उसकी प्राणवल्लभा

नूरजहां बेगम ने दिल्ली का साम्राज्य शहरयार को दिलाने की इच्छा से उसे बुलाया किन्तु वजीर आसफ खां ने शाहजादे खुसरो के बेटे बुलाकी (दावर) को सिंहासन पर बिठाल कर नूरजहां (अपनी सगी बहन) को कैद कर दिया। शाहजहां से जंग में शहरयार हार गया। बिचारे दावर में इतना दम कहां। बस जुनेर में पिता की खबर पहुंचते ही खुर्रम बादशाह बन गया। खुर्रम के बादशाहत पाने की और घटनाओं से न तो इस चारित्र का कुछ संबंध और न यहां उन्हें प्रकाशित करने की आवश्यकता। हां एक बात यहां फिर जतला देना आवश्यक है कि मुन्शी देवी प्रसाद जी के उस मत की " शाहजहांनामे" से भी पुष्टि होती है कि शाहजहां न तो बूंदी वालों की कैद में रहा और न उदय पुर वालों ने उसे गद्दी दिलाई। इस विषय में बूंदी के इतिहास ' वंशप्रकाश ' वंशभास्कर' और विश्वनाथ कवि रचित "शत्रुशल्य चारित्र" को देखने और "टाडराजस्थान" में खुर्रम को बूंदी की सहायता से साम्राज्य मिलने की जो झलक पाई जाती है उससे कौन सा मत सच्चा है सो उसी अध्यायमें लिख दिया गया है।

'शाहजहां नामा' मुन्शी देवीप्रसादजी की मनगढन्त नहीं है। उन्होंने नामी २ मुसलमान इतिहास लेखकों के आधार पर यह पोथी तैयार की है और इसकी रचना केवल इस इच्छा से की है कि देशी नरेशों का जो इतिहास अंधकार की गोद में छिपा हुआ है वह प्रकाशित हो जाय। अस्तु हाडाराव रत्न सिंहजी के विषय में बूंदी के इतिहास के सिवाय उनके 'शाहजहांनामे' में जो बातें अधिक लिखी हैं उनका सारांश यह है।

उससे मालूम होता है कि राव रत्नसिंहजी **तिलंगाना** विजय करने के लिये बादशाह शाहजहां की आज्ञा से भेजे गये थे। फिर उनकी जगह नसीरी खां तिलंगाना और कंदहार का किला फतह करने के लिये भेजा गया। तिलंगाना—तैलंग देश जब दक्षिण प्रान्त का एक अंश है तब तिलंगाना विजय करने के लिये एकके बाद दूसरे को भेजना तो बन सकता है किन्तु न तो इसमें यह लिखा गया है कि राव रत्न जैसे पराक्रमी सिंह के होते हुए नसीरी खां को भेजने की क्यों आवश्यकता हुई और न नसीरी खां को

तिलंगाना लेने और कंदहार का किला फतह करने की दो आज्ञाओं का आपुस में मेल हो सकता है। दोनों बातें अनमिल हैं—बेजोड हैं क्योंकि तिलंगाना पश्चिम में और कंदहार उत्तर में। अस्तु राव रत्नसिंहजी की मृत्यु के विषय में इस पोथी में लिखा है कि—

"संवत १६८८ की पौष कृष्णा ३—रावरत्न हाडा के मरने की खबर बालाघाट के लशकर में पाकर बादशाह ने उसके **पोते शत्रुशाल** को ३ हजारी जात और दो हजार सवार का मनसब और राव का खिताब बख्शा। और खटकड तथा दूसरे परगने जो रावरत्न के वतन के थे वे सब उसकी जागीरमें बहाल करके हाजिर होने के वास्ते फर्मान भेजा। ....राव शत्रुशाल का बाप गोपीनाथ दुबला पतला था तो भी इतनी ताकत रखता था कि दरख्त की दो डालियों के बीच में बैठ कर दोनों को **चीर डालता था** और ये डालियां भी इतनी मोटी होती थीं जितनी कि शामियाने की चोब होती है। ऐसे २ ही बेजा जोर करने से वह बीमार होकर बाप की जिन्दगी में मर गया।"

इस लेख को बूंदी के इतिहास से मिलान करने की कुछ आवश्यकता नहीं। इनके चारित्र में जो कुछ उल्लेख योग्य बातें थीं वे सब गत अध्यायों में आचुकीं। हां! मुन्शी देवीप्रसादजी ने बूंदीराज्य के शिला लेखों का आधार लेकर एक बात और अपनी पुस्तक "राजपूताने में प्राचीन शोध नंबर १" में इस तरह लिखी है:—

"यह गांव (लाखैरी) बूंदी से १८ कोश पूर्व में है। इसे लाखा चौहान ने बसाया था। यहां **लूनाबाय** नाम की एक बावडी लूनाजी अतीत की बनाई हुई है। इनका असली नाम अध्यात्मजी था। यह रावरत्नजी के समय में हुए हैं। एक बनजारा **खांड की बालद** लिये जाता था। अध्यात्मजी ने उससे पूछा "इसमें क्या है?" तो उसने लवण बतलाया। उन्होंने कहा—"अच्छा लवण होगा।" उसने गांव मे जाकर देखा तो सब बालद में **नमक होगया**। तब तो वह रोता पीटता आकर उनसे कहने लगा "मेरी बालद में तो खांड थी।" अध्यात्मजी ने कहा—"अच्छा खांड ही होगी।"

सो खांड होगई। उसने १०० बैल पीछे एक आना अध्यात्मजी को लगा दिया जो अब तक उनके चेलों को मिला जाता है। खांड को लवण करदेने से इनका नाम लूणाजी होगया। इससे पीछे उन्होंने यह बावडी बनवाई जो लूणाजी की बावडी कहलाती है। राबरत्न ने संवत् १६६९ में उनके लिये मठ बनवा कर बाजार में चुंगी लगादी जो उनके चेलों को अब तक मिली चली जाती है।" यह बात वर्षों की लिखी हुई है किन्तु न तो अब इनके चेलों में से कोई है और न चुंगी मिलना जाना गया। हां यह स्थान इन्द्रगढ के निकट बूंदी राज्य की सीमा में है। इससे अब लूनावाय कहते हैं। राज्य बूंदी की ओर से इसमें भगवान की मूर्ति की सेवा करने के लिये एक ब्राह्मण नोकर रहता है और पूजन का खर्च राज्य से ही दिया जाता है। यह स्थान मेरा भी देखा हुआ है। भगवानकी मूर्ति बडी सुंदर है। और उसके आस पास का पर्वत बडा रमणीय है। दर्शन करने से चित्त पर प्रभाव भी पडता है।

इन अध्यायों के पढने से जो सबक इतिहास के खोजियों को मिलसकता है उसका विचार तो करना उन्हीं के हाथ है किन्तु इस में संदेह नहीं कि राव रत्नसिंहजी अपनी जान को झोंक कर पराक्रम दिखानेवाले थे, वह स्वधर्म रक्षा के लिये अपने राज्य को, अपने परिवार को और अपने शरीर को तिनके के समान समझते थे और वह बूंदी के इतिहास में बडे २ काम करके बडा नाम पागये। भारतवर्ष की मुगल बादशाहत भी उनकी बहुत ऋणी है। इनके विषय में प्राचीन कवियों के कुछ पद्य प्राप्त होसके हैं जो नीचे लिखे जाते हैं:—

मनोहर—सिंह रूपी शाहजहां खण्डित खाडून करै,
आडी कोन देय तेग तोरि डारियतु है।
कलियुग के जोर असुरान को प्रताप ऐसो,
अकबर सलीम की न रीति पारियतु है।
धेनु निरधनी भई आगैं कहैं दाढैं मुख,
चतुर्भुज छत्रिन की छाती जारियतु है।

दूनी हुती हाडा छत ऊनी भई हिन्दू राह,
रत्न बिहूनी गायें सूनी मारियतु है ॥ १ ॥
बिगर हथ्यारन हुजूर आयबे को न हुक्म,
मान्यो नहि दिल्ली पति आलम पनाह को ।
मतिराम कहैं दल दक्खिनी समेत साह,
जहां सो हटायो बीर वारिधि उछाह को ।
भोज को सुपूत भयो फौज को सिंगार अति,
ओज को दिनेश दुर्जन दल दाह को ।
राव रत्नेश कर ओट राख्यो करि वार,
करि वार ओट राख्यो कोट बादशाह को ॥ २ ॥
दोहा—बंश वारिनिधि रत्न भो, रत्न भोज को नन्द ।
साहन संग रणरंग में, जीत्यो बखत बुलन्द ॥ ३ ॥

इन दो छन्दों और एक दोहे में से दूसरा और तीसरा रावराजा शत्रुशल्यजी के समसामयिक कवि शिरोमणि मतिरामजीके "ललित ललाम" से लिया गया है । कवि मतिराम या तो हाडाराव रत्नसिंहजी के समय में मौजूद हो अथवा उनके देहान्त से थोडे वर्षों बाद उसने नाम पाया हो । इस लिये कहा जा सकता है कि जो कुछ इस ग्रंथ में लिखा गया है वह सत्य है । पहला पद्य झालावाड निवासी मुहकम सिंहोत महाराजा बलभद्र सिंहजी से प्राप्त हुआ है । यह किसका बनाया हुआ है सो स्पष्ट नहीं होता । इसके तृतीय चरण में चतुर्भुज नाम आया है । यह किसी कवि का भी नाम हो सकता है और चहुवान बंश के मूल पुरुष चाहुवान जी का एक नाम चतुर्भुज भी था । शायद इसी का इशारा कर चहुवान क्षत्रियों के लिये कहा गया हो । कुछ भी हो परन्तु इसमें संदेह नहीं कि इस पद्य से हाडाराव रत्नसिंहजी की **स्वधर्म निष्ठा** का अच्छी तरह पता मिलता है । यह किसी इतिहास में नहीं देखा गया कि राव रत्न के स्वर्गवास होने के अनंतर हाडाओंके शिबिरों के निकट **गोवध** होने लगा हो और बावन युद्धों में पराक्रम

दिखाकर विजयी होंने वाले **शत्रुशल्यजी** के समय में ऐसा होना भी **संभव नहीं** इस लिये मालूम होता है कि यह पद्य उस समय का बना है जब रत्नसिंहजी का देहान्त हो चुका था और शत्रुशल्यजी का अच्छी तरह प्रकाश नहीं हुआ था।

इस चरित्र को समाप्त करने पूर्व बूंदी के पुरोहित दुर्गा शंकरजी की हस्त लिखित पुस्तक से दो चार बातें मालूम हुईं वे भी यहां लिख देने योग्य हैं। उस से विदित होता है कि बुरहानपुर का विजय करने पर बादशाह जहांगीर ने रावराजा **रत्नसिंह** जी को चांदी का नक्कारा और हाथी की नौवत दी थी और चित्तोडगढ की गणगौर लूटलाने वाले दर्याखां को बादशाह की आज्ञा से पकडकर पेश कर देने पर हाथी पर सवारी के आगे चलने वाला **पीला झंडा** दिया था और उन्हींने बूँदी में **लाल झंडा** खडा किया था। केवल इतना ही नहीं उस पुस्तक से एक और भी विशेष घटना का पता लगता है जिसका वर्णन किसी मुद्रित ग्रंथ में नहीं है। उसमें लिखा है कि संवत् १६६६ में रावराजा रत्नसिंहजी ने–केवल इन्हींने दिल्लीमें **गो वध बंद** करवा दिया। इसके प्रमाण में ऊपर लिखा हुआ केवल एक ही पद्य नहीं है वरन इनके (लगभग) समसामयिक कविराज मतिरामजी भी अपने "ललितललाम" में लिखते हैं कि:–

जोर दल जोरि साहिजादो साहिजहां जंग,
जुरि मुरि गयो रही राव में सरमसी।
कहै मति राम देव मन्दिर बचाये जाके,
वर वसुधा में वेद श्रुति विधि यों वसी।
जैसो रजपूत भयो भोज को सपूत हाडा,
ऐसो और दूसरो भयो न जग में जसी।
गायनि को बकसी कसाइन की आयु सब,
गायनि की आयु सो कसाइन को बकसी॥ १॥

दूसरा खण्ड ।

शत्रुशल्य-चरित्र ।

अध्याय 1.
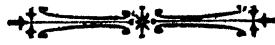
पहला विजय ।

पिता तो पहले ही परलोक पधार गये थे । पितामह के परम गति पाने पर रावराजा **शत्रु शल्यजी** ने २९ वर्ष की उमर में **बूंदी राज्य** के सिंहासन को सुशोभित किया । आयु में वृद्ध किन्तु उत्साह में, साहस में और पराक्रम में युवा **रावरत्नजी** के अनंतर अब सबही कामों में तरुण रावराजा शत्रुशल्य के बाल विक्रम देखने का समय आया । पितामह के शासन में उनका बालवय, उनकी जवानी किस तरह बीती—उन्होंने पितामह की छाया में रह कर क्या २ कार्य किये सो इतिहास में लिखा नहीं है । न कुछ उनकी **शिक्षा दीक्षा** का ही वर्णन है । शायद कवि राजा सूर्यमल्लजी को मालूम नहीं हुआ । नहीं तो वह अवश्य लिख देते । यदि नहीं लिखा गया तो न सही । जब उस समय राज कुमारों के लिये शिक्षा दीक्षा का आज कल की तरह प्रबंध नहीं था, जब उस समय आज कल की तरह परीक्षा और पास होने का पुंछल्ला नहीं लगा था, जब राजा का न्याय और वीरता के हाथ दिखा कर मरना मारना ही परीक्षा और पास था, जब उस समय के राजा स्वदेश सेवा, स्वराज्य वृद्धि और राजभक्ति के लिये पैदा होते थे तब उन बातों के लिखने की आवश्यकता ही क्या ! खैर इन सब कामों में इस चरित्र के नायक रावराजा शत्रुशल्य जी किस तरह उत्तीर्ण होकर कैसे यश कमा गये, कैसे उन्होंने दिल्ली सिंहासन की अटल भक्ति में अपने प्राण को न्योछावर करके वीर गति पाई सो आगामि अध्यायों में लिखा जायगा ।

हाडाराव रत्नसिंहजी के स्वर्गवास होने पर उनके प्रपौत्र भावसिंहजी से उनका अन्त्येष्टि कर्म कराके "दलथंभन" अमात्य बादशाह से छुट्टी लेकर

हाडा वाहिनी को लिये हुए बालक भावसिंहजी को लेकर जब बूंदी पहुंचा तब रावराजा शत्रुशल्यजी ने केशवदास को हृदय से लगा लिया । अमात्य ने नरेश को सलाह दी कि अब हृदयनारायणजी को भी बुला लेना चाहिये । वह बारीगढ के युद्ध में जब से राना कुमार भीमसिंहजी के आतंक से भागे तब से डर में, लज्जा से छिपे २ फिरते थे और कवि राजा सूर्यमल्ल जी कहते हैं कि लोगों ने उनका नाम भी "नासिकाहीन" रख दिया था। यह आये नहीं किन्तु हाडाराव रत्नसिंहजी की माता अर्थात् राव राजा शत्रुशल्य जी की परदादी जो अब तक विद्यमान थीं और उन्होंने अपने सामने पर-पोता क्या उसके पुत्र तक को देख लिया था और इसतरह सुरदुर्लभ सुख पा लिया था अपने बहादुर पुत्र का वियोग होने से वीरप्रसू माता को बहुत शोक हुआ । तब से उन्होंने अन्न खाना छोड दिया, फलाहार तक छोड दिया और चार वर्ष तक केवल दूध पीकर कालक्षेप किया । और इनके आगे ही हृदयनारायणजी और उनके भाई मनोहरसिंहजी का भी देहान्त होगया था ।

रावराजा शत्रुशल्यजी ने केशवदासजी के पुत्र करणसिंहजी को और अमात्य केशवदास के पुत्र को मऊ के हाकिम नियत कर अपने भाई बेटों, बन्धु, बांधवों, नातेदारों और जागीरदारों को लिख भेजा कि "दादाजी साहब ने सबको जागीरें दे २ कर संतुष्ट कर दिया है तो अब अपनी २ जागीरों की ठीक व्यवस्था करके शीघ्र बूंदी आओ । क्योंकि दिल्ली जाना आवश्यक है ।" इस प्रकार राजाज्ञा पा कर जिस समय अपनी २ जागीरों के प्रबंध में—बूंदी जाने की तैयारी में ये लोग लगे हुए थे तब बूंदी में खबर पहुंची कि हाडाराव रत्नसिंह जी के स्वर्ग वास होजाने और बूंदी की सेना के चली जाने से दक्षिणियों ने फिर शिर उठाया है, दिल्ली में अकबर के राज्य से मुगलों का शासन आरम्भ होने पूर्व लोदियों का राज्य था । इन्हींमें से बह-लोल लोदी के पौत्र इब्राहीम से तीन पीढी में खां जहां लोदी ही इस वार उपद्रव मचाने में मुखिया था । दक्षिणियों की सहायता से इसने मरनी मारनी सेना इकट्ठी की । जिन मुसलमान सर्दारों ने बुरहानपुर के जंग में

खुर्रम के पकडे जानेपर हाडाराव की शरण लेकर अभय पाया था वे लोग भी खुर्रम के अन्न को—उसके नमक को लातों से रोंदकर **लोदी में जा मिले**। इनका और भी मरहटों ने साथ दिया। इस पठान के चार पुत्रों की तैयारी से सेना के चार भाग होकर चारों ही ओर से उन्होंने बादशाह शाहजहां की प्रजा को लूटना और **शाही राज्य दबाने का** लग्गा लगाया। उन्होंने बढते २ उधर तो समुद्र का किनारा जा पकडा और इधर उज्जैन तक आ धमके. बादशाह जहांगीर के शासन में इस प्रान्त में जैसा गदर मचा था उससे भी इन्होंने अधिक २ कोहराम मचा दिया।

बादशाह शाहजहां की आज्ञा से अवश्य ही इनका दमन करने के लिये बडे२ सुभट, बडे २ बहादुर **भेजे गये** किन्तु जो गया वह शत्रु की तलवार का, तीर का, भाले का, बंदूक का, अथवा तोप का स्वाद चाख २ कर जो जिया वह **भाग आया**। शाहजहां को इस बात की जिन दिनों बहुत ही चिन्ता थी उन्हीं दिनों रावराजा **शत्रुशल्यजी** अपने अमात्य केशवदास, भाई इन्द्रशल्यजी, वैरी शल्यजी, और काका जैतसिंहजी, सबलसिंहजी को लिये हुए अपने चार भाइयों को बूंदी की रक्षा में छोड कर वहां **जा पहुँचे**। यद्यपि इन्होंने पैतृक संबंध से, घरोपे से अथवा हाडाजाति के मुखिया होकर साथ चलने के लिये कोटे से काका माधवसिंहजी को भी बुलवाया क्योंकि उनके राज्य अलग होने का सूत्रपात होजाने पर भी रावराजा शत्रुशल्यजी के एक हिसाब से वह अधीन थे और दूसरी तरह काका होने से बडे भी थे किन्तु उनके मन में अब बूंदी की अधीनता छोड कर स्वतंत्र होजाने की आशा चक्कर काट रही थी। इस कारण किसी काम का बहाना निकाल कर वह न आये। जब रावराजा शत्रुशल्यजी अपने भाइयों सहित, अपनी सेना समेत सजधज कर शाहजहां की सेवा में उपस्थित हुए तो उसने इनका आदर कर वही हाथी शिवप्रसाद दिया जो किसी समय राव रत्नसिंहजी ने बादशाह जहांगीर की भेट किया था। इसके सिवाय घोडे आदिक जो २ देने का उनदिनों वर्ताव था वे सब दिये। और सत्कार के साथ इनको वहां रक्खा।

बूंदी नरेश शत्रुशल्यजी के **सात विवाह** हाडाराव रत्नसिंहजी के समक्ष हो चुके थे। उन्होंने **आठवाँ** विवाह इनका उदयपुर नरेश जगत् सिंहजी की बहन से ठहराया था। जब यह दिल्ली जाने लगे तब ही रानाजी ने इनसे कहलाया था कि यहां विवाह कर फिर आप दिल्ली पधारें। उस समय दिल्ली जाने की त्वरा से यह वहां पहले ही चले गये। अब वहां पहुंचे तो दक्षिण के दंगे से घबडा कर बादशाह ने इनको **आज्ञा दी**:—

"इस समय तुम्हारे सिवाय ऐसा कोई दिखलाई नहीं देता जो दक्षिण का विजय करे। पहले तुम्हारे दादा ने दक्षिणियों का दमन किया था और अब, तुम जाकर अपनी **बहादुरी का जौहर** दिखलाओ"।

इस आज्ञा के पालन में बीर शिरोमणि होकर नाहीं करना और सो भी पहले ही अवसर पर न जाना इन्हें उचित नहीं था परंतु उदयपुर जाकर विवाह करने का मुहूर्त अति निकट आ पहुंचा था इसलिये इन्होंने वजीर आसफ़ खां और सेनापति महावत खां द्वारा कहलाया किन्तु बादशाह ने ज्योतिषी बुलाकर **दूसरे लग्न का** निश्चय करवा दिया और तब इनसे कह दिया कि:—

"एक बार खांजहां को जीत कर फिर जाना। हम छुट्टी तुरंत ही दे देंगे। हां दक्षिण की लूट में जो माल हाथ आवे उसमें तोपों को छोड कर सब कुछ हम तुम को देते हैं।"

यह आज्ञा पाकर इनके साथियों ने बुरहानपुर जाने की राव राजा शत्रुशल्यजी को सम्मति दी। अब दिल्ली में ही सेना की सजावट आरंभ होगई। इन्होंने संग्राम में संयुक्त होने के लिये मऊ से और बूंदी से अपने कई एक भाई भतीजे और नातेदार बुला लिये और काका हरिसिंह जी भी बुलाये इस प्रकार जब इनके शूर सामन्त इकट्ठे होगये तब बादशाह ने अपनी **दश हजार** सेना इनके साथ कर दी। राज्य का शासन आरंभ करने के अनंतर लडाई के मैदान में अंगद की तरह पैर रोप कर शत्रुओं को लोह का मजा चखाने का रावराजा शत्रुशल्यजी के लिये यह **पहला ही अवसर** था इसलिये इनकी उमंग, इनका उत्साह, इनका साहस, हृदय में समाता नहीं था। यह जहां २ होकर निकले वहां के राजाओं को अपने वश में करके तब

भगवती नर्मदा के तट पर जा पहुंचे । बस इनका पहुँचना था कि **घमसान युद्ध** का आरंभ होना था ।

दोनों सेनाओं के भिडते ही **खचाखच तलवारें** चलने लगीं । इस युद्ध से सूर्य मल्लजी के शब्दों में-"पृथिवी कांपने लगी, डूङ्गर (पहाड) डिगमगाने लगे, भगवान् भोलानाथ की समाधि टूट गई, शेषनाग बोझे के मारे घबडा उठे, रणचंडी के चित्त का चाव बढने लगा, अपनी वीणा के सुरताल ठीक करके कलह विशारद नारदजी नाचने लगे, भूत, प्रेत, डाकिनी, बेताल, जोगिनी, बावन वीर और राक्षस नाना भयानक रूप धारण करके रक्त पीकर, आंतें २ पहन २ कर नाच गान में मस्त होगये ।" लोदी की **सेना ३० हजार** थीं । पूना और बीजापुर के हिन्दू और मुसलमान नरेशों ने इनका साथ दे ही रक्खा था किन्तु शत्रु का बल अधिक देख कर भी युवा हाडा घबराये नहीं । यह **निर्भय होकर** जा भिडे और पहरभर तक दोनों ओर से गोलों से महाप्रलय के से ओले बरसने पर भी—दोनों के एक इंच भी इधर उधर न डिगने पर भी सेना को अपनी पीठ पर लिये हुए सब से आगे होकर मार काट करते हुए शत्रु सेना में उसी तरह **जा घुसे** जिस तरह अर्जुन तनय अभिमन्यु द्रोणाचार्य के चक्रव्यूह को भेद कर कौरवीसेना में जा घुसा था । एक मुहूर्त्त (दो घडी) तक खूब ही "धरो धरो, मारो मारो ।" के गगन भेदी शब्द ने तोपों और बंदूकों के शब्द ने मिलकर खूब ही आकाश को वादल की गर्ज की तरह भर दिया । तोपों और बंदूकों के धुँए और धरती की धूल ने भगवान् सूर्यनारायण को ढांक दिया । अवश्य ही इनका **पीला झंडा** देख कर बुरहानपुर किले में से प्राण बचाकर निकाले हुए मुसलमान इनके सामने **खडे न रहे** किन्तु दुर्दान्त यवनों की सेना वास्तव में दुर्दमनीय थी । इस बढावढी में इधर रावराजा के साथ काका हरिसिंहजी और गौड रणछोड दासजी थे और उधर खांजहां के चार पुत्र थे । उन चारों की सहायता के लिये हनुमंत और श्याम आदि मरहटे थे ।

दोनों की सेनायें इसतरह एक होगई जैसे दूध में बूरा मिल जाता है । जब दोनों सेना का द्वंद्व युद्ध होने लगा तो हाथी वाला हाथी वाले से,

घुडसवार घुडसवार से, और पैदल पैदल से भिडकर कोई तीर, कोई बल्लम, कोई खड्ग, कोई कटार, कोई खंजर और कोई छुरा मारकर अपने २ स्वामी की जय जयकार करने लगे। दोनों ओर विजय की इच्छा से सुभटों ने खूब ही शस्त्रों का प्रहार किया। हथियारों की मार से किसीका कलेजा फट कर त्रिशूल का सा आकार, कहीं धडसे शिर अलग होजाने पर कबंध और कहीं हाथ पैर अलग हो २ कर एक अजब समा बंध गया। अपनी सेना को विचलित होती देख कर—हाडावीरों के शस्त्रों की मार से घबडाती देख कर लोदी तनय आगे बढे किन्तु उनकी वही दशा हुई जो कोल्हू में पडने के बाद गन्ने की होती है। इन चार लोदी तनयों में से दो भाइयों के तो हरिसिंहजी ने शिर काट कर परम धाम पहुंचा दिया, तीसरे के कंधे पर शत्रुशल्यजी ने इस जोर से तलवार झाडी कि जनेऊ की तरह कट कर अलग होगया और चौथा गौड वीर रणछोड दासजी के शस्त्र का निशाना बन गया। ऐसे ही करणसिंहजी के हाथ से मरहटा श्याम, हठीसिंहजी के शस्त्र से मरहटा हनुमन्त, यशवन्त सिंहजी पूरावत की तलवार से अमन और करीम मुसलमान,—ऐसे आठ वीरों के मर कर धराशायी होते ही खांजहां घबरा कर अपनी जान लिये हुए रणभूमि में से भाग निकला। अवश्य ही वह संग्राम में से भाग जाना कुछ ऐब न समझता होगा—यदि उसकी जगह कोई हाडा वीर होता तो वहीं मर मिटता किन्तु वह खेत छोड कर भागा और राजपूतों के शब्दों में अपनी जननी को लजाकर भाग गया। इसके भाग जाने पर वीर हाडाओं ने भगेडू शत्रुओं का पीछा भी किया किन्तु वे लोग अपना धन, दौलत, सामान, शस्त्र और अपना सर्वस्व छोडकर गिरिकंदरा में जा छिपे और तब हाडा नरेश की जीत होकर विजयभेरी बजने के साथ ही शत्रुशल्यजी के पराक्रम का जौहर दिखाने का इस तरह "श्रीगणेश" हुआ।

अध्याय २.

शत्रुशल्यजी की दानशूरता।

इस तरह लोदियों से विजय पाकर रावराजा शत्रुशल्यजी का गत अध्याय में लिखा हुआ इनके पराक्रम दिखलाने का " श्रीगणेश " अच्छा होगया

किन्तु जब यह वीरशिरोमणि अपने हाथ से शत्रु सेना को **गाजर मूली** की तरह काट डालने को निःशंक होकर घुस पडा था तब शस्त्र के आघातों से बच थोडा ही सकता था। स्वयं हाडाराव के शरीर में एक भाला, एक तलवार और एक ही तीर लगा। वीर केसरी अपने नाम को सार्थक करने वाले **हठीले हरिसिंहजी** के पांच घाव लगने से उन्हें दो एक दिन कुछ पीडित भी रहना पडा क्योंकि शत्रु की तलवार ने उनकी पंसुली तोड डाली थी। इनके साथ जितने भाई बेटे उमराव और सगे सरदार थे वे थोडे बहुत सब ही घायल हुए और स्वयं घायल हुआ, आठ प्रहार लगने से इनका स्वामिभक्त अमात्य **केशवदास बनिया**। वह निरा बनिया ही न था किन्तु संग्राम में अचल रहकर अपनी वीरता का जौहर दिखाने वाला बनिया था। ऐसे इनके चार सौ बहादुर घायल हुए और दो सौ साठ वीरों ने समर भूमि को अपने प्राण—अपना जीवन अर्पण करके **स्वर्ग का मार्ग** लिया। खांजहां लोदी रण से विमुख होकर—थोडे से जीने के लिये लज्जा छोड कर भागा अवश्य किन्तु उसके एक, दो, तीन—क्या चारों ही बेटे खेत रहे, तीनसौ योद्धा मारे गये और पांच सौ घायल होने से उसकी सब ही सेना अपने २ प्यारे प्राणों के लोभ से तितर वितर हो गई। वीर हाडाओं को खांजहां लोदी का पीछा करनेपर भी पता न लगा। वह कीलागढ के किले में सब कुछ खोकर अपना सा मुंह लेकर **जा छिपा**।

तब हाडाओं ने लोदी सेना के **शिविर लूट लिये**। हां! इस समय हाडाराव ने अपनी सेना से खूब ताकीद कर दी थी कि "जिन्हें बुरहानपुर के दुर्ग में से निकाल कर हमने अभय वचन दिया है उनके जनशून्य डेरों में से कोई एक पैसा भी न लेने पावे।" इस आज्ञा का अवश्य पालन हुआ। इस लूटमें ११७ हाथी, २२९ घोडे, ६३ तोपें और ७० जंबूर हाथ लगे। और धन दौलत का कुछ ठिकाना नहीं।

उधर खांजहां लोदी ने रण से भाग कर अवश्य निर्लज्जता दिखलाई किन्तु उस पर जो गुजरी थी उसे वही जानता था। उसने अपना गया

हुआ साहस, अपनी बिखरी हुई सेना और पुत्र शोक के कारण अपना बहका हुआ मन–बटोर कर फिर हाडाओं का सामना किया । हमले में उसने तीन दिन और तीन रात के चौबीस पहर तक गोलों की आग बरसा कर इनको कंपित कर डाला । परंतु तीसरी रात में हाडावीरों से जब उसका वस न चल सका तो भूखा प्यासा ही वहांसे फिर भाग छूटा । इस तरह कीलागढ का विजय होकर वहां भी शत्रुशल्यजी ने बादशाह की विजय पताका जा फहराई । और इनके साथ शाही सेना का जो अफसर था वही वहां का किलादार नियत किया ।

इस तरह जब वीरवर शत्रुशल्यजी के पराक्रम की पहली ही बानगी में उनको यश मिल चुका, जब उन्होंने लोदी शत्रु से विजय पाकर, बादशाह के आतंक का डंका बजा कर वहां शान्ति विराजमान करदी तब बादशाह की सेवा में उपस्थित होने के लिये रण भूमि से प्रयाण किया । वहां पहुंचने पर हाडाराव जब शाहजहां से जाकर मिले तब उसने शाबाशी देकर इनका कंधा थपथपाया । और इनके पराक्रम की बहुत प्रशंसा की । वास्तव में यह मान के भूखे थे । "मानो हि महतां धनम्" के मूर्तिमान् उदाहरण थे । स्वार्थी नहीं थे । मतलबी होते तो उस रीझ में अपना खूब मतलब बना सकते थे किन्तु इन्होंने स्वामी की रुख देखकर अपने लिये कुछ मांगने के बदले बादशाह से निवेदन किया:–

"जहां पनाह, इस संग्राम में काका हरिसिंहजी ने बडा ही पराक्रम दिखलाया । वह यदि दो लोदी पुत्रों के शिर न उडा देते तो आपकी जीत कभी न होने पाती । चार लोदी तनयों में से बडे दो उनके हाथ से काम आये । एक को मैंने मारा और एक को रण छोड दास जी गौड ने । समर भूमि में से खांजहां के निकल भागने का प्रधान हेतु काका हरी ही हैं । उनके सिवाय दूसरा नहीं । मुझे और कुछ मांगना नहीं है किन्तु उनपर कृपा कर अपनी सेवा में लीजिये । एक बार तो उनकी परीक्षा भी कर देखिये ।"

बूंदी नरेश के साथ शाही सेना के जो अच्छे २ सुभट थे उन्होंने भी हरिसिंहजी के सिंह समान पराक्रम की मुक्त कंठ से प्रशंसा की। हाडा-राव ने फिर कहा:-

"इस जय के लिये जो कुछ रीझ आप मुझे देना चाहते हों वह हरि काका को प्रदान कर दीजिये।"

बादशाह शाहजहां जब शाहजादा खुर्रम था तब बुरहानपुर की कैद में हठीले हरि ने उससे चिलमें भरवाई थीं, जरा सी देर होते ही उसके चपतें लगाईं थी और उसे पेट भर खाने को नहीं दिया था। हरिसिंहजी का प्रसंग आते ही वे सब बातें उसके हृदय को हिलाने लगीं। वास्तव में उसकी इच्छा उन्हें कुछ देने की न थी किन्तु इधर अपने लिये जान झोंक कर पराक्रम दिखाने वाले वीर केसरी शत्रुशल्यजी का निःस्वार्थ निवेदन और उधर हरिसिंहजी की बहादुरी के साथ ही उस बहादुर हाडा की ओर से उपकार। बस बादशाह का कोप बिल कुल दब गया। उसे किंचित इच्छा न होने पर भी उससे नाहीं कहते न बना। नरेश के संकोच से उसने बूंदी से हरि सिंहजी को बुला कर लाख रुपये का पट्टा दिया और गूगैर नगर दिया। एक हाथी दिया और एक हजारी मनसब प्रदान करके अपने खास सभासदों में दाखिल किया। इसके सिवाय बुरहानपुर में इनसे जो अपराध बन गया था उसे क्षमा करके बादशाह ने सच मुच अपनी उदारता का परिचय दिया।

बादशाह ने यद्यपि विजय की रीझ में हाडाराव को (सब कुछ) जो कुछ लूट में पाया दे दिया था किन्तु इन्होंने हाथी, घोडे, तोपें और आठ बडे २ डेरे, चांदी के नक्कारे, तीन लाख रुपया, तलवारें, बंदूकें, छत्र, चामर, ध्वजा आदि जो आया था सो सब भेंट कर दिया। मित्र आसफखां ने और महावतखां ने इन्हें यह समझाया था कि हरि को रीझ दिवा कर आप कोरे न रहें किन्तु इन्होंने जो विचारा सो कर लिया और फिर विवाह के लिये छुट्टी लेकर बूंदी आगये।

इस संग्राम के विषय में संसार प्रसिद्ध इतिहास लेखक लेफ्टिनेंट कर्नल टाड साहब ने यदि कुछ नहीं लिखा है तो न सही क्यों कि उनका "राजस्थान" हाडौती का वर्णन करते समय बहुत सिकुड गया है किन्तु उक्त ग्रन्थ में रावराजा शत्रुशल्यजी का, जो छत्रशालजी के नाम से प्रसिद्ध थे, चरित्र यों आरम्भ किया गया है:—

"**छत्रशाल** (जी) जो अपने पितामह राव रत्न (जी) के उत्तराधिकारी थे उन्हें शाहजहां ने केवल उनकी पैत्रिक गद्दी पर ही न बिठलाया बरन शाही राजधानी का **गवर्नर** भी बना दिया और उसके शासन में वह सदा ही इस पद पर आरूढ रहे । जब बादशाह ने अपना साम्राज्य चार हिस्सों में बांट कर अपने पुत्र दारा, औरंगजेब, शुजा और मुराद को चारों भागों के जुदे २ वाइसराय नियत कर दिये तब छत्र शाल (जी) औरङ्गजेब के साथ दक्षिण में **प्रधान सेनापति** थे ।"

शाहजहां बादशाह की हाडाराव पर कितनी कृपा थी, इन पर उसका कितना भरोसा था और इन्होंने किस तरह उस विश्वास का अच्छा बदला देकर बादशाह के लिये अपनी जान, अपनी सेना और अपनी शक्ति न्योछावर कर दी सो आगामी पृष्ठ ही पाठकों को बतला देंगे । खैर, जो घटना कवि राजा सूर्यमल्लजी के " वंश भास्कर " से लेकर ऊपर लिखी गई है वही पंडित राज **विश्वनाथ कवि** विरचित संस्कृत देववाणी के "शत्रुशल्यचरित्र" में है और यह ग्रन्थ पराक्रमी शत्रुशल्य जी के समय में ही बना हुआ है इसलिये दूसरे किसी इतिहास से मिलान करने की भी विशेष आवश्यकता नहीं है ।

राव राजा शत्रुशल्यजी के सात विवाह उनके पितामह हाडाराव रत्नजी समय में हो चुके थे । उन सातों में से कौन कौन विवाह कब २ किस किस के साथ किस २ तरह हुआ सो यहां लिख कर पोथी के पन्ने बढा देने की आवश्यकता नहीं है । किन्तु हां ! एक विवाह जिसके लिये वर और दुलहिन—दोनों घरों में मुद्दत से, धूमधाम से तैयारियां हो रहीं थीं उसके विषय में यहां थोडा बहुत लिखे विना आगे बढना भी ठीक नहीं ।

जिस समय हाडाराव बादशाह से छुट्टी लेकर बूंदी पहुँचे इन्होंने पहला काम यह किया कि **:लोदी संग्राम** में जो २ भाई, बेटे, उमराव, सरदार, अफसर **मारे गये** थे उनकी सन्तति के पालन पोषण और अधिकार जागीर आदि का यथायोग्य प्रबन्ध किया। इनके पधारने से पहले ही **विवाह का शुभ संवाद** लेकर इन्हें निमन्त्रित करने के लिये उदयपुर नरेश के भेजे हुए पाहुने बूंदी में उपस्थित थे। वरात के ठाठ का वर्णन ही क्या? "**गढगढों के महमान**" था। दुलहिन राना जी की बहन और दूलह विजयी बूंदीनरेश। वारात में भाई बेटे, उमराव गये, सगे गये, बडे २ कर्मचारी गये। हाथी, घोडे, ऊंट गये और सेना भी साथ में कम न गई। वारात में संयुक्त होने के लिये काका माधवसिंहजी भी कोटे से बुलाये गये थे और वह आये भी किन्तु राव रत्नसिंहजी का देवलोक होकर उन्हें कोटे का राज्य अलग मिला मानने से यह अब जहां तक बन सकता था अलग ही रहना पसंद करते थे। इस कारण वह बूँदी आकर यहां से ही कोटे को लौट गये।

आगे सूर्यमल्लजी लिखते हैं कि नरेश बादल के समान दीनों को, आर्थियों को धन वरसा कर उसी तरह प्रसन्न करते हुए **उदयपुर पहुंचे** जिस तरह चंद्रमा उदय होते ही रात्रि में विकास पाने वाले कमल (?) खिल उठते हैं। जिस समय यह उदयपुर अपना विवाह करने गये और भी दो राजा दूलह बन कर वहां आये हुए थे। केवल प्रेम प्रदर्शित करने के लिये, आपस में सम भाव रख कर राव राजा ने उनसे पुंछवाया कि "तोरण मारने के लिये हाथी पर बैठ कर चलना चाहिये अथवा घोडों पर?" रीति यद्यपि कुल परम्परा से हाथी पर बैठने की है किन्तु उन दोनों ने इनको नीचा दिखाने के लिये घोडे पर आरूढ होकर चलने की सलाह दी। रावराजा इस परामर्श के अनुसार एक चपल तुरङ्ग पर जो स्वामी के एक ही इशारे से हाथी के दांतों तक अपनी खुरियां लगा देने का दावा रखता था, सवार हुए। इनके अश्वारोहण का संवाद पाकर वे राजा मन ही मन इनकी निंदा होने के विचार से हंसे और आप दोनों हाथियों पर चढ कर बिदा हो गये।

ऐसे जब तीनों दूल्ह तोरण मारने के लिये राजद्वार पहुंचे तो उस समय हरिदास नामक चारण (बारहट) जो वहां उपस्थित था देख कर चुप न रह सका। उसने राव राजा को **एक ताना**–वचन बाण तान कर मारा। वीर केसरी हाडाराव साक्षात् बाण सह सकते थे–शस्त्र के घाव सह सकते थे और यहां तक कि समरभूमि में मर मिटना भी उनके लिये बडी बात न थी किंतु एक स्वल्प चारण का **वचन न सह सके**। अवश्य इन्होंने उससे कुछ नहीं कहा–उसने जब सच्चा ताना दिया था तब कहना उचित भी नहीं था किन्तु इसी समय बूंदी के अधिकारियों के नाम लिखवाकर भिजवा दिया कि–

"हमारे राज्य में तथा हमारे भाई बेटों के पास **जितने हाथी हैं** उन सब को यहां भेज दो और साथ ही दो लाख रुपया और भेजो।"

राना जगत्सिंहजी से सम्मान पाये हुए **जितने कवि** थे उन्हें एक २ आभूषण, **एक २ हाथी**, एक २ खास पोशाक और दश हजार रुपया दिया। कवि **हरिदास** का भी इन्होंने सत्कार किया किन्तु उस ताने के कारण औरों से **आधा**। आधे सत्कार में उसे हाथी के बदले घोडा दिया गया। किन्तु यह वास्तव में कवि नहीं **छछोरा** था। वह नहीं जानता था कि राजाओं को समय पर ताना देकर देश का, जाति का और अपना उपकार किस तरह करना होता है। राज्य प्रबंध की भली और बुरी बातें सुझाने के लिये उस समय ब्रिटिश शासन की तरह **समाचार पत्रों** की सृष्टि नहीं हुई थी। उस समय राजा जैसे मतवाले हाथियों को **खरी २ सुना कर** सुमार्ग पर लगाने का यदि कोई साधन था तो **कवि लोग**, परन्तु वह सचमुच कवि नहीं था। उसने दूसरे के अपमान का बदला अपमान में पाकर उस घोडे के गले में एक घडा लटका कर राजा के दिये हुए सामान सहित उसे अपने पास से भगा दिया। इस अपमान से हाडाराव को बहुत ही क्रोध आया। इन्होंने कहला दिया:–

"जिसने मेरा दुर्दशा के साथ घोडा निकाल दिया है वह यदि कभी मेरी सीमा में भी आजाय तो मैं उस नीच को काला मुंह करके, गधे पर चढा कर, बडी दुर्दशा करूंगा।" इस बात की जब रानाजी को खबर हुई तो उन्होंने

हरिदास को बहुत **फटकारा** और वह लज्जित भी हुआ। हाडाराव को समय पर क्रोध आगया। क्रोध आना मनुष्य का स्वभाव है किन्तु इनका क्रोध ऐसी मेडकी मारने के लिये नहीं था रणभूमि में हाथियों का गंडस्थल विदारण करने के लिये था, मृगया के समय सिंह का कटार से पेट फाड डालने के लिये था और शत्रुसेना में घुस कर तलवार के हाथ दिखाने के लिये था अथवा यों कहो कि मरने मारने के लिये था। बस हरिदास के लज्जित होते ही वह शान्त होगया।

इन्होंने मेडकी पर से कोप संवरण किया और तब दान में **लख लूट खर्च** किया। यह जिस समय अपनी ससुराल में जाकर जनाने महलों की बावन सीढियां चढे इन्होंने **एक २ सीढी पर**—प्रत्येक सोपान पर **एक २ हाथी** दान किया और वहां जितने मँगन या मोत–जदार स्त्री या पुरुष हाजिर थे उन सब को रुपया और **मोहरें बरसा** कर निहाल कर दिया। हाडाराव की ऐसी असीम उदारता से लज्जित होकर वे दोनों दूलह जिनमें एक वीकारनेर का और एक जैसलमेर का बतलाया जाता है, अपना सा मुंह लिये हुए वहां से चल निकले।

हाडाराव ने इस समय के दान में **सात सो हाथी**, एक हजार घोडे, दो सो चोकडे मोती, हाथों के सुनहरी कडों की पांच सो जोडियां, पांच हजार सिरोपाव और तीन लाख रुपया—**कुल छः लाख** रुपया खर्च किया। इनके सिवाय उदयपुर के आश्रित चारणों को **गांव पीछे** एक २ हाथी दिया। कहते हैं कि वहां इनकी वखेर के रुपये अब भी पाये जाते हैं। जिनके घरों में कभी बकरी रहने का भी अवसर नहीं आया था अथवा जिनकी बकरी पालने की भी शक्ति नहीं थी वे अब धन पाकर-हाथी पाकर **हाथी नशीन** होगये। इस तरह **राजा जगत् सिंहजी** की बहन रानी चन्द्रकुमरि से अपना आठवां और पाट बैठने के पश्चात् पहला विवाह करके राव राजा बूंदी पधारे। इसके बाद इनका **नवम विवाह** ईडर में हुआ और श्यामलाजी के शिवालय में इन्होंने **तीन सो घोडे** भेंट किये।

जोधपुर नरेश **गजसिंहजी** के बडे पुत्र अमरसिंह जी और छोटे यशवन्त सिंहजी थे। गजसिंहजी की एक कृपापात्र पातुर **अनारां** काम पाश में उन्हें बांध कर जो कुछ चाहती करा लेती थी। स्त्री के वशीभूत होकर जैसे राजा दशरथने कैकेयी से-"कहु केहि रंकहि करौं नरेशू। कहु केहि नृपहि निकारों देशू" कह दिया था वैसा ही वचन लेकर इसने यशवन्त सिंहजी को जोधपुर को राज्य दिला दिया था। कहते हैं कि दिला क्या दिया माता के सिखाने से यशवन्त सिंहजी ने पिता की **खवास की जूतियां** सीधी कर राज्य पाया था। गजसिंहजी ने अपना शरीर छूटने के अनंतर किसी तरह का बखेडा खडा न हो इस लिये बादशाह की सेवा में निवेदन पत्र भेज कर **अमरसिंहजी** को नागौर और यशवन्त सिंहजी को जोधपुर दिलाने की बात पक्की कर ली थी। इन्हीं **यशवन्त सिंहजी** के साथ शत्रुशल्यजी की बडी कन्या **कर्मवतीजी** का विवाह निश्चय हुआ। विवाह कब और कैसे हुआ सो लिखकर विस्तार करने की तो इस जगह आवश्यकता नहीं किन्तु आगामि कुछ अध्यायों के बाद पाठकों को विदित होगा कि यह कर्मवतीजी **कैसी बहादुर** थीं। बादशाह अकबर का.......
............जाना सुनकर जैसे एक बूंदी नरेश की किसी कन्या ने, जिसका वर्णन उस समय किया जा सकता है जब राव सुर्जन अथवा राव भोज का चरित्र लिखा जाय, जैसे स्वधर्म रक्षा के लिये प्राण विसर्जन कर दिये थे उसी तरह-उससे भी बढ कर इन्होंने लडाई के मैदान में अपने कोमल हाथों से कैसे अपने खड्ग का स्वाद शत्रुओं को चखाया था।

अध्याय ३.

कोटे का अलग राज्य।

उदयपुर से विवाह कर नववधू को लिये हुए जब प्रतापी नरेश बूंदी पहुँचे तब इन्होंने सिंह विक्रम **हरि काका** को समझाया कि:-

अब आप शीघ्र ही दिल्ली जाकर बादशाह की सेवा में उपस्थित हो। परन्तु देखना वहां जाकर कोई **उन्मत्तता न करना**। अब ऐसी बातें छोड

124988

कर नम्रता से बादशाह का सेवन करो। अब इस ढंग से चलो जिसमें गूगैर आपके पास बनी रहै और लोगों को आपके विरुद्ध चुगली खाने का अवसर न मिले। दूध और पानी मिलकर जैसे एक होजाया करते हैं वैसे सब लोगों से मिल कर चलो। याद रखना आप ने बुराहनपुर में जिस की भुजा बाणों से छेद कर पगडी से उसीकी मुश्कें कस लीं थीं और जिसे आप ने नौकर की तरह रक्खा था वही खुर्रम अब दिल्ली के राज सिंहासन का स्वामी है। यदि संग्राम में लोदियों को आप न मारते तो गूगैर क्यों कर पा सकते?"

इस प्रकार के लंबे चौडे उपदेश देकर नरदेह धारी हरि सिंह हरि को इन्होंने दिल्ली भेजा। वह गये भी परन्तु भतीजे नरेश की शिक्षा उन्होंने एक कान से सुन कर दूसरे कान से निकाल डाली। एक बार इन्होंने तलवार से शेर का शिकार किया था। जब और लोग वृक्षों पर बैठ कर बंदूक से सिंह को मारकर बहादुर कहलाते हैं तब इन्होंने सामने ललकार-कर एक ही झटके से उसके दो बटके कर डाले थे। उसे उसी तरह मार डाला था जैसे देवी के आगे बकरे या भैंसे का बलिदान किया जाय। तलवार से सिंह को मारदेना एक बहुत ही वीरता का—अप्रतिम साहस का, अद्वितीय शक्तिका कार्य था। बादशाह इनके पराक्रम से मुग्ध होकर सच मुच ही इनके पुराने दुर्गुण भूल गया। उसने इसके उपलक्ष्य में इन्हें इनाम देने की इच्छा से इनका वही खड्ग देखने के लिये मांगा। किन्तु वास्तव में यह उद्धत थे। बन में निवास कर वन का राजा जिस तरह पशुओं का पति होने पर भी अपने आतंक से अपनी प्रजा को डराते रहने के सिवाय राज-दर्बार के बर्तावों को नहीं जानता है उसी तरह यदि जानते भी हों तो अपने बल के मद में मतवाले बन कर यह सिंह घातक सिंह उन बातों को भूल गया था। उस समय इन्हें चाहिये था कि अपनी कमर से तलवार निकाल कर मयान समेत बादशाह के अर्पण कर देते किन्तु इन्होंने बिलकुल ही इसके विपरीत किया। इन्होंने तलवार मयान से बाहर निकाल कर मूंठ अपने पंजे में पहले खूब कस कर पकड ली और तब नोंक बादशाह की ओर

कर दी। इस पर बादशाह इन पर झुंझलाया सही किन्तु बहादुर शत्रु शल्यजी के संकोच से कुछ बोला नहीं।

उसने अपना आज्ञा पत्र (फर्मान) भेज कर कोटे से माधवसिंहजी को बुलाया। उन्होंने उत्तर में बादशाह की सेवा में इस तरह निवेदन पत्र लिखकर भेजा किः—

"श्रीमान् के अतुलनीय प्रसाद से मैंने दुर्लभ वैभव प्राप्त कर लिया। कोटा नगर नो परगनों समेत पाकर मैं राजा भी बना। अब सेवक ने कोटे में नो महल बनवाये हैं। इनमें सब सुखकी, सौभाग्य की और शक्ति की सामग्री इकट्ठी करके —यहां की व्यवस्था ठीक २ करके तब श्रीमान् की सेवा में उपस्थित होकर कदम बोसी (चरणचुम्बन) करूंगा।"

मुन्शी देवीप्रसादजी के "जहांगीरनामे" में जहां २ नरेशों के, नव्वाबोंके और बडे २ उमरावों के बादशाह की सेवा में उपस्थित होने का अवसर आया है **चौखट चूमना** लिखाहै। वास्तव में ये शब्द अत्यंत अधीनता प्रदर्शन करने के लिये हैं किन्तु यह विदित नहीं कि उस समय वर्ताव किस प्रकार का था।

खैर! **माधव सिंह**जी अपने राजकीय कार्य से अवकाश पाकर जिस समय बादशाह शाहजहां की सेवा में उपस्थित हुए तो उसने उनकी पुरानी सेवाओं का स्मरण करके **अपनी छाती से** लगा लिया। उनको खास दीवान के समीप आसन दिया और इस प्रकार कोटानरेश का सत्कार किया।

इधर हाडाराव रत्नसिंहजी का जब से स्वर्गवास हुआ उनकी **वीरप्रसू माता** केवल दूध पीकर कठिन तपस्या कर रहीं थीं। अपने व्रत का, अपने तप की और अपने शरीर का उन्होंने प्यारे—पराक्रमी पुत्र के वियोग में जैसे तैसे अथवा दृढता के साथ चार वर्ष तक निर्वाह किया किन्तु अब **तेरासी वर्ष** की आयु हो चुकी थी। बस इस कारण उन्होंने विना किसी प्रकार की बीमारी के पहले से दिन, तिथि, महीना, साल नियत कर और उसी दिन इस तरह शरीर छोड दिया जिस तरह मनुष्य पुराने वस्त्र छोड कर नये धारण कर लेता है। यह घटना संवत् १६९२ की है। उस समय बालनोतजी साहबा के प्यारे

प्रपौत्र शत्रु शल्यजी यहां ही उपस्थित थे। इन्होंने प्रपितामही (परदादी) की अंत्येष्टि क्रिया अपने हाथों से की और ब्राह्मण, परिजन, पुरजनों को भोजन करा कर यश लाभ किया। यह उसी समय की बात है जब इधर बूंदी के विशाद प्रासाद में उसका शिरोभूषण **छत्र महल** और उधर पाटन में **श्री केशवरायजी का मंदिर** बनना आरंभ हो चुका था।

अस्तु प्रतापी शत्रुशल्यजी दक्षिण में **खां जहां लोदी** को जीत कर अपने आतंक से उस प्रान्त में शान्ति अवश्य स्थापित कर आये थे और वह कुछ काल तक रही भी किन्तु वहां पर "बुढिया ने पीठ फेरी और चरखे की होगई ढेरी" वाली मसल होगई। इनके विना मैदान सूना पाकर फिर उसने अपना साहस बटोरा, सेना बटोरी और तब भांति २ के उत्पात करना आरम्भ कर दिया। वह जोर पकड कर कीलागढ के किले में जा घुसा। और पुत्रबध का वैर लेनेके लिये उसने लोगों को सताने में **अत्याचार की इति श्री** करदी।

प्रजासे जब उसके अन्याय की असह्य वेदना सहन न हो सकी तब वह पुकारने के लिये दिल्ली को दौडी गई। उसने बादशाह से यों पुकार मचाई कि:—

"**हाडाओंने** जब से दुर्दमनीय लोदीतनयों का विध्वंस किया खांजहां चुप्पी मार कर मुंह छिपाये हुए था किन्तु अब उसने युद्ध क्षेत्र शाही सेना से— शाही सेनापति से शून्य पाकर फिर जोर पकडा है। अपना कार्य सुधारने के लिये श्रीमान् **उन्हीं को भेज दें**। यह रणभूमि में प्रवेश कर मरने से कभी नहीं डरते हैं, शत्रु का संहार करने में कभी प्रमाद नहीं करते हैं।"

इसमें संदेह नहीं कि हाडाओं के सूर्य राव राजा शत्रुशल्यजी यदि वह उपस्थित होते तो फिर भी वही भेजे जाते किन्तु बादशाह ने इस वार सूर्य के बदले चन्द्रमा से काम लिया। उसने माधव सिंहजी को बुलाकर उनका पहले कंधा फटकारा और तब उनकी प्रशंसा करने के अनन्तर रीझ इनाम देकर अपनी सेना समेत खांजहां का दमन करने के लिये भेज दिया। हाडा-राव रत्न सिंहजी के समय में बादशाह के बुलाने पर हठीले हरिसिंहजी जब

नहीं भेजे गये थे तब शाहजहां ने उनसे रूठ कर उसीके दिये हुए **सात परगने** छीन लिये थे। ये ही परगने इस वार **माधवसिंहजी** को देदिये गये। इन्हें हाथी दिया, घोडा दिया और दश हजार सेना इनके साथ करदी। दोनों सेना यें लडने के लिये भिड गईं। थोडी देर तक दोनों ओर से गोले चलने बाद जब माधव सिंहजी को शत्रु का हाथ ढीला पडता दिखलाई दिया तव घोडे की बाग कडी करके यह निःशंक **लोदी सेना में** उसके व्यूह का भेदन कर **प्रवेश कर गये**। वसन्त ऋतु में जैसे गुलाब की कलियां चटकती हैं वैसे वीर सैनिकों के शिर चटक २ कर असिधारा के प्रहार से भूमि पर गिरने लगे और ऐसे बहादुर हाडा ने दुश्मन की तोपें, बंदूकें, तीर, भाले और नाना प्रकार के शस्त्रों के आघात की—उन प्रहारों से शरीर छिन्न भिन्न हो जाने की रंचक परवाह न कर खांजहां का **शिर काट लिया**। वह शिर समर भूमि में शृगालों के भोजन के लिये नहीं छोडा गया किन्तु बादशाह की नजर के लिये भेज कर कोटा नरेश माधव सिंहजी ने शाहजहां से तीन हजारी मनसब पाया, हाथी पाया, घोडा पाया, आभूषण पाया और बादशाह ने हरिसिंह जी को दिया हुआ गूगेर का परगना भी जब इन्हें देदिया तब वह लज्जित होकर बूंदी नरेश के पास आ उपस्थित होने के बदले अपनी जागीर के कस्बे कापरेन में आकर निवास करने लगे। उधर माधव सिंहजी दिल्ली में बहुत काल तक निवास कर शाहजहां को दिन २ अधिक प्रसन्न करने के अनन्तर—छुट्टी लेकर कोटे चले आये, और वहां जाकर उन्होंने अपनी कन्या आमेर नरेश जयसिंहजी से विवाह दी।

इस जगह कविराजा **सूर्यमल्लजी ने** अपने कुलका इतिहास विस्तार से लिखाहै। उनके पूर्व पुरुष बूंदी में किस सत्कार से कब किस नरेश के आग्रह से आये और उन के वंशधरों में किस २ ने क्या २ किया—सो लिखा है। उन बातों से जब इस चरित्र का विशेष संबंध नहीं तब यहां लिखने का भी प्रयोजन नहीं किन्तु इस भाग को पढने से विदित होता है कि इन चारण सरदारों में बूंदी आकर प्रथम सम्मान पाने वाले ईश्वर दानजी के कामदार रामधन की कन्या अपने गांव से चल कर जब ससुराल—हींडोली में

पहुंची तब उस के पैर कीचड में सने हुए थे । उसने सास से पैर धोने के लिये जल माँगा । जल देने के बदले सास ने ताना दिया कि–"धनवान् की बेटी है । डाटूंदा से हींडोली तक तालाब बनवा क्यों नहीं लेती । वहां से नाव पर चढ कर आना जिसमें पैर ही कीचड से सनने का अवसर न आवे।" बस इस ताने की बदौलत **हींडोली** में **रामसागर तालाब** बना । इस जगह सूर्य मल्लजी यदि इस तालाब के बनने का संवत् भी लिख देते तो अच्छा होता ।

हां ! उन्होंने कोटा नरेश माधव सिंहजी की माता के देहान्त होनेका संवत् १७२७ अवश्य लिखा है ।

अध्याय ४.

बुंदेलों से विजय ।

इस जगह कवि राजा सूर्यमल्लजी ने अंग्रेजों के दक्षिण में जमाव का भी प्रसंगोपात्त कुछ वर्णन किया है । उन्होंने "वंशभास्कर" नाम ग्रंथ में बूंदी राज्य का–वीर पुंगव हाडा नरेशों का इतिहास लिखा है किन्तु इस प्रकार का उल्लेख करते हुए इस बात पर अवश्य ध्यान रक्खा है कि देश भर के इतिहास की मुख्य २ घटनायें न छूट जायं । इस उद्देश्य से वह अपनी पोथी में समय २ पर ऐसी बातें भी लिखते गये हैं । उन्होंने इस विषय में जो कुछ लिखा है उसका सारांश यही है कि अंगरेजों ने संवत् १६९५ या १६९६ के लगभग **दक्षिण** देश में विद्या नगर अथवा विजय नगर के राजा रंगराज से आज्ञा लेकर उस प्रान्त के कितने ही मुख्य स्थानों में कोठियां खोलीं, रंगराजपुर नाम का नगर वसाया, **मद्रास** को आवाद कर वहां फोर्ट सेंट ज्यार्ज नामक किला बनवाया । रंगराज का अमात्य इन्होंने मिला लिया था इस कारण उसने राजा को धोका देकर जो चाहा करवा दिया । इस प्रकार दक्षिण में व्यापार बढाकर इन्होंने शाहजहां से **बंगाल** प्रदेश में कोठियां बनाने की आज्ञा प्राप्त की और हुगली नदी के किनारे कोठियां बना भी डालीं । ऐसे व्यापार के नाम से इन्होंने अपने राज्य का धीरे २ विस्तार किया ।

वीर केसरी हाडाराव शत्रुशल्यजी के चार कन्यायें थीं । इनमें से पहली बाई कर्मवतीजी का जोधपुर नरेश यशवन्त सिंहजी से विवाह होना पहले किसी अध्याय में लिखा जा चुका है, दूसरी दुहिता कमन कुँवरिजी को इन्होंने राजा जगत सिंहजी के पुत्र राजसिंहजी को, जिन्होंने महाराना प्रतापी प्रताप सिंहजी के अनंतर बादशाह औरंगजेब से लड कर बडी २ वीरतायें दिखाई थीं, विवाह दी । तीसरी का विवाह होने से पहले ही देहान्त होगया था और चौथी पुत्री रामकुँवरिजी का विवाह इन्होंने अनूप सिंहजी वघेला के साथ किया ।

प्रिय पाठक गण ! गत अध्याय में पढ चुके हैं कि वीर पुंगव पिता की वीरतनया कर्मवतीजी के पति यशवन्त सिंहजी के ज्येष्ठ बधु राठोड अमर सिंहजी को जोधपुर नरेश गजसिंहजी ने उनकी प्रियतमा खवास अनारा के बहकाने से अपने युवराज पद से भ्रष्ट कर जोधपुर का राज्य यशवन्त सिंहजी को और नागोर अमर सिंहजी को देदेने की व्यवस्था की थी। यदि उस जगह उदयपुर नरेश लक्ष्मण सिंहजी के पुत्र चूंडाजी के समान कोई पितृसेवी होता तो अवश्य पिता की आज्ञा शिर पर चढाता किन्तु अमर सिंहजी इस व्यवस्था से प्रसन्न न होकर यह दिल्ली गये । गये क्या मीर बख्शी सलामत खां ने बादशाह शाहजहां से चुगली खाकर इन्हें वहां बुलवाया । बादशाह के बुलाने पर भी हाजिर न होने का इनसे दंड अवश्य मांगा गया । रुपया वसूल करने के लिये इनके पास धौंस भी भेजी गई किन्तु जुर्माने के नाम पर इन्होंने एक फूटी कोडी न दी । पैसा देना एक ओर रहा किन्तु इन्होंने सलामतखां की छाती में कटार घूंस कर उसकी आंतें निकाल डालीं । मीर बख्शी को इन्होंने बिना अपराध—केवल चुगली खाने ही से न मारा बरन मार्ग में मिलने पर जब उसने इनसे कहा कि:—"जो कुछ जुर्माना तुम पर हुआ है उसे चुप चाप जमा करदो । नाहक मरने के लिये गंवारपन न करो ।" तब "रणबंका राठोड" उसकी गाली को सहन न कर सका । वीर क्षत्रिय खड्गकी धारा को पुष्पों की माला समझकर हृदय में धारण कर सकता है किन्तु किसी के वचन वाणों को सहन करने की उसमें ताब कहां?

बस उसी जगह सलामत की सलामती को लातों से कुचल कर अमर सिंहजी मरने मारने के लिये नंगी कटारी लिये हुए—शत्रु के रक्त में सनी हुई कटारी लेकर बादशाह के दरबार में पहुंचे। उस सभा में अवश्य ही कितने ही राजा और नव्वाब बैठे थे किन्तु जब उनके पास शस्त्र के नाम पर एक कांटा तक न था तब वहां छेडे हुए सिंह की तरह "रणबंका राठोड" को देखकर यदि तहलका मचगया हो तो आश्चर्य क्या? किसीका साहस इन्हें पकडने का न हुआ। किसकी मा ने "सेर सोंठ खाई" थी जो इन्हें पकडने की हिम्मत करता। सब ही सभासदों ने—क्या हिन्दू और क्या मुसलमान अमीरों ने इधर उधर **छिपकर** अपनी जान बचाई। बादशाह भी मौत के डर से भाग कर **जनाने में जा छिपा**। ऊपर जाकर अवश्य ही उसने ललकारा:—

"इतने बडे २ बहादुरों के होते हुए यह न पकडा जाता है और न मारा जाता है। बडे अफसोस की बात है।"

इस पर राजाओं ने कहा:—"जब हमारे पास सौगंद खाने को भी हथियार नहीं, जब हमारे पास न तो सिंहों के से नख हैं और न शूकर की सी डाढें फिर क्या हम ऐसे वीर को बातों की लडाई से जीत सकते हैं?" सुन कर शाहजहां ने ऊपर से दो **तलवारें** डालीं। उन दो शस्त्रों में से एक किसने ली जिसका तो नाम नहीं लिखा और दूसरी इन्हीं वीर केसरी अमर सिंहजी के कुलांगार **साले अर्जुन गौड** ने ली। ऐसे दोनों तलवारें सूंत कर दो जने अकेले वीरको मारने के लिये लपके। ये आये और अर्जुन सिंहजी ने जब इन्हें क्षेम कुशल से डेरे पर पहुंचाने का **वचन दिया** तब इन्होंने लडने का इरादा भी छोड दिया किन्तु जब यह इस तरह खिडकी में होकर बाहर निकलने लगे तब नीच साले ने पीछे में आकर एक ही तलवार से इनकी **टांगें काट कर** शरीर से अलग कर दी। यहां यह धोके से मारे गये। मारे क्या गये इनके कायर साले ने—"क्या आपको मार कर अपनी बहन को विधवा करदूंगा?" ऐसा अभय वचन देकर इनकी रानी और अपनी बहन को विधवा करके आजीवन **कुल पर कलंक** लगाया। यह मरे सही परन्तु मरते २ इन्होंने कटारी इस तरह फैंक कर मारी कि अर्जुन सिंह का कान

कट गया। इसके आगे क्या हुआ सो लिखने की आवश्यकता नहीं। इनका किस्सा राजपूतानें में गाया जाता है और सो भी ऐसे ओज बर्द्धक शब्दों में कि जिन्हें सुनते ही कायर के शरीर की भी नसें फडक उठतीं हैं। हां! सूर्यमल्लजी ने इस प्रसंग में एक बात और यहां उल्लेख करने योग्य लिखी है। वह लिखते हैं कि शाहजहां की शाहजादी और किसीके मत में वजीर-जादी इन पर—इनकी वीरता पर मुग्ध होकर इन्हें अपना पति मान अपने ह्रदय में धारण कर चुकीं थीं। उन्हें इस घटनासे बहुत घबडाहट हुई। अस्तु इनकी रानियां इनपर सती हुईं और ऐसे इनकी जीवन लीला समाप्त होकर आर्य शास्त्र के अनुसार क्षत्रिय जाति के विश्वास के अनुसार इन्होंने अपनी सहगामिनी सहधर्मिणियों समेत वीरगति पा कर स्वर्ग में निवास किया और ऐसे अमर सिंहजी सचमुच मरे नहीं किन्तु अपना नाम **अमर कर गये।**

रावराजा शत्रुशल्यजी के **भावसिंहजी** भीम सिंहजी, भारत सिंहजी, भग-वन्त सिंहजी, भूपति सिंहजी, भूपाल सिंहजी और ईश्वरी सिंहजी—यों **सात महा-राज कुमार** थे। इनमें ज्येष्ठ और श्रेष्ठ भावसिंहजी का जन्म संवत् १६८० में हुआ था। इनकी ज्येष्ठा कुमरानी अर्थात् मेवाड के महाराना जगत् सिंहजी की कन्या धन कुंवरिजी से युवराज भावसिंहजी के संवत् १७०० के अन्त में एक पुत्र का जन्म भी हुआ था किन्तु केवल दो महीने जीकर राज-पौत्र पृथ्वी सिंहजी ने शरीर छोड दिया। महाराज कुमार भावसिंहजी के उस समय तक दो विवाह और हो चुके थे। एक प्रतापगढ नरेश हरि सिंहजी की दुहिता भावलदेवी जी से और दूसरा राजगढ के अधीश बडगूजर क्षत्रिय फतेह मल्लजी की बाई हरि कुँवरिजी के साथ।

यहां कविराज सूर्य मल्लजी ने कोई कारण स्पष्ट नहीं किया किन्तु उनके लेख का सारांश यह है कि बादशाह शाहजहां की सहायता करके टोडा वाले भीमसिंहजी के पुत्र रायसिंहजी और बुंदेला नरेश उसके नाक के बाल बन गये थे। उसने जब इन्हें राज्य देदेकर राजा बना दिया तो बुंदेला नरेश को महाराज कुमार भावसिंहजी के लिये अपनी कन्या विवाह

देने का हौंसिला हुआ । किसी कुयोग से बुंदेला वंश अपनी प्रशंसा नष्ट कर चुका था । बुंदेला वर सिंहजी ने इस सगाई से अपने को उच्च कोटि के क्षत्रिय वंशों में संयुक्त करने की इच्छा करके हाडाराव शत्रुशल्यजी के पास अपना भाई और अपना सचिव भेजा । मेहमानों के आतिथ्य सत्कार में किसी प्रकार की न्यूनता न रक्खी गई किन्तु पिता ने पाटवीपुत्र से इस विषयका एकान्त में बुलाकर परामर्श किया तो महाराज कुमार भाव-सिंहजी ने स्पष्ट ही नाहीं करदी । रावराजा ने बुन्देलखंडी पाहुनों को बुला कर समझाया किः—

"लडके के तीन विवाह पहले होचुके । अब चौथी बार शादी करने की उसकी इच्छा नहीं है ।"

इस पर मेहमानों ने हाडाराव को लालच देने में भी कमी न रक्खी। उन्होंने इनसे निवेदन किया कि— "हम आपको पचास हाथी देंगे । एक करोड दाम अर्थात् ढाई लाख रुपया देंगे । सौ हीरे देंगे और दो परगने देंगे । सेवा करने के लिये दो सो सेवक देंगे और सारा ही दहेज दूना देंगे ।" किन्तु हाडावीर ऐसे लोभ में आने वाले न थे । यदि उन्हें लालच ही होता तो और २ राजाओं की तरह बादशाह को लडकी देकर न मालूम कितने गुना अधिक राज्य पा लेते । बस इस लिये झटही हठीले हरिसिंह ने उन्हें फटकार कर कह दिया—कडक उत्तर दिया कि:—

"जैसा तुम्हारा संकर कुल है हमें लडकी देकर हमारा भी करना चाहते हो । यह कभी त्रिकाल में भी न हो सकेगा ।"

कुल की संकरता का कलंक लगते ही बुन्देला सरदार अपने कोप को संभाल न सके । बस इसी पर हाडाओं और बुंदेलों के परस्पर लडाई ठन गई । जब इस बात की खबर वरसिंहजी के कानों तक पहुंची तो उन्होंने क्रोध के आवेश में बादशाहके समीप जाकर उसके खूब कान भरे । बादशाह ने यद्यपि इनसे स्पष्ट कह दिया किः—

"हमारे लिये दोनों समान हैं । हम बीच में नहीं बोलेंगे और न शत्रुशल्य (जी) से इस विषय में हम उलाहना देना चाहते हैं ।"

वरसिंहजी ने बादशाह के इस वाक्य को उसकी आज्ञा मानकर बूंदी पर शस्त्र उठाया। वह अपनी सेना सजाकर झटपट बूंदी पहुंचे। इधर लडने में देरी ही क्या थी ? हाडाराव ने जब से राज्य पाया सदा ही मरने को तैयार रहते थे। दोनों ओर की वीर वाहिनी भिड गईं। तलवारों की खचाखच के साथ सूर्य की किरणों का प्रकाश पडने से जो समय २ पर बिजली सी चमकजाती थी वह कायरों के हृदय को हिला डालती थी। तलवारों के वार से, खांडे की धार से और बन्दूकों की मार से दोनों ओर के सुभटों का संहार होकर लाश पर लाश पडने लगी। संग्राम दो दिन हुआ अथवा दो पहर सो "वंशभास्कर" के कर्ता को भी निश्चय नहीं है किन्तु हुआ बडा ही भयानक। बुंदेला सेना के दो हजार सुभटों में से पांच सो खेत रहे। बूंदी की सेना के भी सो सैनिक काम आये। इस संग्राम में बूंदी नरेश ने अपने तीन पराक्रमी सामंतों को चाहे खोही दिया किन्तु विजय विभूति इनके बल विक्रम पर मुग्ध होकर सदा इनके सामने हाथ बांधे तैयार खडी रहती थी। बस गोली लगते ही वरसिंह जी बुंदेला हाथी पर से गिर गये और तब स्वामी हीन सेना अपने प्यारे प्राणों के लिये पीठ दिखाकर रजपूती को लजाने के लिये भाग निकली। भागते ही हाडाओं की सेना में विजय के नक्कारों के साथ—"हाडाराव की जय !" के जय घोष से आकाश गूंज उठा। यह "वंश भास्कर" के लेख का सारांश है। इसकी सत्यता का ठीक निश्चय तब होसकता है जब इसकी बुंदेलों के इतिहास में गवाही हो।

यह उस समय की घटना है जब आमेर की गद्दी को जय सिंहजी प्रथम सुशोभित कर रहे थे। वह कविता के बडे प्रेमी थे। गुणवानों का बडा आदर करते थे। हिन्दी के महाकवि बिहारी लाल जी माथुर उसी समय में हुए थे। संसार प्रसिद्ध बिहारी की सतसई बनाकर उन्होंने एक २ दोहे पर एक २ अशरफी—यों सात सो मोहरें इन्हींसे इनाम में पाई थी। किन्तु इससे यह कोई न समझले कि उस समय के नरेशों में केवल जयसिंहजी को छोड कर दूसरा कोई उदार नहीं था, विद्वानों का सत्कार करनेवाला नहीं था और कविता का प्रेमी नहीं था। किसी(?)कवि ने "भाषाभूषण" ग्रन्थ की रचना कर उस समय के जोधपुर नरेश यशवन्त सिंहजी से गांव पाये, हाथी

पाये और रुपया पाकर प्रशंसा पाई। और रावराजा शत्रुशल्यजी ने विश्वनाथ कवि को जिन्होंने "शत्रुशल्यचरित्र" बना कर संस्कृत साहित्य का एक देदीप्यमान आभूषण तैयार किया था एक लाख रुपया पारितोषिक पाया। हाडाराव ने यों केवल एक ही कवि का सम्मान करने में उक्त दोनों नरेशों से आगे कदम न बढाया किन्तु ब्राह्मणों को, विद्वानों को, कवियों को, दीन दुखियाओं को अपने दान से निहाल कर उन्हें दरिद्री से धनाढ्य बनाने के लिये इनके यहां सदा ही थैलियां खुली रहतीं थीं। जब कहीं जाना होता छकडों में भर २ कर रुपया साथ लिया जाता था। ऐसे इन्होंने ब्राह्मणों को १७ गांव, चारणों को १९ गांव, भाटों को २१ गांव और लाखों रुपया लुटा दिया। चारण देवकवि को एक करोड़ दाम (ढाई लाख रुपया) दिया, अपने हाथ से अफीम के (पोस्तके) डोडों का अर्क निकाल कर पिलाया उसकी सेवा करना स्वीकार किया और गांव, हाथी और घोडे दिये सो अलग। कवि ने भी जो पाया सो याचकों को बांट दिया।

अध्याय ९.

स्वधर्म रक्षा।

खाजहां लोदी से कोटे के राव माधवसिंहजी का विजय होकर बादशाह से तीन हजारी मनसब पाना पाठकों ने गत अध्यायों से जान लिया किन्तु उसके साथी इतने पर भी शांत न हुए। उन्होंने फिर उपद्रव मचा कर जब बादशाही राज्य पर आक्रमण करना—मार काट कर शाही भूमि छीन लेना आरम्भ किया तब बादशाह शाहजहां ने स्वयं चढाई की। अनेक राजा और नव्वाब साथ लिये और आमेर नरेश जय सिंहजी, जोधपुर के अधीश यशवन्त सिंहजी, कोटा के अधिपति माधव सिंहजी साथ लिये और उस समय तक वरसिंहजी बुंदेला विद्यमान थे उन्हें भी साथ लिया। बूंदी-पति हाडाराव शत्रुशल्यजी बुला कर साथ लिये गये और यों शाही सेना सज धज कर फिर दक्षिण देश जीतने के लिये विदा हुई। इस तरह बादशाह की सेना ने कई बार दक्षिण का विजय किया सही किन्तु सच पूंछो तो

अकबर से लेकर औरंगजेब के राज्य तक किसी बादशाह ने दक्षिणी उपद्रव के आगे चैन नहीं पाया ।

बादशाह का वहां पहुंच जाना सुनकर—इसकी बलवती सेना से डरकर कोई भी खेत में खडा न रह सका । शाहजहां ने तब शत्रुओं के थाने उठा कर आसेर अहमदनगर, खानदेश और सह्याद्रि पर्वत तक **अपना अधिकार** जमा लिया । फिर उसने दौलताबाद के दुर्ग का घेरा दिया । यह वही दौलताबाद था जिसमें विपत्ति के समय शाहजादा खुर्रम ने अपनी बेगम बालकों को रक्खा था । बादशाह का यह प्यारा किला था । इस पर वह बहुत भरोसा रखता था । अब शत्रुओं के हाथ पडजाने से शाहजहां को अपने प्यारे पर ही गोले वरसाने पडे । हाडाराव **शत्रुशल्यजी** का अधिक भरोसा करके इन्हींको **आगे बढने** की आज्ञा दी गई । राव रत्नसिंहजी ने बुरहानपुर के दुर्ग से जीते जागते निकाल कर जिन लोगों को अभय वचन दिया था वेही इस समय अधिकांश किले के अधिकारी थे । शत्रुशल्यजी ने उनके प्राण **पितामह के प्रण** का स्मरण करके बचाये और बादशाह ने जब आज्ञा देदी थी कि मेरे प्यारे किले का अधिक अंग भंग न होने पावें तब उसे भी बचाया । और दौलताबाद का विजय यों जब केवल इन्हींके कौसल से, इन्हींके पराक्रम से और **इन्हींके कारण** हुआ तो बादशाह ने इनका वही हाथी शिवप्रसाद भेट किया—पारितोषक में दिया जो एक समय हाडाराव रत्नसिंह जी ने बादशाह जहांगीर की नजर किया था । शत्रुओं के मद को धूल में मिला देने वाला मदमत्त शिवप्रसाद ही न दिया किन्तु खास पोशाक, खासा जेवर और अन्य भी कितने ही पदार्थ दिये । जब दक्षिण में दौलताबाद का विजय होकर **फिर शांति** विराजने लगी तब बादशाह आगरे चले गये और राजा लोग छुट्टी के २ कर अपने २ यहां ।

इस घटना के अनंतर जब काबुल का उपद्रव स्वयं अपने गये बिना बादशाह को दबता न दिखलाई दिया तब उधर की चढाई करने की शाहजहां ने तैयारी की । काबुल युद्ध साधारण लडाई न थी । अकबर से लेकर औरंगजेब तक की चार पीढियों ने जैसे कभी दक्षिण की ओर से चैन न पाया

वैसे ही काबुलियों ने इन्हें कल से न बैठने दिया। ऐसे ही अनुभव से बादशाह शाहजहां ने वहां के दुर्दमनीय यवनों का दमन करने के लिये चढाई की और जब देश भर के आश्रित राजाओं तथा नवाबों को इकट्ठा किया गया तो कहना चाहिये कि बडे जोर शोर से प्रयाण किया। बादशाह की बुलाहट पाकर अवश्य ही सब दौडे आये किन्तु बीकानेर नरेश जब बहुत बीमार होकर अपनी मृत्यु के दिन गिन रहे थे तब सूरसिंहजी न आये और उन्होंने अपने बदले अपने पाटवी पुत्र करणसिंहजी को भेज दिया। जब हाडाराव बादशाह की सेवा में उपस्थित हुए तो शाहजहां ने बडे क्रोध के साथ उलहना दिया। उसने कहा कि:—

"तुमने हमारा मित्र वरसिंह मार डाला। शुद्धमति और बुद्धिमान् हो कर ऐसे शत्रुके समान आचरण करने का कारण?"

इन्होंने विनय पूर्वक उत्तर दिया—"वह हमारे घर लडने के लिये आया था हम उसके यहां चढकर नहीं गये। उसके भाई ने हमसे बहुत २ कटु वचन कहे। हमने फिर भी उन्हें टाला दिया किन्तु हठीले हरि काका से वह उलझ पडा। और जब वह मारागया तो वरसिंह ने आकर हमारा देश लूटना आरम्भ कर दिया।"

खैर इनके उचित उत्तर सुनकर बादशाहने अपना कोप संवरण किया और यों बखेडा चाहे न उठने पाया किन्तु अटक नदी के निकट पहुंचते २ फिर एक नया झगडा खडा हो गया। बात यह हुई कि धर्म शास्त्र के मत से अटक नदी के पार जाने में हिन्दू धर्म की—क्षत्रिय धर्म की हानि समझ कर प्रायः सब ही हिन्दूनरेश आना कानी करते थे। जाने की इच्छा चाहे किसीकी न हो किन्तु बिल्ली की पूंछ पकडने के लिये, उसकी टांगे पकडने को सबही चूहे तैयार होने पर भी उसके गलेमें घण्टी बांधने का साहस किसी को न था। एक साम्राज्य के स्वामी प्रतापी बादशाह से यह कह कर अटक पार कदम न डालना कि—"हम धर्म रक्षा के लिये आगे पैंड न रक्खेंगे" दाल भात का खाना नहीं था। बस इसलिये सबने ही मिल कर शत्रुशल्यजी को रावसुरजनजी के प्रण का स्मरण दिला

कर उकसाया। इसमें कछवाहे, राठोड, यादव, गौड, बघेले और बडगूजर सबही नरेश संयुक्त हुए और तब बादशाह से सबका अभिप्राय नम्रता के साथ इस तरह निवेदन किया गया कि:—

"अटक नदी का उल्लंघन करने से हमारे धर्म की हानि होती है। स्वामी के कार्यके लिये मरण पर्यन्त हम सिन्धु नदी के तट पर डटे रहने को सन्नद्ध हैं। हुजूर जब चाहैं तब हमारी परीक्षा करके देख लें। यदि हमारा प्रण मिथ्या निकलें तो भले ही यथेच्छ दंड दीजिये।"

सुनकर बादशाह को बहुत ही क्रोध चढ आया। उसने केवल अपनी शक्ति के भरोसे हिंदू नरेशों की जग जाहिर फूट के कारण—इनकी रत्तीक परवाह न कर—एक बृहत् समुदाय से—बडे राजा महाराजाओं से फटकार कर कह दिया कि:—

"जो हमारा साथ न देगा उसकी जान माल की—उसके राज पाट की खैर न समझो।" अवश्य ही शाहजहां के ऐसे कोप को कोटा नरेश माधवसिंहजी न सहन कर सके। वह बादशाह के साथ काबुल गये और अपने प्रपितामह की प्रतिज्ञा पर पानी फेर कर—प्यारे धर्म को न मान कर केवल अपना राज्य बढाने की लालसा में गये। किन्तु हाडाराव शत्रुशल्यजी ने शाहजहां के कोप की तिनके के समान परवाह न की। वह अच्छी तरह जानते थे कि कुल धर्म पर तिलांजुलि देकर पूर्व पुरुषों के प्रण को नष्ट भ्रष्ट करके यदि हमने अपना राज्य बचा लिया—मानलो कि वहां विजय पाकर बढा भी लिया तो किस काम का? ऐसे धर्मका नाश करके जीने से तो मरना ही अच्छा है क्यों कि "हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्"—यह भगवद्वाक्य ही इनका अटल सिद्धांत था।

इस तरह एक माधवसिंहजी को छोडकर अटक पार कोई न गया और न किसी ने वहां से लौट पडने के लिये अपनी २ सेना की, अपने २ घर की ओर बाग मोडी। एक युवराज करणसिंहजी अपने पिता बीकानेर नरेश सूरसिंहजी की बीमारी अधिक सुनकर सब लोगों के समझाने से—सब लोगों के हानिमें संयुक्त होने का वचन देने से गये और उनके जाने का फल भी

उनके लिये अच्छा ही समझो क्योंकि उनके बीकानेर पहुंचते २ ही **पिता का परलोक** हो गया।

खैर बादशाह केवल शाही सेना और अपने शूर सामन्तों सहित माधवसिंह जी को लेकर काबुल पहुंचा और इनके साथ बूंदी की सेना में से फटकर **हींडोली** के जागीरदार यशवन्तसिंहजी के पुत्र **श्यामसिंहजी** और काका हरिसिंहजी के तीसरे पुत्र **अभयसिंह** जी भी चुपचाप कोटेवालों में जा मिले। इसका नतीजा यह हुआ कि ऐसे धर्मनाशकोंका अपने भाई भतीजे होनेपर भी समय पाकर **बध कर दिया** गया।

बादशाह ने वहां पहुंचकर कलावीस के दुर्जेय दुर्ग का विजय अवश्य किया किन्तु इस संग्राम में अपनी प्यासी तलवार को शत्रु का रक्त पिला २ कर **राव माधवसिंह** ने बहुत ही **कीर्ति सम्पादन** की। बादशाह इधर हाडाराव शत्रुशल्यजी के हठ से उदास हो ही गया था क्यों कि वह अच्छी तरह जानता था कि यदि यह इतना जोर न दिखाते तो किसी राजा में इतना **पानी नहीं** था जो मेरे वचन को उलंघन कर सकता। उधर माधव सिंहजी की बहादुरी से शाहजहां प्रसन्न हुआ और इस कारण उसने **मऊ-बारां** चौदह सो गावों समेत संवत् १७०३ में बूंदीनरेश से छीनकर **कोटा-वालों को** देदिये। वहांका विजय करने के अनंतर बादशाह चार वर्ष तक वहां शांति स्थापित करने के लिये रहा और तब संवत् १७०७ में हिन्दूस्थान को लौट आया।

शाहजहां कलावीस के किले को सर करके लौटा सही किन्तु उसकी आज्ञा का पालन न करने पर उसे जो राजाओं पर **क्षोभ** हुआ था उसे **भूला नहीं**। सिंधुनद के तट पर सब ही नरेश अपनी २ सेना की छावनियां डालकर चार वर्ष तक निरन्तर उसकी राह देखते हुए पडे रहे। नदी कूल पर परस्पर भेंट होते समय उसने इनसे कुछ न कहा किन्तु दिल्ली पहुंचते ही सचमुच **आग बबूला** होगया। सब ही पर क्रुद्ध होकर उसने **जुर्माना** किया। सबही के थोडे और बहुत परगने खालसे किये। किन्तु किस पर कितना जुर्माना किया सो उस समय के इतिहास में लिखा नहीं। उसने

औरों पर तो जो कोप किया सो किया परन्तु आमेर और जोधपुर नरेश पर सब से अधिक क्योंकि उनके पूर्व पुरुष पहले अटक नदी को पार करचुके थे।

खैर अब राव राजा **शत्रुशल्यजी** की पारी आई। इनपर बहुत खफा हुआ क्यों कि यह ही अटकनदी को पार न उतरने की **मंत्रणा में मुखिया** थे। अस्तु सब नरेश जब छुट्टी लेकर अपनी २ राजधानियों को लौट आये तो कोटा पहुंचने पर उसी संवत् में अर्थात् १७०७ विक्रमीय संवत् में राव **माधव सिंहजी का स्वर्गवास** होगया। इनके पीछे इनके ज्येष्ट राजकुमार मुकुंदसिंहजी कोटे की गद्दीपर विराजे। "वंशभास्कर" का अवलोकन करने से विदित होता है कि इन्होंने भी एक अंशमें अपने पितृव्य राजकुमार गोपीनाथजी का अनुकरण किया। उक्त ग्रंथ की टिप्पणी करते हुए वारहट कृष्णसिंहजी ने **मीना** जाति को **चांडाल**विशेष माना है किन्तु यह उनका भ्रम है। इस जाति के हाथ का स्पर्श किया हुआ कोई उच्च वर्ण हिन्दू चाहे जल पान न करे किन्तु इसे स्पर्श अवश्य करताहै। अस्तु इसी जाति की एक स्त्री पर **मुकुंदसिंहजी आसक्त** होगये। कविराजा सूर्यमल्लजी ने इस जगह लिखा है कि:—

"कलिकाल में यह बात भी विस्मय पैदा नहीं करती क्यों कि जब म्लेच्छरमणियों से लोग प्रेमपूर्वक आलिंगन करते हैं, जब मुसलमान बादशाहों को राजाओं ने बेटियां दीहैं। और लडकियां दे २ कर उनके नातेदार बनने में जब उन्होंने अपना गौरव समझा है तब यदि **मीनी नारी से** प्रेम किया तो क्या आश्चर्य ?"

बूंदी पधारने के अनंतर रावराजा शत्रुशल्यजी को दो बडी २ कठिनताओं का सामना करना पडा। एक उनका **प्यारा हाथी** शिवप्रसाद जिसपर उसकी बहादुरी देखकर बादशाह भी बहुत प्यार करता था मरगया और इसकी **प्रतिमूर्ति बूंदीनगर** के बाजार नाहर के चोहट्टे में खडी की गई और दूसरे इनके पुत्र राजकुमार भीमसिंहजी का स्वर्गवास हो गया। बूंदी के इतिहास इस बात की साक्षी देरहे हैं और मैंने अपनी आंखों से भी देखा है कि बूंदी के अच्छे२ नरेशों को **पुत्रशोक** का कष्ट उठाना पडा है। राव रत्न सिंहजी को

उनके युवराज गोपीनाथजी के चिरवियोग का शोक उठाना पडा और रावराजा शत्रुशल्यजी को राजकुमार **भीमसिंहजी** की मृत्यु का। **खेर** ये दोनों घटना तो इतिहास की सामग्री है किन्तु महारावराजा **राम-सिंहजी** ने अपने ही समक्ष युवा युवराज भीमसिंहजी को खो दिया और वर्तमान बूंदी नरेश महाराव राजा **रघुवीर सिंह** जी ने अपने इकलोते महाराज कुमार राववेन्द्र सिंहजी को। यह होनहार की वात है।

अस्तु राजकुमार **भीम सिंहजी** प्रयाग के सूबादार बादशाह जाहजहां के कृपापात्र ज्येष्ठ पुत्र शाहजादा **दारा शिकोह** के पास रहा करते थे। शाहजादे को अपनी वीरता से प्रसन्न कर इन्होंने रामगढ और सिंगावद— **दो परगने** जागीर में भी पाये थे। इनका जन्म संवत् १६८२ में हुआ था और संवत् १७०७ की पौष कृष्णा ३ को पचीस वर्ष की भरजवानी में इनका शरीर दिल्ली में छूट गया। शरीर छूटा दिल्ली में और इनकी छः कुमरा-नियों में से **चार** बूंदी के क्षारबाग में जाकर दहकती हुई चिता में **जलगईं**। इनकी एक कुमरानी का देहान्त पहले होचुका था और एक बालक कृष्ण सिंहजी तथा प्रयागसिंहजी की माता थी इसलिये बहुत आग्रह करके श्वशुर ने न जलने दिया। रावराजा शत्रुशल्यजी के बाद रावराजा भावसिंह जी और फिर इन्हीं कृष्णसिंहजी के पुत्र अनिरुद्धसिंहजी बूंदी के स्वामी हुए।

हाडाराव को पुत्र के वियोग का अवश्य ही बहुत कष्ट हुआ किन्तु वह अपना कर्तव्य पालन कर रणभूमि में आत्म विसर्जन करने के लिये उत्पन्न हुए थे इस कारण उन्होंने इस वज्र दुःख को फूल की छडी की तरह सह लिया। धन्य सती माता! धन्य वीर ललनाओं! पतिप्रेम इसीका नाम है। सतीत्व यही है!

अध्याय ६.

इतिहासों में मतभेद.

केवल बूंदी के इतिहास "वंशभास्कर" के आधार पर "शत्रुशल्य चरित्र" लिखते २ मैं बहुते आगे बढ गया किन्तु अभी तक मैंने "शाहजहांनामे" से

उसका मिलान न किया । और प्रत्येक घटना की एक, दो और तीन-इतिहासों से तुलना कर उस का सारासार निकालना इस पुस्तक का मुख्य उद्देश्य है इसलिये अपनी लेखनी के घोडे को यहां पर ही रोककर पहले एक नजर मुन्शी देवीप्रसादजी कृत "शाहजहांनामे" पर भी डाल लेना चाहिये ।

उस पुस्तक को पढने से मालुम होता है कि इस चरित्र के पहिले, तीसरे, पांचवें, अध्यायों में लिखा हुआ **खांजहां लोदी** बादशाह की ओर से दक्षिण प्रदेश का सूबादार था । उसने निजामुल्मुल्क से मिलकर वालाघाट का कुल परगना उसे देदिया । उसने मांडू के सूबादार मुजफ्फर खां को निकाल दिया, और आप मालिक बन बैठा । संवत् १६८६ की कार्तिक कृष्णा १२ को खांजहां आगरे से भाग गया । बादशाह शाहजहां की आज्ञा से उसका पीछा किया गया । धौलपुर में दोनो सेनाओं की मुठभेड हुई । इस लडाई में भी खांजहां हार कर भागा । इस युद्ध में शाही सेना में कोटा नरेश माधवसिंह जी भी संयुक्त थे । भागकर वह दक्षिण में निजामुल्मुल्क के राज्य में जा पहुँचा । इस वर्ष की चैत्र कृष्णा ६ को बादशाह ने इन दोनों को जीतने के लिये तीन अफसरों के अधिकार में तीन सेनायें भेजीं । पहिली का अफसर दक्षिण का सूबेदार इरादत खां, दूसरी का राजा गजसिंह जी और तीसरी का शाहस्ताखां था । तीसरी सेना में **राव माधवसिंह**जी थे और तीनो ही में अनेक राजपूत राजा व क्षत्रिय सरदार थे किन्तु किसी में रावराजा **शत्रुशल्यजी का नाम** नहीं लिखा है । "शाहजहांनामे" के मत से खांजहां का असली नाम पीरा था । शाहीसेना के तीन बडे २ दलों के आगे यह न ठहर सका । पीरा दक्षिण से भाग कर बुंदेलखंड में आगया । संवत् १६८७ की माघबदी ५ को रींवां राज्य के नीमी गाव में शाही सेना की फिर पीरा से मुठभेड हुई । **माधवसिंह** जी हिरावल में थे । उन्हीं के बरछे से खांजहां की **जीवनलीला** समाप्त होगई । जो दशा इसकी हुई उससे भी बढकर निजामुल्मुल्क की हुई । खांजहां रणभूमि में मारा गया और निजामुल्मुल्क कुछ अर्से के बाद फतेह खां के हाथ से कैद होकर बादशाह की आज्ञा से मारा गया ।

"शाहजहांनामे" में यद्यपि इस प्रकार लिखा हुआ है किन्तु बूंदी के इतिहास खांजहां लोदी के तीन युद्ध होना बतलाते हैं। एकमें वह हाडा-राव शत्रुशल्यजी से हारकर भागा, दूसरे में लडाई के मैदान में राव माधवसिंहजी के हाथ से मारा गया और तीसरे में रावराजा शत्रुशल्यजी के आतंक से उसके बचेबचाये साथी बादशाह की शरण आकर—अथवा भागकर उस प्रदेश में शान्तिका प्रसार हुआ। दूसरे युद्ध की घटना बूंदी के इतिहास से बिलकुल नहीं मिलती है। उसमें माधवसिंहजी की सरदारी में शाही सेना की चढाई होना और "शाहजहांनामे" में शाइस्ताखां के अधिकार से पहली और तीसरी लडाई का न तो कहीं शाहजहांनामें में वर्णन लिखा है और न टाड साहब ने इन तीनों युद्धों का कहीं उल्लेख किया है। मुझे न तो "वंशभास्कर" की प्रमाणिकता में किंचित् भी संदेह है और न मैं मुन्शी देवीप्रसादजी के लिये कह सकताहूँ कि उन्होंने बिना निश्चय ही कोई बात लिखदी हो। परंतु जब पंडित विश्वनाथ विरचित "शत्रुशल्यचरित्र" में ज्यों की त्यों वे ही बातें लिखी हैं जो "वंशभास्कर" में हैं और यह ग्रंथ रावराजा शत्रुशल्यजी के शासनकाल का ही बना हुआ है और इसके सिवाय मेरे गुरुवर पंडित गंगासहायजी के "वंशप्रकाश" से भी इसका अनुमोदन होता है तब पाठक स्वयं विचार करलें कि किसका कथन सच्चा है। मैं तो यही कहूंगा कि 'वंशभास्कर' सत्य है क्यों कि कविराजा सूर्यमल्लजी भी ऐसे व्यक्ति नहीं थे जो विना पूरा पता पाये यों ही चापलूसी से चाहे जो लिख मारें।

अस्तु! खांजहां लोदी के युद्ध के अतिरिक्त बूंदी के इतिहास से लेकर इस चरित्र के गत अध्यायों में दूसरी बात जो लिखी गई है उसका "शाहजहांनामे" में कहीं नाम निशान तक नहीं है। "वंशभास्कर" के पढने से मालूम होता है कि बादशाह शाहजहां ने जब स्वयं काबुल पर चढाई की तो अटक पार उतरने में स्वधर्म की हानि समझकर रावराजा शत्रुशल्य जी उसके साथ न गये, आमेर और जोधपुर के नरेश नहीं गये और केवल

कोटा वाले माधवसिंह जी के सिवाय कोई हिन्दू राजा नहीं गये । लौटने पर बादशाह ने इन सब पर दंड भी किया और जाने वाले को इनाम किन्तु "शाहजहांनामे" में इस विषय में जो कुछ लिखा है उस में कहीं पर भी इन राजाओं के बादशाह के साथ जाने में नाहीं करने का उल्लेख नहीं । माधव-सिंहजी तो जब दोनों ही इतिहासों के मत से गये तब उनके विषय में तो कुछ लिखने की ही आवश्यकता क्या किन्तु "शाहजहांनामा" स्पष्ट लिख-ताहै कि शाहजादा मुरादबख्श के साथ शत्रुशल्यजी के भाई इन्द्रशल्यजी गये, शाहजादा दाराशिकोह के साथ रावराजा शत्रुशल्यजी काबुल जाने के लिये नियत हुए, मुरादबख्श के साथ जाने को नियत किये गये, शाहजादे की आज्ञा से इन्होंने उजबकों पर आक्रमण कर उन्हें भगाया और तैमूराबाद की विजय के समय यह लडाई के मैदान में थे । उस पोथी के मत से वे स्थान अवश्य अटक नदी के पार थे ।

बूंदी के इतिहास "वंशभास्कर" "वंशप्रकाश" और "शत्रुशल्यचरित्र" तीनों ही एक स्वर से इसका उल्लेख करते हैं । परम्परा से अर्थात् बाप के मुख से बेटे के कान में और बेटे से पोते के कान में—यों कानों कान पहुं-चकर हजारों—लाखों कानों में होकर जो बात पीढी दर पीढी चली आती है वह लेखबद्ध न होने पर भी इतिहास का एक अंग माना जाता है । बस इसी के अनुसार तब से लेकर अब तक यही माना जाता है—सर्वसाधारण यही मानता आया है कि रावराजा अनिरुद्धसिंहजी के अतिरिक्त बूंदी का कोई नरेश अटक नदी के पार नहीं गया और राव सुरजनजी की "अटक न उतरहिं कटक" वाली प्रतिज्ञा जब अभीतक बूंदी में बडे गर्व के साथ स्मरण की जाती है तब केवल "शाहजहांनामे" के कहने से ऐसा क्यों कर मान लिया जाय कि रावराजा शत्रुशल्यजी ने बादशाह की आज्ञा से अपने धर्म पर—अपनी कुलमर्यादा पर और अपने पितामह की प्रतिज्ञा पर पानी फेर दिया । जो धौलपुर के मैदान में 'बादशाह की आज्ञा पालन करने में दारा का साथ देकर मरनेकी तैयारी करके मरमिटना जानते हैं वह रावराजा

शत्रशल्यजी कभी काबुल जावें यह संभव नहीं। हृदय इस बात को कदापि स्वीकार नहीं करता। यदि ऐसा हुआ होता तो अवश्य टाडसाहब बहादुर जैसा पक्षपातशून्य लेखक इसे प्रकाश करने में कभी आनाकानी न करता। मालूम होता है कि जिन मुसलमानी ग्रंथों के आधार पर "शाहजहां नामा" तैयार हुआ है उन्होंने या तो हिन्दूराजाओं को नीचा दिखाने की इच्छा से अथवा विस्तारभय से इस बात को छोडदिया हो क्यों कि "जहांगीरनामे" और "शाहजहांनामे" में देशी राजाओं की राजभक्ति, बादशाह का उन्हें पद, पदवियां, इनाम देने, और उनकी वीरता के सिवाय ऐसी कोई बात नहीं लिखी है जिससे ये बातें प्रकट हों। यहां तक कि उन ग्रंथों में इनके दुर्गुणों की कथायें भी बहुत ही संक्षेप से लिखी हैं। खैर ऐसी दशा में पाठक ही इसकी सत्यासत्यता का निर्णय करलें।

वरसिंह जी बुंदेला के मारे जाने की घटना चाहे बूँदी के इतिहास के अतिरिक्त न "टाड राजस्थान" में है और न "शाहजहांनामे" में किन्तु उस समय की परिस्थिति को देखते हुए यह एक साधारण बात है इसलिये मिलान करने का अधिक जोर देने की भी इसके लिये कुछ आवश्यकता नहीं है। हां! बूंदी के "वंशभास्कर" से लेकर राठोड **अमरसिंहजी** का बादशाह के दरबार में मारा जाना जगजाहिर है। उसके लिये "वंशभास्कर" के लेख का सारांश पाठकोंने इस चरित्रके चौथे अध्याय में पढलिया। इस विषय में "शाहजहांनामे" में इस तरह लिखा हुआ है:-

"राजा गजसिंह (जी) कुरबकायदे और फौज की कसरत में सब राजाओं से बढे हुए थे। वह मर गये। उनकी मृत्यु सं० १६९९ की ज्येष्ठ शुक्ला ३ को हुई। बादशाह ने उनके कहने के अनुसार यशवन्तसिंह (जी) को चार हजारी जात और २४ हजार सवारों का मनसब और राजा की पदवी दी। पहले राठोडों में राव का खिताब ही था किन्तु राजा उदयसिंह (जी) ने बादशाह अकबर की बंदगी करके राजा की पदवी पाई और उसने यह भी नियत करदिया कि अब से इस घराने का जो कोई अपने बडों

की गद्दी पर बैठे उसकी राजा ही पदवी रहै और छोटा भाई इस दर्जे को पहुंचे तो राव कहलावे। राठोडों में यही दस्तूर है कि राजा की सब से अधिक प्यारी रानी का पुत्र गद्दी पर बैठताहै। छोटे वडे का नियम नहीं।"

मुन्शी देवीप्रसादजी ने इस बात का एक उदाहरण भी दिया है। खैर बूंदी के इतिहास से इनका बहुत मतभेद है तो रहने दीजिये। मैं यहीं मानलूंगा कि जोधपुरनरेश गजसिंहजी की अधिक प्रीति अनारां पर थी और बूंदी के इतिहास के अनुसार यशवन्तसिंहजी उसकी जूतियां सीधी करने से गादी पर बिठलाये गये तो वही उनकी मा भी थी। आगे चलकर इसमें अमरसिंहजी के मारे जानेका जो हाल लिखा है उसका मतलब यह है।

अमरसिंहजी बीमारी के कारण कुछ दिन बादशाह के दरबार में न जासके। श्रावणशुक्ल १ गुरुवार को संवत् १७०१ में वह शाहजहां के पास उपस्थित हुए। वह अपनी बांई मिसल में खडे रहे और सलाबत खां शमेदान के पास खडा २ बातें करने लगा। अमरसिंहजी ने दौडकर उसकी बांई पसली में कटारी घूंस दी। उसका काम उसी दम समाप्त होगया। खलीलुल्ला और विट्ठलदासजी गौड के पुत्र अर्जुनजी दोनों उनपर लपके। अमरसिंहजी ने दो तीन वार कटारी के अर्जुनजी पर किये किन्तु उन्होंने ढाल पर रोकलिये। एक कटारी उचट कर अर्जुनजी के गले में लगी तब खलीलुल्ला ने दो और दो ही अर्जुनजी ने उनपर तलवार के वार किये। इतने में सैयद सालार और आठ सात गुर्जबरदारों के एक दम उनपर हमला कर तलवारों की खचाखच मचाते ही उसी दम अमरसिंहजी का दम निकलगया। दम क्या निकला बारह आदमियों ने मिलकर अकेले अमरसिंह को मारडाला। बादशाह को सलावतखां की योग्यता और अमरसिंहजी की वीरता का स्मरण करके बहुत खेद हुआ। उसने इन दोनों में अदावत होने का कारण भी बहुत खोजा किन्तु कुछ पता न लगा। आगे चलकर मुन्शीजी ने कुछ कारण की भी थांग लगाई है। उन्होंने बीकानेर और अमरसिंहजी की जागीर के गावों के सरहद्दी झगडे में सलावतखां का राव करणसिंहजी की मदद करना कारण माना है किन्तु कविराजा सूर्यमल्लजी ने सला-

वतखां का उन्हें गाली देना बतलाया है। इन दोनों में से कौन ठीक है सो मैं नहीं कह सकता और न इस चरित्र से इस बात का मतलब ढूंढ निकालने से कुछ प्रयोजन है। हां! राजपूताने में अमरसिंह राठोड का जो किस्सा गाया जाता है वह बूंदी के इतिहास से मिलता जुलता है। कुछ भी हो अमरसिंहजी उस जमाने के एक नामी बहादुर थे और उनके साले अर्जुनजी ने **बहन को विधवा** करके दुर्जनता करने में सदा के लिये अपने शिर ऐसे कलंक का टीका लगा लिया जो हजार बार रेत से रगडने पर भी कभी नहीं छूट सकता है।

पितामह के स्वर्ग को सिधार जाने के बाद जब रावराजा शत्रुशल्यजी बादशाह शाहजहां की सेवा में उपस्थित हुए तब उसने इनका जैसा सत्कार किया सो प्रथमखंड के अंतिम अध्याय में लिखा गया है और वहां जो कुछ लिखा गया है वह "शाहजहांनामे" से लेकर, किन्तु उसके सिवाय मुन्शी देवीप्रसादजी ने आगे चलकर फिर लिखा है कि:—

"(संवत् १६८९) की फाल्गुन शुक्ला १० को राव **शत्रुशल्य (जी) हाडा** ने बादशाह के पास हाजिर होकर अपने दादा के इकट्ठे किये हुए **४० हाथी** बादशाह की नजर किये। बादशाह ने उनमें से २॥ लाख मूल्य के १८ हाथी रखकर बाकी उनको वापिस दे दिये। इनमें से ८ हाथी बादशाह की सवारी के योग्य थे। और बादशाह ने इन्हें खिलअत, चांदी के जीन का घोडा और नक्कारा निशान इनायत किया॥"

यहां तक गत अध्यायों में बूंदी के इतिहास के आधार पर लिखी बातों का मिलान "शाहजहांनामे" से हो चुका। दोनों के आपस में जो २ जहां २ मतभेद है उसे भी पाठकों ने जान ही लिया। अब इनमें से सारासार का निर्णय करना पाठकों का काम है। **उपन्यास** लिखना एक सुलेखक के लिये जितना सरल है **इतिहास** लिखना उतना ही कठिन है। उपन्यास को लेखक चाहे जिस ढांचे में डालकर समाज का चित्र पाठकों के सामने ऐसे ढंग से खडा कर सकता है जो निरी गप्प होने पर भी पाठकों को सत्य प्रतीत हो और जिसे पढने से पाठकों का उपकार होकर उन्हें अपने चरित्रशोधनमें सहायता मिले। मैं सच्चा उपन्यास उसी को मानता हूं किन्तु इतिहास

लिखना जरा टेढ़ी खीर है। उसमें सत्य घटना से एक तिल भर हटने में अर्थ का अनर्थ होताहै। उपन्यास और इतिहास दोनों ही चरित्र शोधन के लिये सामग्री हैं किन्तु इतिहास प्राचीन लोगों के चरित्र का सच्चा चित्र पाठकों के सामने लाकर उन्हें भविष्यत में चलने का मार्ग बतलाते हैं इसलिये इतिहास का दर्जा बडा है। खैर मुझ अबोध में दोनों ही लिखने की योग्यता नहीं और इसलिये ऐसे कामोंपर हाथ डालना मेरा अनुचित साहस ही कहलावेगा।

अध्याय ७.

"शाहजहांनामे" के मत से।

"शाहजहांनामे" में चाहे राव राजा शत्रुशल्यजी का दक्षिण की चढाई में खाँजहां लोदी से समरभूमि में विजय पाना न लिखा गया किन्तु उनका उस प्रदेश के और २ युद्धों में पराक्रम दिखाने का वर्णन अवश्य है। उसमें इस विषय में जो कुछ लिखागया उसका सारांश इस प्रकार पर है।

संवत् १६८९ की वैशाख कृष्ण ११ गुरुवार को जब बादशाह शाहजहां बुरहानपुर से आगरे को रवाना हुआ आजमखां की जगह दक्षिण और खानदेश का सूबेदार महाबतखां नियत किया गया। साहूजी भोंसला ने बादशाह की सेवा त्यागकर नासिक, त्र्यंबक, और संगमेर में कोंकण की सीमा तक अपना अधिकार कर लिया। और निजाम के कुटुम्ब में से एक व्यक्ति को अपने पास रखकर स्वतंत्रता का झंडा उडा दिया। साहूजी की जागीर के किले और परगने छीनकर बादशाह ने फतेहखां को दे दिये। इसपर उसने आदिलखां से मिलकर दौलताबाद पर चढाई की। युद्ध में महावतखां खानखाना ने राव शत्रुशल्यजी को साथ लेकर साहूजी को सेनासहित हराकर हटा दिया। अब किले और रुपये के लालच से फतेहखां भी उसमें जा मिला। फतेहखां के बागी होजाने की खबर पाकर महाबतखां ने किला विजय करने की अपने पुत्र खान जमां को आज्ञा दी। यह इधर दुर्ग पर गोले बरसाने में जी जान से लगा हुआ था और उधर डेरों की रक्षा का भार राव शत्रुशल्यजी पर छोडा गया था। रात्रि के बारह

बजे के लगभग रणदूलह, फरहाद, बहलोल और साहूजी अचानक डेरों पर आ पडे। राव शत्रुशल्यजी और उनके क्षत्रिय सरदारों ने बहुत वीरता के साथ शत्रु को सामना करके कितने हीं मरहठे सरदारों के साथ बहलोल के रक्त से अपनी २ तलवारों की प्यास बुझाई। ये खेत रहे और शेष सब प्राण लेकर भाग गये। विजयश्री शत्रुशल्यजी के हिस्से में आई। यह घटना संवत् १६८८ के चैत्रवदी १ की है।

शायद अपने पास रसद की कमी देखकर महावतखां ने जफरनगर से सामान लाने के लिये रावदूदा (?) को मुबारिजां के साथ जफरनगर को भेजा किन्तु जब मरहठी सेना का उधर जोर सुना गया तो अपने पुत्र खानजमां को राव शत्रुशल्यजी समेत सहायता के लिये बिदा किया। किडकी में इनकी मुठभेड भी हुई किन्तु शत्रु के हट जाने से फिर भी जीत इनकी ही हुई। अब याकूत हवशी और खीलोजी मरहठा भी साहूजी आदि में जा मिले। चैत्र शुक्ला ८ को महावतखां ने फिर अपने पुत्र के साथ राव शत्रुशल्यजी और बीकानेर नरेश करणसिंहजी को शत्रुओं के डेरे लूटने के लिये भेजा और लडाईमें बहुत सा माल असबाब इनके हाथ आया। चैत्र शुक्ला ११ को दौलताबाद के किले का कोट सुरंग से उडाकर किले पर शाही झंडा जा फहराया।

दौलताबाद का जब इसतरह विजय होचुका तब महावतखां खानखाना ने अंबर में पहुंचकर महाकोट का घेरा देने के लिये सेना भेजी। सेना का मुख्य सरदार खानखाना का पुत्र खांजमां था। हाडाराव और बीकानेरनरेश एक मोरचे पर डटे हुए थे किन्तु जब सेनापति को खबर हुई कि खीलोजी और बहलोल (शायद यह पहले ही मारा गया था) तैलंगाने में उपद्रव करने को जाना चाहते हैं तब उसने इन दोनों क्षत्रिय नरेशों को उनका विजय कर उन्हें दंड देने और रसद भेजने के लिये बिदा किया। बैशाख कृ० १४ को किले वालों की ओरसे मेल करलेने का संदेशा आया। खैरियत खां, दोलाजी नाग पंडित और तानाजी तथा हम्मीर

राव शाही सेना में आ शामिल हुए । ऐसे ही छूटी छवाई लडाई के बाद महाकोट का कोट भी सुरंग से उडाकर शाही सेना भीतर घुसगई ।

निजामशाह के एक अमीर और अमार्ती दुर्ग के किलेदार महलदार खां ने कालने के किले में आकर खानखाना से कहलाया कि ये किले मैं आपको सौंप देने को तैयार हूं । महावतखां इस पर राजी होगया और उसी की आज्ञा से महलदार खां ने बीजापूर में साहूजी और रणदूलह (?) के शिबिर लूटकर उनकी स्त्रियां, उनके बालक, ४०० घोडे और डेढ लाख का माल महावतखां के पास भेजदिया । अब अकाल और मरी से घबडाकर फतेहखां भी महावतखां की शरण आगया ।

इसतरह दक्षिण का विजय होने की बादशाह के पास जब सूचना पहुँची तो उसने पदवियां, खिलअत, इनाम और जागीरें देकर विजयी सरदारों को प्रसन्न किया । इस जीत में एक हजार तोपें और ढाई करोड का मुल्क बादशाह के हाथ आया ।

ऐसे एक युद्ध की कथा समाप्त होगई किन्तु मरते दम तक न हटने वाले मरहटे कुछ ऐसे वैसे नहीं थे जो अकाल और मरी से घबडाकर बिलकुल ही अपना साहस गुमा बैठें । जब खानखाना दक्षिण को जीतकर बादशाह के पास चलागया तो फिर "बुढिया ने पीठ फेरी और चरखे की होगई ढेरी ।" रण दूलह और शाहूजी ने आदिलशाही सेना के साथ मैदान सूना पाकर दौलताबाद को घेर लिया । समाचार पाकर महावतखां को अपनी सेना की वाग फिर मोडनी पडी किन्तु इसकी सेना का दल बादल सा जमाव देखकर वे लोग ठहर न सके । वे ठहरें भी क्यों ? राजपूत-राजाओं की तरह बादशाह के लिये स्वामिभक्ति दिखलाकर उन्हें मर-मिटना थोडा ही था जो अंगद की तरह रणभूमि में पैर जमाकर एक इंच भी न हटते । क्षत्रियनरेश जिस समय सेवाधर्म स्वीकार करके जी जान से मुसलमानों को चढाने बढाने में लगे हुए थे तब मरहठों का उद्देश्य और ही था । वे चाहते थे कि मुसलमानी साम्राज्य का सर्वनाश होकर फिर हिन्दुओंकी विजय पताका — मरहठोंका भगवां झंडा भारतवर्ष में ओर से छोर तक

फहराने लगी। बस इसलिये ही वे जमकर नहीं लडते थे और इसी कारण वे लोग भागकर नासिक त्र्यंबक चले गये।

इस समय वे लोग भागगये किन्तु अब महावतखां को खटका होगया। उसने जानलिया कि अधिक बलवती सेना मंगवाये बिना काम चलना कठिन है। इस कारण उसने बादशाह की सेवा में निवेदन पत्र भेजकर शाहजादे सुजाअ को बुलवाया। इस चढाई में आमेरनरेश जयसिंहजी, कोटानरेश माधवसिंहजी और शिवपुरनरेश विट्ठलदासजी आदि कितने ही राजपूत राजा उसके साथ थे। सेनापति नसीरीखां जो अब खांदौरां हो गया था वह भी साथ हो ही किन्तु इस जगह हाडाराव शत्रुशल्यजीका जाना नहीं लिखाहै। यह पहले ही से दक्षिण देशमें अडे हुए थे।

खैर! शाहजादा ने कार्तिक कृष्णा १३ सवत् (?) को बुरहानपुर से बिदा होकर परेंडे के किले का विजय करने की ठहराई। खानखाना शाहजादे के साथ रहा और आमेरनरेश जयसिंहजी और हाडाराव शत्रुशल्यजी को साथ देकर महावतखां का पुत्र खानजमां बीजापुर को लूटने के लिये पहले से भेज दिया गया।

इसके आगे उक्त इतिहास में साहूजी का एक व्यक्ति को निजाम बनाकर अहमदनगर और दौलताबाद लेने का उद्योग करना, खानजमां का परेंडे के किले को घेरना, साहूजी और रणदूलह की महावतखां से मुठभेड, मालवे के सूबादार खानदौरां का उस की सहायता के लिये आना, खानखाना के बुरे बर्ताव से सरदारों का उसपर नाराज होजाना और इसलिये घबडाकर उसका शाहजादे को बुरहानपुर लेआना लिखा हुआ है किन्तु सिवाय छोटी मोटी मुठभेड के न तो इस मुहिम में कोई भारी युद्ध हुआ और न जमकर ही संग्राम हुआ। बादशाह शाहजहां ऐसी खबर पाकर महावतखां खानखाना पर क्रुद्ध अवश्य हुआ और उसने शाहजादे शुजाअ को वापिस भी बुलवा लिया। हां! ज्येष्ठ शुक्ला ९ संवत् १६९१ को जब कि शाहीसेना घाटी से उतर रही थी मरहठी सेना ने उसपर बाणों की झडी अवश्य लगादी। खानखाना के बेटे खानजमां ने हाडाराव शत्रुशल्यजी, बीकानेरनरेश करणसिं-

हजी और दूसरे सरदारों सहित शत्रुसेना का सामना किया। उधर दूसरी ओर से आमेरनरेश जयसिंहजीकी सेना मदद के लिये आ पहुंची। बस मरहठी सेना को भगाकर शाही फौज कुशलपूर्वक बुरहानपुर में आषाढ वदी १३ को जा दाखिल हुई।

इसके अनंतर महाव्रतखां का मरजाना लिखकर उसी संवत् की अगहन शुदी ७ को बादशाह का दक्षिण के सूबे का इस तरह प्रबंध कर-देना लिखा है कि मालवेका नर्मदा पार वाला हिस्सा खानदेश में मिलाकर दक्षिग को दो विभागों में बांट दिया। एक का नाम बालाघाट का सूबा और दूसरे का पाईंघाट। इस बालाघाट वाले में दौलताबाद, अहमदनगर, पाटन, बीडर, जालना, जलेर, संगमेर, फतहाबाद, कुछ बराड और कुल तिलंगाना था। इस हिस्से का सूबादार खानजमां को नियत कर आमेरनरेश जयसिंहजी और हाडाराव शत्रुशल्यजी को दौलताबाद में रक्खा।

इसके बाद क्या हुआ सो लिखने पूर्व "शाहजहांनामे" में लिखेहुए इति-हास के इस भाग का यदि बूंदी के इतिहास "वंशभास्कर" से मिलान किया जाय तो उसमें न तो इस तरह की चढाई का कुछ हाल लिखा है और न उसके मत से शत्रुशल्यजी कभी दूसरों के अधीन होकर लडने को गये। टाड साहब का "एनल्स ऍंड ऍंटी क्विटीज आफ् राजस्थान" भी ऐसी ही गवाही देरहा है। परंतु जब मुन्शी देवी प्रसादजी ने अपने बनाये "शाह-जहांनामे" में इन घटनाओं के साथ उनका संवत् मिती भी दिया है तब मैं ऐसा लिखने का भी साहस नहीं कर सकताहूं कि उस इतिहास का लेख मिथ्या है। हां इस अध्याय को समाप्त करने पूर्व मुझे यहां इतना और लिखना चाहिये कि इसमें मरहटाओं के लिये जो कुछ लिखा गया है उस का मिलान मराठी इतिहासों से किये विना कोई पाठक महाशय किसी तरह का नतीजा न निकाल लें क्यों कि मुन्शीजी ने जिन मुसलमानी इतिहासों से सहारा लिया है उनमें संभव है कि पक्षपात हो। मुझे सो ऐसा करने की इस समय आवश्यकता नहीं क्यों कि मुझे बूंदी के इतिहास का एक अंश लिखना है। उन बातोंसे यहीं विशेष प्रयोजन नहीं।

अध्याय ८.

औरंगजेब की सहायता।

गत अध्याय में जिस घटना का वर्णन लिखते २ छोड़ दिया गया था उसके विषय में आगे चलकर "शाहजहांनामे" में लिखा है कि दक्षिणी वीरों का दमन करने के लिये बादशाह शाहजहां ने स्वयं उस ओर कूच किया। वह जिस समय दौलताबाद में पहुंचा खानजमां, हाडाराव शत्रुशल्यजी, माल्हूजी भोंसला, और परशूजी आदि शाही सर्दारों ने बादशाह की पेशवाई की। शाहजहां ने फिर कितने ही सर्दारों और सुभटों को नियतकर खान जमां के दल को और भी दृढ कर दिया। इसके बाद मरहटी सेना से शाही दल की कई बार लड़ाइयां हुईं किन्तु इनमें इस चरित्र के नायक की विशेष वीरता का कहीं उल्लेख नहीं। हां! चैत्रकृष्णा १३ सं० (?) को जब बादशाही सेना ऊदाबाई के घाटे से उतर चुकी थी और हाडाराव शत्रुशल्यजी खानजमां के पीछे २ आरहे थे अचानक मरहटी दल के एक जोरदार हिस्से ने इनपर आक्रमण किया। हाडाराव को उस समय अकेले रहकर अपने पराक्रम की बानगी दिखाने का अच्छा अवसर मिल गया। उन्होंने स्वयं अपनी सेना समेत खूब तलवार बजाई। अंत में मरहटी फौज अपने अनेक वीरों को खोलकर अपना सा मुंह लिये वहां से भाग छूटी। इस जंग में हाडाराव के भी अनेक वीरों ने आत्मविसर्जन करके वीरगति पाई। फिर खानजहां के दल ने कोल्हापुर का दुर्ग ले लिया। तीन दिन रात तक बराबर शस्त्र बजाकर शाहूजी के पैर उखड गये और ऐसे शाही सेना को मिरज और रायबाग लूटने का खूब अवसर मिलगया।

साहूजी भोंसले का साथी आदिलखां तीनों ओर की मार से पिटते २ तंग आगया। उसने २० लाख रुपये बादशाह की नजर भेजकर लिखा कि "साहूजी यदि जनेर आदि के किले निजामुल्मुल्क को देदेगा तो ठीक है। मैं उसे नौकर रक्खूंगा। नहीं तो शाहीसेना का साथ देकर उसके किले छीनने का प्रयत्न करूंगा।" बस इस लेखको पाकर बादशाह ने आदिलख

का अपराध क्षमा करदिया । जो प्रदेश उसके पिता के पास पहले से चले आतेथे उसे देदिये गये । और परगना दन, सोलापुर, किला परेंडा इलाके समेत और कोकण प्रान्तमें से २० लाख का परगना अधिक । कुतुबुल्मुल्क ने भी बादशाह का आश्रय लेकर शाही सिक्का जारी करने के साथ उसके नाम की दुहाई फेरदी और ५० लाख रुपया नजर भेजा । ऐसे इन दो नव्वाबों ने बादशाहकी शरण अवश्य ले ली किन्तु मरने तक न हटनेवाला मरहटा सर्दार साहूजी अभी तक लडकर मर मिटने से न हटा शाहजहां ने उसे नौकर न रखनेकी, और रक्खाजाय तो शाही राज्य में न घुसने देने की ताकीद करने के साथ लिखा कि "यदि वह जुनेर, त्र्यंबक, राजदेवेर, चिकलवाडी और भीमगढ के किले हमारे नौकरों के हवाले करदे तो ठीक है। हमारे नौकर तोपों के सिवाय सब सामान उसे लेजाने देंगे । ऐसा उसे स्वीकार न हो तो उसे पकडलेना या मारडालना" यह घटनायें संवत् १६९३ से पहले २ की हैं । ऐसे कुतुबुल्मुल्क और आदिलखां से संधि होजाने के अनंतर बादशाह उधर से लौट आया । लौटती वार कोटा-राज्य में पलायते के मुकाम पर माधवसिंहजी कोटा वाले के पुत्र मोहनसिंहजी जुझारसिंहजी ने बादशाह की सेवा में हाजिर होकर हाथी नजर किया और शिवपुर बडौदा के मंडावर गांवमें बूंदीनरेश शत्रुशल्यजी के पाटवी राजकुमार भावसिंहजी ने उपस्थित होकर भी हाथी भेंट किया । तीनों को खिलअत, घोडे और सरोपा दिये गये । इस तरह दक्षिण की यह मुहिम समाप्त हुई । "शाहजहांनामे" के लेख का यही सारांश है किन्तु इसका बूंदी के इतिहास में पता नहीं है । इसके विषय में जो मेरा मत है उसे मैं गत अध्याय में प्रकाशित कर चुका । यहां दुहराने की आवश्यकता नहीं ।

इसतरह उक्त इतिहास के मत से एक करोड का मुल्क और ३० किले बादशाह के हाथ अवश्य आगये किन्तु साहूजी ने शाहजहां की आज्ञा की तिनके के समान भी पर्वाह न की । उसने फिर भी लूट खसोट, मार काट और लडाई झगडा ज्यों का त्यों जारी रक्खा और तब लाचार होकर बाद-

शाह को इसी वर्ष के अषाढ में अहमदनगर, तिलंगाना, खानदेश और बराड ये चारों सूबे शाहजादा औरंगजेब को देना पडा । इनमें बडे २ चौसठ किले थे। बादशाह ने साहूजी के १० किले छीन लेने की भी उसको आज्ञा दी और हाडाराव शत्रुशल्यजी से प्रसन्न होकर उनका मनसब बढाया।

शाहजादा औरंगजेब को जागीर में दक्षिण प्रदेश मिलजाने के बाद जो२ युद्ध हुए उनका वर्णन जैसे "शाहजहांनामे" में है वैसे ही संक्षेप से "टाड-राजस्थान" में और विस्तारसे "वंशभास्कर" में दर्ज है । इस कारण अब मुझे तीनों को मिलाकर लिखने का अच्छा अवसर मिलैगा। "शाहजहांनामे" के मत से यह प्रांत केवल औरंगजेब को जागीर में दियागया था और २ सूबे और २ शाहजादों को नहीं किन्तु टाडसाहब और सूर्यमल्लजी बादशाह के सारे ही साम्राज्य को अपने बेटों में बादशाह का बांट देना मानते हैं । खैर कुछ भी हो। इस विषयमें "वंशभास्कर" में विस्तार से और मेरे गुरुवर पंडित गंगासहायजी के "वंशप्रकाश" में संक्षेप से इस चढाई का हाल जिस तरह लिखा गया है उसका सार यह है। उन दोनों की राय लिखकर तब "शाहजहां-नामे" से उसका मिलान किया जायगा।

बादशाह शाहजहां ने अपने दूसरे पुत्र शाहजादा शुजाअ को पूर्वदिशा तीसरे पुत्र शाहजादा औरंगजेब को दक्षिण दिशा, चौथे पुत्र शाहजादा मुरा-दबख्श को पश्चिम दिशा देकर बडे पुत्र दारा शिकोह को जिस पर शाह की अधिक कृपा थी और जिसे अपने पीछे वह इस बृहत् साम्राज्य का स्वामी बनाना चाहता था अपने समीप रक्खा। औरंगजेब असाधारण बुद्धिमान् था, छली और पापी भी कम न था। उसने दक्षिणियों को सर करके अपने नाम से औरंगाबाद नगर तापी और गोदावरी के मध्य भाग में बसाया। इन दोनों नदियों के बीच का प्रदेश खानदेश कहलाता है। यह नगर दौलताबाद के निकट अग्निकोण में है और वहां धन दौलत का पारावार नहीं। अस्तु नगर बसा-ने का लग्गा लगाकर औरंगजेब ने पराक्रमी मरहठों का दमन करने के लिये अपनी सेना आगे बढाई। बादशाह ने उसे जितना प्रदेश देदिया था उस पर अपना अधिकार जमाने तक तो शायद मरहठे न बोले किन्तु ज्यों ही

इसने आगे पैर बढाया भागनगर और बीजापुर के वीरपुंगवों ने एकदम उसका मार्ग रोकदिया। औरंगजेब जैसे पराक्रमी, उत्साही और साहसी को रोकदेना अवश्य ही टेढी खीर थी क्यों कि उसका बल विक्रम असाधारण था, उसका साहस अदम्य था और उसमें छल कौशल भी कूट २ कर भरे थे किन्तु उधर साहूजी आदि मरहठा वीर भी किसी बात में इससे कम न थे वरन् यों कहना चाहिये कि इससे कहीं बढकर थे इसलिये व्याज लेने जाकर मूल भी खो बैठने का भय खाकर इसने पिता को पत्र लिखा। क्यों कि एक ओर दक्षिणी मरहठों का हमला और दूसरी ओर सतारा वालों का आक्रमण। बस यह घबडा उठा। पराक्रमी शत्रुओं ने अपना प्रदेश वापिस लेने के अतिरिक्त शाही राज्य पर आक्रमण किया और तलवारों की, भालों की, बन्दूकों की और सब से बढकर तोपों की मार से शाहजादे की सेना कनकनकी करडाली। उसने लज्जित होकर बादशाह को लिखा:—

"राज्य बढाने के लोभ में मुझ पर भारी विपत्ति आ पडी है। यदि आप बूंदीनरेश को भेजदें तो आपकी दुहाई फेरकर इस देश को दबालेना सहज हो जायगा। जब से आपने उसकी कुछ भूमि कोटा वाले को दिलादी है तब से वह उदास अवश्य है किन्तु आपकी बहुत कान रखता है और हमारे अर्थों का सदा ही साधन करता रहता है। इसलिये उसका सन्तोष कर मेरे पास हाडाराव शत्रुशल्य को भेज दीजिये।"

बादशाह ने इनको बुलाकर गणेशगज हाथी, घोडे, वस्त्र, शस्त्र आभूषण देकर इनका सम्मान किया किन्तु कोटेवालों को दिलाये हुए परगने उस समय न देकर कहदिया कि—"इस विजय के बाद तुम्हें वह भूमि मिली ही समझना"

रावराजा शत्रुशल्यजी ने बूंदी आकर अपनी सेना सजाई। अपने शूर सामन्तों को खूब बढ चढ कर इनाम दिया, १० हजार रुपया ब्राह्मणों में वितरण किया, १३० घोडे और २४ हजार दाम कवियों को, २० हजार दाम शुचि सेवकों को, ८ हजार दाम रंडियों को, ६ हजार दाम गायकोंको और और लोगों को ९ हजार दाम देकर सावन भादों की तरह रुपयों की झडी लगादी।

शाहजादा औरंगजेब के शब्दों में बूंदी के परगने मऊवारां १४०० गावों सहित कोटावालों को मिल जाने से हाडाराव अवश्य ही उदास हों तो हो सकता है किंतु जब वह इस तरह इनाम इकराम में, दानपुण्य में लाखों रुपया खर्च करते थे, लाखों ही रुपया खर्च करके उन्होंने बडे २ महल मंदिर बनवाये हैं तब रुपया पैसा उनके लिये अवश्य हाथ का मैल था। इस कारण मुझे कहना चाहिये कि लाखों रुपये की आमदनी के परगने अपने हाथ से निकलजाने और शिरसाटे की स्वामिभक्ति दिखलाने पर भी, बादशाह के अन्याय करने पर भी वह उदास होने वाले व्यक्ति नहीं थे क्यों कि वह "हानि, लाभ, जीवन, मरन, यश, अपयश, विधिहाथ" के सिद्धान्त पर चलकर अपना कर्तव्य पालन करने के लिये अपना प्राण, अपना राज्य और अपना सर्वस्व होमदेने वाले थे। यह बात उन्होंने आगे चलकर दिखला दी है। इसलिये यदि उनके मन पर कुछ खिन्नता थी तो केवल इसीलिये कि उनके पराक्रमी युवराज भावसिंहजी के कोई सन्तान न थी। बादशाह की औरंगजेब के साथ जाने की आज्ञा होने पूर्व उन्होंने राजकुमार भावसिंहजी से एक दिन कहा भी था कि:—

"हमारे अब बाल पक गये। हम अब संग्रामभूमि में मोक्ष पाने के लिये पाहुने हैं। तुम युवा हो। तुम्हारा पुत्र मरगया तो परमेश्वर फिर भी देगा ही। दुर्भाग्यवश सन्तति न हो तो भीमसिंह के पुत्र को गोद ले लेना। हमारे नसीबमें सुख नहीं।"

"आपकी आज्ञा में तिलभर भी अन्तर न होगा। वह शिर पर चढाकर पाली जायगी।" यों नम्रता पूर्वक भावसिंहजी ने निवेदन किया। इससे पाठक समझ सकते हैं कि पुत्रशोक की, पौत्र के वियोग की और युवराज के संतति न होने की इनके हृदय में चाहे जैसी वेदना हो किन्तु यह हर दम हर घडी रणभूमिमें मर मिटनेके लिये तैयार थे। इन्हें निश्चय था कि इनका शरीर समरभूमि में ही विसर्जन होगा। इनके पूर्व पुरुष हालूजी ने रणभूमि में देह छोडकर वीरगति पाने की प्रतिज्ञा भी की थी और केवल इसी उद्देश से अनेक संग्राम करने पर भी जब इसका पालन न हो सका तो उन्होंने अपना

सुभटों का मन बढाने के लिये-उनके उत्साह की समराग्नि में घी की आहुति देकर उसे अधिक २ प्रज्वलित करने के लिये दोनो ही सेना के वीरों में से किसी को जागीर दीगई, किसी को हाथी, घोडे और वस्त्र दिये गये, किसी को शस्त्र दिये गये और इसतरह शाहजादा औरंगजेब ने किसी समय युद्धाग्नि प्रज्वलित करने के लिये पहाडों पर आग लगाई थी वह ज्वाला छोडने के लिये-सैंकडों हजारों आदमियों को भस्म करदेने के लिये दहकने लगी। दोनों ही दलों के नक्कारों पर चोब पडते ही दशों दिशायें गूंज उठीं। घोडे और सुभट रणोन्मत्त होकर घडी २ पल २ मरने मारने की राह तकने लगे। इस जगह कविराजा सूर्यमल्लजीने घोडों के और सुभटों की वीरता का वर्णन करते हुए बडी ही ओजवर्द्धक कविता का प्रयोग किया है किन्तु उसका अनुवाद यहां देने से विस्तार बढता है।

अध्याय ९.

दक्षिणियों से जीत।

गत अध्याय में लिखित तैयारी से शाहजादे औरंगजेब की सेना ने और हाडाराव की वीर वाहिनी ने तीन दिन तक तोपों की मार से मरहठी सेना को व्याकुल करके पहले नासिक पर अधिकार किया जिसके निकट किसी समय भगवान् मर्यादा पुरुषोत्तम, दशरथनंदन राम ने अकेले ही चौदह हजार राक्षसों का संहार कर खर, दूषण, और त्रिशिरा-को काल का कवल बना देने से खरारि की उपमा प्राप्त की थी। ऐसे हाडाओं के पराक्रम से विचलित होकर जब शत्रुओं ने पीठ दिखा दी तब उन्होंने पास ही त्र्यंबक के किले को जा घेरा दिया। इनकी तोपों के बादल समान गर्जन, इनकी बंदूकों की बाढ और इनके शस्त्रों की चमक ने जब किले को जर्जर, शत्रुओं के मनों को कंपित और उनके साहस को छिन्न भिन्न कर डाला तब ये लोग निसैनियां लगा २ कर किले के कोट पर वैसे ही चढ गये जैसे रावण से संग्राम करते समय राम की वानरी सेना कोट पर चढ कर कंगूरे २ होगई थी। इस तरह भीतर पैठते ही अब तोपों और बंदूकों

तीरों और तरकसों को विश्राम मिलने का अवसर आया। दोनों ओर से सूर्य के प्रकाश में अपना प्रकाश मिला कर बिजली की तरह कायरों के हृदय को दहला देने वाली तलवारें, खांडे, कृपाण अपने २ म्यान छोड कर बाहर निकले और बस खेडी की खचाखच मार से लाशों पर लाशें गिरने लगीं। मरहटे सुभट अवश्य ही अभी तक किले के भीतर से हटे नहीं थे। भीतरी आघात से—मरहटों के प्रहार से इनकी सेना के शूर सामन्तों के कंगूरों परसे शिर, धड, हाथ, पैर कटकट कर वैसे ही धरणी का आश्रय लेने लगे जैसे कलाबाज नट रस्से पर से लक्ष चूक कर धरती पर गिर पडता है। ऐसे मरहटों की मार से हाडाओं के नो बहादुर अवश्य ही कट कर वहां टुकडे २ हो गये किन्तु इतनी भारी हानि होजाने पर भी त्र्यंबक गढ ले लिया सो इन्होंने ले ही लिया। नासिक के समान वहां भी हाडाराव के पराक्रम से शाहजादे की विजय पताका जा फहराई।

इस तरह दक्षिण भूभाग के पश्चिम प्रान्त को जीतने पर इनका उत्साह और भी बढा। इन्होंने अपनी सेना की बाग अब पूर्व की ओर मोडी। पहला नंबर बीडर का, जो इतिहासों में—पुराणों में विदर्भ के नाम से विख्यात है, आया। जैसे मतवाला हाथी निःशंक होकर सिंह से जा भिडता है वैसे ही रणमाते हाडा ने बीडर का घेरा देकर मानो पराक्रमी सिंह को अपनी गुहा में से जा निकाला। बस वहां भी इनकी प्रलयकारिणी तोपों ने किले के यवनों को कंपित कर डाला। बीडर का दुर्जेय दुर्ग तोडने की इच्छा से इन्होंने कोट में सुरंग लगा कर उसे उडा दिया। कोट के प्रस्तर समूह धरती पर पडने के बदले सुरंग के जोर से उड २ कर मानो आकाश में किला बनाने लगे और तब तलवारें सूंत कर अपनी २ सिरोही म्यान से निकालते हुए हाडा राव शत्रुशल्यजी शाहजादे औरंगजेब को लिये हुए अपने प्राणों की रक्षक पर्वाह न कर किले में जा घुसे। बस उक्त दो स्थानों की तरह यहां का किला सर हो कर विजय विभूति इनके चरणों से आ चिपटी।

नासिक, त्र्यंबक और बीडर—तीनों स्थानों को विजय कर तीनों ही जगह अपने भरोसे के—प्राण जाने तक भी युद्ध से मुंह न मोडने वाले बांके

बानैतों को रखकर तब इन्होंने कल्याणी पर चढाई की । ऐसे **कल्याणी** पर शाही झंडा उडाने के अनन्तर इन्होंने पांचवें संग्राम में **धामिनी** का विजय किया, **गोलकुंडा** जीता, और **आसेरगढ** भी ले लिया। अवश्य ही इन युद्धों में इन्होंने अनेक सुभटोंके सिवाय अपने सहोदर भाई **राज सिंह** जी को भी खो दिया किन्तु औरंगजेब के यह वाक्य कि–"**दादा हमें जिता दो।**" आज सफल हुए । अपनी प्राण प्रण की चेष्टा से, अपने पराक्रमी हाथों से अपने और अपने शूर सामन्तों के बल से **दक्षिण प्रदेश** पर औरंगजेब का **निष्कण्टक अधिकार** होकर उसका डर, उसकी पहले हार खाने की लज्जा और उसकी घबडाहट जब बिलकुल मिट गई तब यह शाहजादा से छुट्टी ले कर वहां से बादशाह की सेवा में जा उपस्थित होने के लिये बिदा होगये ।

इन्होंने उज्जैन पहुंच कर **सोने का तुला दान** किया और जब दिल्ली में शाहजहां के समीप पहुंचे तो उसने "अब मेरी चिन्ता मिटी" कह कर **इन्हे हृदय से लगा लिया** । इस विजय के उपलक्ष्य में, इस जीत की बधाई में सम्राट् ने इनको हाथी, घोडे, वस्त्र, पांच करोड दाम और टौंक, मालपुरा, केकडी, हथनीगढ, हिंगुलाज, केथोली, पानगढ, औरर भैंसोद–ये **आठ परगने** दिये किन्तु फिर भी मऊ बारां देकर अपनी प्रतिज्ञा का पालन न किया । इसलिये यह यदि खिन्न हो गये हों तो कुछ अचरज नहीं ।

इस प्रकार यह शत्रुओं का संग्राम में विजय कर, बादशाह को जिता कर औरंगजेब के शासन के समस्त **कांटे उखाड** कर संवत १७१० में **बूंदी अवश्य आ गये** परन्तु मरने मारने के सिवाय न तो यह कभी कल से बैठना चाहते थे और न इनके भाग्य में **शांति से विश्राम** लेना बदा था । यहां पहुँचते ही उन्हें खबर मिली कि बादशाह के नये दिये हुए आठ परगनों में से शाही अधिकार उठते ही हिंगुलाज गढ में अखय सिंहजी खींची, सारथले में भीम सिंहजी, और भांगरोल में दूलह सिंहजी गौड जा कूदे । इनमें पहला अभी नया पाया था और दोनों पहले से इनके अधिकार में थे ।

बूंदी पहुंच कर अपने संगी **साथियों को रीझ** इनाम देने के अनन्तर इन्होंने पहला काम यही किया कि यहां के दुर्ग तारागढ से अपनी मार से

शत्रु सेना की धूलधानी करदेने वाली धूलधानी और बिजली की कडक की तरह शत्रु के हृदय दहला देने वाली कडक बिजली—ये दोनों तोपें उतरा कर अपने साथ लीं और केवल दोही दिन राजधानी में ठहर कर फिर युद्ध के लिये प्रयाण किया। पहले इन्होंने तोपें दाग कर शत्रु के छः हजार सुभटों को मार कर अक्षय सिंह का क्षय करने के अनन्तर हिंगुलाज पर अपना अधिकार जमाया। इसी तरह शेष तीनों परगनों को जीत कर जब इन्होंने थाने वहां जमा लिये तब इन्हें बूंदी लौटकर विश्राम लेने का अवसर मिला। विस्तार भय से यहां इनका अधिक वर्णन न लिखा जाय तो जुदी बात है किन्तु इस चढाई में भी इन्हें साल भर के लगभग लग गया था। क्योंकि जब यह बूंदी पहुंचे तब संवत् १७११ था। इस युद्ध में इनके अनेक सामन्त काम आये।

ऊपर का लेख "वंशभास्कर" में वर्णित घटना का सारांश है। जो लेख इसमें है वही "वंशप्रकाश" में है और विश्वनाथ पंडित कृत "शत्रुशल्य चरित्र" में। टाड साहब के ग्रंथ में भी स्पष्ट शब्दों में इन बातों का अनुमोदन किया गया है। वह इस विषय को इस तरह लिखते हैं:—

" जब शाहजहां ने यह साम्राज्य अपने चारों पुत्र—दारा, औरंगजेब, शुजाअ और मुराद में बांट कर चारों को चारो जगहों का वाइसराय नियत कर दिया तो छत्रशाल दक्षिण में औरंगजेब के अधीन उच्च कोटि का सेनापति था। उस समय जितने विजय, जितने आक्रमण हुए उनमें और विशेष कर दौलताबाद और बीडर के हमले में अपना असीम पराक्रम दिखला कर उसने बहुत ही नाम पाया। अंतिम युद्ध में उसने अपनी ही तलवार वजाकर किला खाली करा लिया। संवत् १७०९ (सन १६५३) में गुलबर्गा तुमुल संग्राम के बाद उसीके सीढी लगा कर चढजाने से सर हुआ। यह अंतिम समर डमौनी के सुदृढ दुर्ग पर हुआ। बस इसमें विजय प्राप्त होते ही दक्षिण वालों के स्वराज्य रक्षा का—संग्राम भूमि में खडे रहने का अंत आगया और वहां शान्ति स्थापित हो गई।"

अवश्य ही टाडसाहब के मत में और बूंदी के इतिहास में कुछ नामों का अंतर है किन्तु दोनों का आशय एक ही है और दोनों का परिणाम भी एक ही। और इसीलिये मैंने ऊपर "अनुमोदन" शब्द व्यवहृत किया है। अस्तु! अब मुझे यह देखना है कि इस विषय में "शाहजहां नामा" क्या कहता है। उसमें जिन बातों का उल्लेख किया गया है उनका मतलब यह है। उसमें इस चरित्र के आठवें अध्याय में लिखी हुई घटनाओं के अनंतर और औरंगजेब के दक्षिण में पहुंचने पूर्व खानजमां का साहूजी पर हमले करने का और २ भी वर्णन किया गया है। उसकी सेना के तीन दलों में से एक के सरदार राव शत्रुशल्यजी भी थे किन्तु साहूजी सिवाय भागे २ और मारे २ फिरने के कहीं भी इनके सामने न हुए। यहां तक कि जब माहोली के किले में साहूजी घिर गया तो तंग आकर उसने खानजमां से कहलाया भी कि "मुझे बादशाही अमीरों में दाखिल करलो" किन्तु खानजमां ने यही उत्तर दिया कि "आदिलखां की नौकरी स्वीकार करलो नहीं तो तुम्हारा बचना कठिन है।" इस पर उसने निजामुल्मुल्क का दामाद जो उसके पास था उसे खानजमां के शरणागत और किसी समय के साहूजी के साथी रण दूलह के सिपुर्द कर दिया और संधि का प्रस्ताव करने के लिये एक बहुत लंबी चौडी अर्जी लिखकर भेजी। बादशाह ने उसकी सब शर्तें मंजूर कर लीं और उसने जुनेर, त्र्यंबक, त्रिंकलवाडी, हरीस, जोधन, जूद और हरसरा के किले सौंप देने का लेख भी लिख दिया। इस अवसर में खानजमां शाहजादे औरंगजेब की सेवा में दौलताबाद जाकर हाजिर हुआ। इसके अनंतर शाहजादे को दक्षिण से रवाना करके वैशाख शुक्ला ३ संवत् १६९४ में बादशाह की सेवा में जा पहुंचाया किन्तु उसके मत से न तो औरंगजेब को ही अपने हथियार का कुछ जौहर दिखलाने का अवसर मिला और न हाडाराव शत्रु शल्यजी ने ही कुछ किया कराया। हां खानजमां ने बातों ही बातों में वीर साहूजी का सिंहपन छुडाकर उसे मोम बना डाला।

खैर ! **औरंगजेब** की इस मुहिम में यदि कुछ न हुआ तो जाने दीजिये। दूसरी चढाई में ही सही। शाहजादा शादी के लिये छुट्टी लेकर आया था और संवत् १६९४ में फिर दक्षिण की ओर विदा हुआ। इस बार पिता से **बगलाना** विजय कर अपनी जागीर में मिला लेने की भी आज्ञा लेता गया और उसने बगलाने में अधिकार भी जमा लिया। इसके बाद शाहजादा कई बार बादशाह शाहजहां के पास आया गया किन्तु राव शत्रुशल्यजी के उसके पास नियत होने पर भी कोई बात ऐसी नहीं हुई जिससे हाडा रावकी वीरता प्रदर्शित होती हो। यहां तक कि इस पुस्तक के मत से जिसका और ग्रंथों में स्वप्न तक भी नहीं है राव **शत्रुशल्य जी** दक्षिण की सरदारी से हटा कर शाहजादा दाराशिकोह के साथ **काबुल की चढाई** पर भी भेज दिये गये किन्तु अन्य इतिहासों के देखने से कहा जा सकता है कि वह निःसंदेह अटक पार कभी नहीं गये और एक बार के सिवाय जिसका उल्लेख गत प्रकरणों में हो चुका है उन्हें जाने की आज्ञाभी नहीं दीगई।

अस्तु ! शाहजहांनामे के मत से ज्येष्ठ शुक्ला २ संवत् (?) को बादशाह ने **औरंगजेब के फकीर** हो जाने के इरादे और उसकी दूसरी हरकतों से नाराज होकर उसे मनसब और दक्षिण की हुकूमत से दूर किया और मालवे के सूबादार खानदौरां को दक्षिग जाने की आज्ञा देकर पृथ्वीराज जी राठोड के दौलताबाद की किलेदारी पर और शिवरामजी गौड को आसेर गढ की किलेदारी पर नियत कर दिया गया। कुछ अर्से बाद खान-दौरां को वापिस बुलाकर (आमेर नरेश) राजा जयसिंहजी को उसकी जगह दीगई और बेगम साहबा की शिफारिश से औरंगजेब का अपराध क्षमा कर उसका **मनसब फिर बहाल** कर दिया गया। अब उसे दक्षिण के बदले **गुजरात** की सूबेदारी दी गई और फिर यह **बलख** का विजय करने के लिये भेज दिया गया। इस पुस्तक की राय में **हाडाराव** शत्रुशल्यजी बलख की मुहिम में (अटक नदी के पार उतर के अपने पूर्वजों की प्रतिज्ञा को पैरों से कुचलते हुए) औरंगजेब के साथ गये। केवल यह एक बार ही

न गये किन्तु दूसरी बार शाहजादा दारा शिकोह के साथ भी गये । और **काबुल, कंदहार** में उन्होंने कई लडाई में संयुक्त हो कर अपना **पुरुषार्थ** भी दिखलाया । किन्तु जब "टाडराजस्थान" में अटक पार जाने का उन्होंने स्वप्न तक नहीं देखा और जब बूंदी के एक, दो नहीं तीन इतिहास स्पष्ट रूप पर कह रहे हैं तब मेरा मन तो यही साक्षी देता है कि वह नहीं गये क्योंकि जो अपनी बात रखने के लिये मरना जानता है जिसने पहले से युद्ध में मरना जान लेने पर भी रणभूमि में प्राण विसर्जन करके दिखला दिया है कि प्रतिज्ञा पालन ऐसे किया जाता है वह **कभी नहीं जा सकता ।**

खैर ! कुछ भी हो । कंदहार से वापिस आने पर शाहजादा औरंगजेब संवत् १७०९ की भाद्रपद कृष्णा २ को फिर दक्षिण की ओर रवाना हुआ । वहां पहुंचनेपर मीर जुमला पकडा गया, शाहजादे का पुत्र मुहम्मद सुलतान गोलकुंडे का विजय करने के लिये भेजा गया, गोलकुंडे में शाहजादे का कुतबुल्मुल्क से जंग भी खूब हुआ किन्तु अंतमें उसने हार खा कर अपनी बेटी औरंगजेब के लडके को विवाह दी । इस तरह विवाह बंधन में बंधकर ये दोनों शत्रु से मित्र बन गये । संवत् १७१३ में शाहजादे की **बीजापुर** पर चढाई और उसमें एक अवसर पर वैशाख शुक्ला १० के युद्ध में **हाडाराव** शत्रुशल्यजी का महावतखां आदि के साथ रहकर दक्षिण वालों को अपना **पुरुषार्थ** दिखाने का संकेत भी किया गया है । उसमें तिलंगाने, झंझोली और कल्याणी के विजय का भी उल्लेख है किन्तु इस विजय के अनन्तर औरंगजेब का औरंगाबाद जाकर इस मुहिम की "इतिश्री" । इस युद्ध की कितनी ही घटनायें इस तरह बूंदी के इतिहास से मिलती जुलती हैं । साल संवत् में भी कुछ विशेष अन्तर नहीं है किन्तु यदि अन्तर है तो बहुत बडा, धरती आकाश का सा, दिन रात के बराबर । इधर बूंदी के इतिहासों में दक्षिण विजय की प्रधानता हाडाराव को देकर उन्हीं के पुरुषार्थका यश गाया गया है । इतिहास भी एक नहीं तीनों में और उधर "शाहजहां नामे" वाले ने एक बार इनका थोडा सा पराक्रम दिखाकर फिर कहीं इनका नाम तक नहीं लिखा है । ऐसे समय में कौन कह सकता है कि इनमें सच्चा कौन और झूंठा कौन ।

किन्तु इसका निर्णय करने के लिये मेरे पास दो गवाह भी मौजूद हैं। एक संस्कृत भाषा में "शत्रुशल्यचरित्र" के रचयिता पंडितवर **विश्वनाथ** और दूसरे सुप्रसिद्ध इतिहास लेखक **टाडसाहब**। एक उस समय मौजूद थे और दूसरे ने आज से चार बीसी और तीन वर्ष पहले राजपूताने की प्रत्येक रियासत में घूम २ कर, पुरानी ख्यातों को खोज २ कर, एक दूसरी से मिलान कर २ के ख़ूब छान वीन के बाद लिखा है। उधर 'शाहजहांनामे' के लेखक मुंशी देवी प्रसादजी पक्के खोजी हैं और उन्हें किसी प्रकार का पक्षपात भी नहीं। हां! मुसलमान इतिहासकारों ने हिंदू नरेश के हाथ से औरंगजेब को जिताना दिखलाने से अपनी न्यूनता समझ कर कुछ पक्षपात किया हो तो जुदी बात है। ऐसी दशा में इस बातके निर्णय का काम प्यारे पाठकों के न्याय पर छोडता हूँ। हां मेरी रायमें टाड साहब का अनुमोदित **बूंदी का इतिहास** सच्चा है।

इस अध्याय को समाप्त करने पूर्व यहां एक बात और लिख देने योग्य है। बादशाह जहांगीर के शासन काल में पति के अपना सर्वस्व अर्पण कर जिस **नूरजहां बेगम** ने बादशाह को अपना क्रीतदास बना लिया था, जो बादशाह के नाम से दिल्ली के बृहत् साम्राज्य का स्वयं शासन करती थी, जिसका नाम शाही सिक्के तक में मौजूद था और जो एक समय एक साधारण सर्दार की पुत्री और दूसरे समय एक साधारण सर्दार की अर्द्धांगिनी बनने के अनन्तर अपने असली पति के मारे जाने पर सम्राट् की प्यारी बनी थी और जिसने शाह की मौजूदगी में स्वर्ग सुख का ख़ूब अनुभव किया था वही शाहजहां के शासन में केवल दो लाख रुपया साल की जागीर से अबतक अपने घटते दिन पूरे कर विधवा पन भोग रही थीं उसी नूरजहां बेगम का नूर संवत् १७०२ की पौष शुक्ला १ को इस संसार से कूच कर गया। इसकी मृत्यु से बादशाह शाहजहां को दुःख हुआ या नहीं, जहांगीर के मरने बाद इन मा बेटों में कैसी पटती थी सो इन इतिहासों में नहीं लिखा है। लिखने से कुछ प्रयोजन भी नहीं है। जो कुछ होना था सो हो गया। इसका देहान्त लाहौर में हुआ। हां! इस अध्याय को समाप्त करने पूर्व मुझे यहां इतना

अवश्य लिख देना चाहिये कि नूरजहां की जगह कोई हिन्दू नरेश की हिन्दू रमणी होती तो अवश्य ही पति की चिता में अपना प्राण होम कर जन्म जन्मांतर तक उसका साथ न छोडती।

अध्याय १०.

शाहजादों में फूट।

इस तरह लडाई झगडों में तीस इकतीस वर्ष लगे रहने के अनन्तर संवत् १७१४ में बादशाह शाहजहां को बीमारी ने आ घेरा। उमर भी उसकी बुढापे में जा पहुंची थी। रोग भी ऐसा वैसा नहीं मूत्रकृच्छ्र,जो मरते दम तक रोगी का साथ देकर उसके शरीर से पहले जाना कभी सीखा नहीं। बूंदी के इतिहास, टाड साहब और अब शाहजहांनामे के मत से वह अपने साम्राज्य को अपने पुत्रों में विभाजित उनकी शक्ति सीमा से बाहर बढा चुका था। बस "वंशभास्कर" के लेखानुसार उसने अपने राज्य शासन का भार अपने प्यारे पुत्र जिसे अपने मन में, कामों में और वर्ताव में दिल्ली का बादशाह बना चुका था, उसी शाहजादे दारा शिकोह पर डाल कर रोगकी पीडा से निवृत्ति पाने के उपाय करने में संलग्न हुआ। उसके और २ पुत्र बल में, पराक्रम में, बुद्धि में दारा से कम नहीं थे और सब ही एक दूसरे का विजय कर दिल्ली के सुशोभित सिंहासन पर विराज कर इन्द्र समान वैभव का अनुभव करने के लिये मन-मोदक बना रहे थे। औरंगजेब तो यहां तक चाहता था कि अपने जन्म-दाता पिताको जो हिन्दुओं के मत से परमेश्वर से दूसरे दर्जे पर आसन पाने योग्य है कैद करके और भाइयों का सर्व नाश कर दिया जाय और तब आप निष्कंटक होकर राज्य करें। "शाहजहां नामे" में ठीक लिखा गया है कि:—

"कैसे खेद की जगह है कि शाहजहां बादशाह जिनको जमाने ने हर तरह मदद दे कर हरा भरा कर रक्खा था और जो बेटों के मोह जाल में फंस कर नतीजे को भूले हुए थे एक दम तकदीर के पलट जाने से किसी लायक न रहे। जिनका हुक्म हजारों कोसों में चलता था, जिनके पास ३

लाख से भी अधिक सेना थी वह ऐसे लाचार और बेवश हुए कि अपने घर की भी रक्षा न कर सके । जिस सलतनत के लिये उन्होंने अपने बे गुनाह भाइयों की जान ली थी वही यों बेवफाई करके उनको बुरे हालों छोड गई । इनके परदादा हुमायूं बादशाह को जो फल भाइयों के साथ हद्द से ज्यादह मिहर्वानी करने का मिला था उससे गाफिल रहकर इन्होंने जो अंधाधुन्ध मुहब्बत अपने बेटोंके साथ की उसका नतीजा उससे भी बदतर पाया जब उन्होंने अपने बेटे (औरंगजेब) को लिखा था कि यह दुनिया दारुल्मुकाफात[1], है तो उस वक्त उनका दिल उनसे पुकार २ कर कहता होगा कि यह बदला उस वर्ताव का है जो तूने अपने बापके साथ किया था । बाप से बागी होना बादशाहों के खानदान में कई पीढियोंका विरसा[2] था । पहले जहांगीर ने अपने बाप, अकबर के साथ बगावत की मगर पर्दे के साथ फिर शाहजहां ने इस धडल्ले से की कि बापके ऊपर चढकर गये । हजरत, औरंगजेब सबसे सुपूत निकले । उन्होंने तख्त, और ताज छीनकर बाप को कैद ही कर लिया ।"

पाठकों को इसके पढने से मालूम हो जायगा कि बेटों को शिर पर चढाने का बादशाह ने क्या फल पाया । यह इसका नतीजा है किन्तु यहां संक्षेप से यह भी लिखना होगा कि ऐसा फल किस तरह से मिला और मरते दम तक हाडाराव ने क्योंकर बादशाह का साथ दिया और कैसे रण भूमि में अपने प्राण विसर्जन करके असाधारण पराक्रम दिखलाया ।

"शाहजहां नामे" में इन घटनाओं के विषय में जो कुछ लिखा है उसका सारांश यह है कि बादशाह ने मोहजाल से अपने चारों पुत्रों को अलग २ सूबे देकर राज्य के अधिकार भी देदिये थे । दारा शिकोह बडा था और उस पर प्यार भी अधिक था इसलिये उसे अपनी आंखों की ओट न किया किन्तु शेष तीन शाहजादों को पूर्व, पश्चिम और दक्षिण का शासन भार सौंप कर भेज दिया । दारा को अपने पास रखकर बादशाह सदा अपने भाइयों से मेल रखने और नेक बर्ताव करने की ताकीद किया करता था परंतु

---

१ दुनिया की कोई बात स्थिर नहीं है । २ विरासत में मिला था ।

होनहार कुछ और ही था। लोगों की बहकावट से ईर्षा की आग जो भीतर ही भीतर सुलग रही थी एकदम भड़क उठी। बादशाह की बीमारी के दिनों में शाह बुलंद इकबाल ने कागजों का आना जाना बंद करदिया था इसलिये देश भर में प्रसिद्ध होगया कि बादशाह मर गया। बस शाहजादा मुराद बक्श ने दीवान मीर अलीनकी को मार कर गुजरात में अपने नाम की दुहाई फेर दी। और उधर शाहजादा शुजाअ अपनी सेना लिये हुए बंगाले से चल कर बादशाही खालसे के परगनों को अपने अधिकार में करता हुआ बनारस तक आ पहुंचा।

बादशाह ने मुराद की चाल पर विशेष ध्यान न देकर दारा के बेटे सुलेमान शिकोह की सर्दारी में शुजाअ पर सेना भेजी। शाह बुलंद इकबाल (दारा) ने अपना नायब बहादुर खां विहार का सूबादार नियत भी कर दिया। इसतरह काम के आदमी बादशाह के पास से निकल गये। बनारस में दोनों सेना का संग्राम हुआ और शाह शुजाअ घबडा कर अपना डेरा डंडा छोड कर भाग गया। उसने बाप से अपने अपराधों की क्षमा मांगी और भोले बादशाह ने उसे शिक्षायें देकर बंगाले की सूबेदारी पर बहाल भी रक्खा। सुलेमान शिकोह और सेना को वापिस बुला लिया गया।

अब बादशाह को बिलकुल आराम होगया था। उसने दिल्ली को लौट जाना चाहा किन्तु दारा ने इसमें ढील डाल कर बाप को समझाया कि "मुराद ने आपकी बंदगी करना छोड दिया है इसलिये अहमदाबाद का सूबा उससे छीन कर बराड उसे जागीर में दे देना चाहिये और यदि न माने तो उसे पकडा मंगाया जाय। उधर औरंगजेब कुतुबुल्मुल्क की नजर का रुपया सेना भर्ती करने में खर्च करके जंग का सामान तैयार कर रहा है और आपके कुशल पूंछने के बहाने से सेना चढा कर इधर चला आ रहा है। उससे कुल सेना और खजाना मंगवा लिया जाय।"

बादशाह का दिल ऐसा करना नहीं चाहता था किन्तु दारा ने दबाव डाल कर करवा डाला। शाही सजावलों के पहुंचते ही औरंगजेब की सेना में खलबली मच गई। महावत खां आदि बिना छुट्टी शाहजादे को छोड

कर चले आये और आते २ मुअज्जिम खां तथा शाह नवाज खां को औरंग-जेब ने कैद कर दौलताबाद के किले में भेज दिया । शाहजहां ने अपने ही हाथ से औरंगजेब को लिखकर भेजा कि--"उन निरपराध सैयदों को छोड दो। और अपनी हद्द से एक कदम भी बाहर न रक्खो।" ऐसे ही शाहजादे मुराद् बख्श को लिखा कि--"हम पिता की मुहब्बत से तुम्हारे अपराधों से आंख छिपा कर लिखते हैं कि तुम बराड के परगने में चले जाओ। वही हम तुम्हें देते हैं न जाओगे तो सजा पाओगे।" अवश्य ही दोनों ने इन फर्मानों पर बहुत से उज्र किये और दारा ने बाप को दबाकर जोधपुर नरेश यशवन्त सिंहजी को मालवे की सूबादारी दिलाई और बहुत सी सेना लेकर उस ओर भेज दिया। इसी तरह अहमदाबाद की सूबादारी पर सेना सहित कासम खां भेजा गया। उधर दोनों शाहजादों की सेना में और इधर इन दोनों सर्दारों के दलों का उज्जैन के निकट सामना हुआ। संग्राम बहुत ही भयानक हुआ और बहनोई अमर सिंह जी राठोड का घातक अर्जुन गौड और कोटे वाले राव मुकुंद सिंह जी बडी बहादुरी के बाद बादशाही सेना की ओर से लडकर काम आये और तब कासम खां और यशवन्त सिंहजी ने भाग कर अपनी २ जान बचाई।

यह खबर पाकर बादशाह ने अब संवत् १७१४ की ज्येष्ठ कृष्ण १३ को बहुत बडी सेना के साथ शाहजहां दाराशिकोह को दोनों पुत्रों का दमन करने के लिये भेजा। इस तरह जब दारा बिदा होगया तब बेगम साहबा ने औरंगजेब के नाम लिख कर भेजा कि--

"बडे भाई से जो युवराज भी है लडना बाप से कुश्ती करना है। यह बात सच्चे धर्म को मानने और परमेश्वर को पहचानने की नहीं है। अपने मालिक का सामना करने और इस रमजान के महीने में दोनों ओर के मुस-लमानों के मरवाने से डर कर जहां यह पत्र पहुंचे वहीं ठहर जाओ और अपनी अर्जी लिखकर भेजो सो मंजूर करवा दीजायगी।"

जब यह पत्र पहुंचा तो साथ ही उसके पास यह भी खबर पहुंची कि दारा शिकोह ने धौलपुर पहुंचकर चंबल नदी के सब घाट रोक लिये हैं। उसने पिता की सेवा में इस तरह लिख भेजा किः--

"बडे शाहजादे ने आपका अधिकार लेकर मेरी खराबी पर कमर बांधी है। ठीक ऐसे अवसर पर जब बीजापुर की मुहिम मनमानी समाप्त होने वाली थी खूब ताकीद लिखकर उसने मेरे पास से सेना वापिस बुला लेने का कौसल किया। बिना अपराध मुझ जैसे आपका हुक्म उठाने वाले बेटे से वराड का सूबा उतरवा कर उसने उस कुपूत को दिलवा दिया जो बहुत सी बे अदबी और आज्ञाओंका भंग कर चुका है। इसपर भी संतोष न करके यशवंत सिंह को मेरा सामना करने के लिये भेजा। वह चाहता है कि एक हथेली भर जमीन भी मेरे पास न रहै। आपको बिलकुल अधिकार नहीं है। जैसा वह कहता है वैसे ही आप करते हैं। उसकी खातिर से दूसरे बेटों को शत्रु समझ कर उसकी इच्छा के अनुसार लिख भेजते हैं। यह हाल देख कर मैंने ठान लिया है कि आप की सेवा में स्वयं उपस्थित होकर असली हाल आपको समझा दूं। आपके चरणों का चुंबन करने के सिवाय मेरा और कोई इरादा नहीं है। यदि और तरह होता तो राजा (यशवन्त सिंहजी) और उसके साथियों को पकड लेना कौन बडी बात थी! अब सुना है कि दारा मुझसे लडने के लिये धौलपुर पहुंचा है किन्तु मुझ जैसे सयाने शत्रु से उसका विजय पाना कठिन है। उत्तम यही है कि वह टाला देकर पंजाब को अपनी जागीर में चला जावै और हुजूरी कामों को मेरी राय पर छोड दे। फिर जैसी आपकी आज्ञा होगी किया जायगा।"

इस पत्र को पाकर बादशाह ने क्या किया अथवा पत्र ही न पहुंचा सो कुछ मालूम नहीं किन्तु परिणाम यही हुआ कि बाप की गादी पाने के लिये धौलपुर के मैदान में दोनों भाइयों का घोर संग्राम हुआ। उस युद्ध का वर्णन आगामि अध्याय के लिये छोड कर यहां तक जितना अंश "शाहजहां-नामे" से लेकर लिखा गया है उसका मिलान बूँदी के इतिहास ग्रंथों से कर लेना उचित है। "टाडराजस्थान" में इस घटना का जो उल्लेख किया गया है उसका मर्मानुवाद यह है किः--

"जिस समय दक्षिण में इस तरह की लड़ाइयां हो रहीं थीं गप्प यह उडी कि बादशाह शाहजहां का देहान्त होगया। उन दिनों बीस दिन तक शाहजहां का दर्बार नहीं हुआ था। यहां तक कि वह खानगी में भी किसी से मिला भेटा नहीं इसलिये लोगों ने मान लिया कि यह खबर सच्ची है। उस समय केवल दारा शिकोह ही शाही दर्बार में मौजूद था। जो भाई वहां उपस्थित नहीं थे वे अब बादशाही सिंहासन हस्तगत करने के लिये नाना कौसल रचने लगे। जब शुजाअ ने बंगाल से कूच किया तो औरंगजेब दक्षिण से बिदा हुआ। उसने मुराद को बँहकाया कि--"मैं तो एक तरह का दरवेश सा हूँ क्योंकि मुझे संसार की कोई विषय वासना नहीं। मैं अब केवल एकान्त में अपना जीवन बिताना चाहता हूँ। इस तरह रहकर (हजरत) मुहम्मद (अले सलाम) के पक्के अनुयायियों की सी कठिन तपस्या करूंगा। दारा काफिर है, शुजाअ नास्तिक, और मैंने संसार ही त्याग दिया है। केवल आप–शाहजहां के शाहजादों में से आप ही एक ऐसे हैं जो इस साम्राज्य का शासन करने के योग्य हैं और आप ही को राज्य दिलाने के लिये मैं उद्योग कर रहा हूं"–इस तरह बँहका कर उसने मुराद को अपने शामिल कर लिया।"

"बादशाह ने औरंगजेब का इरादा शत्रुता युक्त जान कर हाडानरेश के नाम खानगी में लिख भेजा कि तुरंत हमारे पास आ उपस्थित हो। यह आज्ञा पाते ही छत्र शाल (जी) ने समझ लिया कि इसका परिणाम क्या होगा किन्तु सोचा कि हम जब गद्दी के सेवक हैं तो आज्ञापालन करना ही हमारा कर्तव्य है। उसने तुरंत ही दक्षिण से बिदा होने की तैयारियां कर लीं। इस बात की खबर जब औरंगजेब के कान में पहुंची तो उसने हाडा नरेश से इस तरह शीघ्र ही चलने का इरादा करने का कारण पूंछते हुए कहा कि हम भी तो अब शीघ्र ही हाजिर होना चाहते हैं। हमारे साथ २ चलना। राजा ने उत्तर दिया–"मेरा पहला कर्तव्य बादशाह की आज्ञा का पालन है।" और बादशाह का फर्मान दिखलाया। औरंगजेब ने उसी समय आज्ञा देदी कि "तुम नहीं जाने पाओगे" और उनके शिविर घेर लेने का

भी साथ ही हुक्म दिया । परंतु छत्र शाल (जी) पहले से इस बात को जानता था इसी लिये उसने पहले ही से अपना सारा सामान भेज दिया था। बस उसने अपने उन साथी सर्दारों और नरेशों का जो शाह की सेवा करने पर उद्यत थे एक गोल बनाकर वहांसे कूच कर दिया और इस पर औरंगजेब की सेना ने इन लोगों का पीछा भी किया किन्तु कोई इन पर आक्रमण करने का साहस न कर सका । नदी किनारे के निकटवर्त्ती सोलंखी जागीरदारों की सहायता से नर्मदा नदी में चोमासे की भारी भयावनी बाढ होनेपर भी पार हो गये । औरंगजेब पहले ही से छत्र शाल (जी) की चतुरता और वीरता का खूब परिचय पाचुका था इस लिये उसने उसके पीछा करने का इरादा छोड दिया और इस तरह वह प्रसन्नता से बूँदी जा पहुंचा । "

ऊपर "शाहजहांनामा" और "टाड राजस्थान" से लेकर इस घटना का उल्लेख कर दिया गया । ऐसा करने में कुछ विस्तार अवश्य हो गया और जो बात इनमें लिखी जा चुकी उसे यहां दुहराना भी निष्प्रयोजन है इसलिये अब बूँदी के इतिहास से लेकर यहां उन्हीं घटनाओं का उल्लेख करने की आवश्यकता है जिनमें या तो उनसे इसका मत भेद माऌम होता है अथवा विशेष लिखी गई है। "वंशभास्कर" में लिखा है कि इस प्रकार भाई भाइयों में कलह का सूत्रपात होते ही समराग्नि में घी की आहुति पडकर उसकी ज्वाला उठते ही जिस समय एक ही बाप के चार पुत्र उधर आपस में कट मरने को तैयार हुए हाडाराव ने अपने बिछुडे हुए भाई का अपराध क्षमा करके उसे याद किया । इनके पंचम बंधु इनका साथ छोड कर शाहजादे शुजाअ की सेवा में रहते थे। उन्ही मुहकम सिंहजी के नाम एक स्नेह पूरित पत्र लिखकर बुलाया और जब वह आगये तो उनकी जागीर का दुगारी नगर उन्हें लौटा दिया । बादशाह ने भी पुत्रों के कलह से अपनी खैर न समझ कर हाडाराव को प्रसन्न करने के लिये पहले देकर छीन लिये हुए दो परगनों में से मऊ का परगना इन्हें वापिस देदिया और शत्रुशल्यजी ने ग्यारह वर्ष के अनंतर उसपर युवराज भावसिंहजी को भेज कर अपना अधिकार भी कर लिया ।

"शाहजहांनामा" और "टाड राजस्थान" से उज्जैन के युद्धमें स्वयं शाहजादा दारा शिकोह का संयुक्त होना विदित नहीं होता किन्तु "वंशभास्कर" को देखने से माल्हम होता है कि औरंगजेब और मुराद की सम्मिलित ८० हजार सेना का सामना करने के लिये अपनी ६२ हजार सेना लेकर वह स्वयं गया था। "शाहजहांनामे" के मत से इस सेना के मुख्य नायक जोधपुर नरेश यशवंत सिंहजी थे और इस में उनका, कोटा नरेश मुकुंद सिंहजी का, और रतलाम राज्य के संस्थापक रत्नसिंहजी का शाहजादे के साथ जाना बतलाया गया है। उस इतिहास में जिस प्रकार यशवन्त सिंहजी का लडाई के मैदान से भाग जाना लिखा है उसी तरह इस ग्रंथ में उनकी न्याई टोडा नरेश राय सिंहजी का भी पलायन करजाना लिख दिया गया है। दोनों इतिहासों में कोटा नरेश मुकुंद सिंहजी का और अर्जुनजी गौड का संग्राम में तलवार बजा कर एक ही तरह मारा जाना और यों वीर गति पाने का उल्लेख है। "वंशभास्कर" में उस इतिहास से यदि सब से बढ कर और विशेष बात है तो यह है कि शाहजादा दारा शिकोह की हार इस कारण हुई कि वह लडाई के घमासान के समय हाथी से उतर कर घोडे पर क्या सवार हुआ मानो दिल्ली के सिंहासन से ही उतर गया। युद्ध का वर्णन करने में कविराजा सूर्यमल्लजी असाधारण थे। उन्हों ने यहां पर भी जिस कविता का प्रयोग किया है वह वास्तव में बडी ही ओजवर्द्धक है। उनके काव्य में सब से बढ कर यह गुण है कि उसे पढ कर यदि कायर की नसों में भी वीरता का संचार न हो तो उन्हों ने रचना ही क्या करी। अंत में दोनों सेना के हजारों सुभटों का समराग्नि में होम होकर अथवा तलवार की धारा से वीरों की लाशों का मूसलाधार मेह बरस कर जीत औरंगजेब की हुई और संवत् १७१४के उज्जैन के जंग में औरंगजेब के नसीब ने जोर मारा। दारा भाग निकला। वह भागकर जब पिता के पास पहुंचा तब शाहजहां ने उसे फटकारा भी बहुत। उस ने बडे पुत्र से कहा कि:—

"मैंने तो पहले ही समझा दिया था कि तू लडने को मत जा। मैं दोनों पुत्रों को समझा बुझाकर ले आऊंगा। तैने मेरा कथन न मान कर अपनी मोछें लजा दीं।";

खैर ! इसके अनंतर जैसे टाड साहब ने बादशाह का हाडाराव को बुलाना लिखा है वैसे ही "वंशभास्कर" में भी लिखा गया है । "शाहजहांनामे" में यद्यपि इस घटना का उल्लेख नहीं है परंतु जब शत्रुशल्यजी उसके मत से धौलपुर के मैदान में दारा की ओर से लड कर मारे गये तब बुलाये जाने में संदेह ही क्या ? हां ! टाड साहब ने उन को उज्जैन के युद्ध में से बुलाना, औरंगजेब के नाहीं करने पर भी उनका चला आना और उसके कोप की तिनके के समान पर्वाह न करना लिखा है । "शाहजहांनामे" से विदित नहीं होता कि वह उज्जैन के युद्ध में संयुक्त थे अथवा नहीं । "वंशभास्कर" से भी यह बात स्पष्ट नहीं होती । हां ! टाड साहब ने इसका उल्लेख करते समय हाडाओं के इतिहास का हवाला अवश्य दिया है । बस इस तरह इन इतिहासों के परस्पर मत भेद का यही दिग्दर्शन है ।

इससे आगे क्या हुआ सो आगामी अध्याय के लिये छोड कर यहां प्रसंगोपात्त एकाध घटना और प्रकाशित कर देने योग्य हैं । घटना यही कि हाडाराव शत्रुशल्यजी की पुत्री **कर्मवती जी** जिनका पाणिग्रहण जोधपुर **नरेश यशवन्त सिंहजी** से होना पहले किसी अध्याय में लिखा जा चुका है, एक वीर पिता की वीर कन्या होकर जब यह वीरप्रसू माता के गर्भ से पैदा हुई थी, जब बडे २ पराक्रमी पुत्रों का जन्म देने ही के लिये इस वीर नारी ने संसार में जन्म लिया था, तब यह जानती थीं कि जिसका नाम है उसका नाश है और साथ ही इन्हें भली भाँति विदित था कि जैसे एक वीर पति का कर्तव्य रणभूमि में मारना और मर मिटना है और तब पति का वीर गति से परलोक वास होने पर प्यारे की चितामें चढ जाना सीधा स्वर्ग को जाना है क्यों कि जैसे यह पति की सेज पर चढने में संसार के सुख की इतिश्री समझती थीं उसी तरह पति की चिता पर चढना स्वर्ग का सोपान था । ऐसी दशा में प्राणनाथ के संग्राम में से पलायन कर आने पर इन्हें यदि असह्य दुःख हुआ हो तो आश्चर्य क्या ?

बस जिस समय पतिदेव जोधपुर पधार कर इनसे मिलने आये इन्हों ने स्वामी शत्रु के डर से भाग आये जान कर शस्त्र तो क्या रसोई घर में कढाई

पर लोहे का बजना तक बंद करा दिया, और हाथी दांत के चूडों को ढांक लिया। राजा ने इतने पर जब संकेत न समझ कर पूंछा तो इन्होंने हँस २ कर पंखा झलते २ निवेदन किया—"नाथ आप हथियार के भय से भाग कर यहां आये हैं। पाक गृह की कढाई, पलटा, तवा आदि भी उसी जाति के हैं जिसकी तलवार, बंदूक, तीर। शायद इन्हें देखकर आप को भय मालूम हो और हार्थी दांत भी वीर गज के दांत हैं। इसलिये दासी ने उनका बजना बंद कर दिया और इनको ढांक लिया है।" पति परमात्मा इस व्यंग्य से लज्जित हुए और फिर युद्ध के लिये तैयार हो गये। इन कर्मवर्तीजी ने आगे जाकर क्या पराक्रम किया सो किसी आगामि अध्याय में लिखा जायगा।

अध्याय ११.

मर मिटने के लिये प्रयाण।

"शाहजहाँनामे" में तो इस बात का उल्लेख नहीं कि हाडाराव शत्रुशल्यजी को बादशाह शाहजहां ने कहां से और किस तरह अपने पास बुलवाया और टाड साहब के इतिहास में जैसा लिखा गया था वैसा गत अध्याय में लिख ही दिया गया। अब "वंशभास्कर" का लेख भी यहां संक्षेप से लिखकर फिर इस चारित्र को आगे बढाना चाहिये। उसको पढनेसे विदित होता है कि अपने पुत्रों में परस्पर के कलह की आग दिन दूनी और रात चौगुनी भडकती और विशेष २ भयावनी ज्वालायें छोडती देख कर बीमारी से कातर, लडकों के हाथ का खिलौना—बूढा बादशाह घबडा उठा। उसने शक्ति भर सहायता देने के लिये सब ही राजाओं को याद किया। उसने हाडाराव के नाम जो फर्मान भेजा उसमें लिखा:—

" (बूंदी रा फर्मान बिच इम लिखियो) आदाब,
भूप सेता थारै भुजां अब म्हारै घर आब।"

---

१ शत्रुशल्यजी। २ मेरे। ३ पानी या शोभा जैसे मोती की आब।

शाहजहां का फर्मान पाकर रणकेसरी, बांके पुरुषार्थी **शत्रुशल्यजी** उदास नहीं हुए किन्तु उन्होंने समझ लिया कि इसका परिणाम क्या है। वह बोले:—

"बादशाह ने पहले जब मऊ का परगना लौटाया तब ही हमने समझ लिया था कि अब शाह को **हमारे शिर की** आवश्यकता पडी। खैर सम्राट् पर इससे भी विशेष और कौन सा संकट पडने वाला है जिसपर बारां का परगना लौटाया जायगा। पहले शाह के और फिर उनके तीसरे कुपुत्र के साथ बडे २ दुर्गम दुर्गों का विजय कर हमने ७९ लाख का मुल्क उन्हें जिता दिया। अब अपने ऊपर महान् संकट मान कर यदि उन्होंने एक दिया है तो बारां का दूसरा परगना भी परमेश्वर दिलावेगा ही। परंतु हां! यह निश्चय है कि सुलतान इस समय **घोर विपत्ति** में पडकर घबडा गये हैं। इसलिये विना मांगे मऊ का परगना लौटा दिया।"

इतना कह कर उन्होंने पहले हिंगुलाज गढ पर अमल करने के लिये किलेदार को भेजा और तब अपने पाटवी पुत्र **भावसिंहजी** को बुला कर उनके ललाट पर अपनी जीवितावस्था में ही **राज तिलक** लगा कर वह कार्य कर दिया जो उनका शरीर छूटजाने के अनन्तर होना चाहिये था। प्यारे पुत्र ने "नाहीं नूंहीं" करने में भी कसर न रक्खी किन्तु पूज्य पिता ने जब यह अच्छी तरह जान लिया था कि इस युद्ध से प्राणों को ले कर यह शरीर घर आने के बदले हमारे **पुरुषार्थ की कीर्ति** ही देश भर में घर २ जा विराजेगी। जब हम न आकर हमारी राजधानी में हमारी वीर गति का संवाद आवेगा तब उन्होंने **हठ न छोडा**। उन्होंने पाटवी पुत्र को बूंदी का नरेश बनाने के लिये अपने ही हाथ से राज तिलक करते हुए कहा:—

"अब इस **राजधानी की लाज** तुम्हें है। हां! इतना हम कहे देते हैं कि क्षत्रिय जाति की, हाडा कुल की चाल छोड कर कभी **शत्रु के पैरों** में न पडना। याद रखना! तुमने उस कुल में जन्म लिया है जिसमें अपने व्रत का **प्राण प्रण से** निर्वाह करने वाले सुरजन

जी जैसे अनेक शूर होगये हैं। स्मरण रहे कि, अपनी बहन गंगा को वय, कुल, घर और वैर का विचार कर योग्य वर को देना।"

ऐसे राज्य का भार भाव सिंहजी के ऊपर डाल कर जब आप निश्चित हुए तब केवल परोपकार के लिये मरना अनिवार्य समझ कर इन्होंने आगरे जाने की तैयारी की। संग्राम के लिये सेना सजाते समय इन्होंने फिर अपने पुत्र को आशीर्वाद देते हुए कहा:—

"हमारी तरह जब तुम्हारी भी उमर निकल जाय तब जानियो कि तुम शूर वीर हो। मरना एक दिन अवश्य है। बस यह जान कर कुल के मार्ग को सदा उज्ज्वल बनाये रखना।"

इस तरह के विचार तरंगों में मग्न होकर समर सागर के पार जाने की उमंग में जब यह अपने शूर सामन्तों को, अपने शस्त्र अस्त्रों को और अपने सुभट सैनिकों को मरने मारने के लिये तैयार करने की धुन में लगे हुए थे तब इनके तीसरे पुत्र भगवन्त सिंहजी और चौथे भारत सिंहजी भी इनकी तैयारी में आ संयुक्त हुए। आये और भगवन्त सिंहजी उसे नाराज करके औरंगजेब के नाहीं करने उपरान्त बूंदी आगये।

बूढे हाडाराव ने मृत्यु के समय बुढापे को छिपा कर जवानी दिखलाने वाले बालों पर खिजाब लगाना छोड दिया था किन्तु नई दुलहिन को वरने के लिये जैसे सजावट की जाती है वैसे अपने अपने वीरों के वस्त्र केसर के रंग से रंगवा कर, समर भूमि में से भागते हुए रोकने के लिये पैरों में सोने के लंगर डाल कर, वस्त्र आभूषणों से सज धज कर, मानो संग्राम सुन्दरी का पाणिग्रहण करने के लिये एक रणदूलह क्या सहस्रों रणदूलह बनगये। यह अपनी सेना की सजावट देखकर शूरों को उनका कर्तव्य स्मरण कराने की इच्छासे उन्हें अधिकार उत्तेजित करने के लिये बोले:—

"कोटा नरेश काका माधव सिंहजी के चार सुपूत अभी थोडे ही दिनों पूर्व वीरता दिखाकर असिधारा के प्रवाह से रण शय्या पर सुशोभित हुए हैं। पांचवां जो बचा वह भी शत्रु से न दबकर विजय के साथ, यश का ग्रहण करते हुए बचा है। अब हम यदि उनसे समर भूमि में दूने हाथ दिखा-

कर–दूना ही पराक्रम कर दिखावैं तब ही हमारा पुरुषार्थ है, तब ही हमारे सुयश का प्रकाश होगा और तब ही हमारा पाटवीपन है, हमारी बूंदी की कोटे से मुख्यता है। नहीं तो अपनी नासिका का विनाश ही समझलो।"

समझे पाठक! इन वाक्यों में वीरता का, पुरुषार्थ का और होनहार का कहां तक उद्रेक है! आप आगे चलकर देख लेंगे कि उन्होंने जैसा कहा था वैसा ही कर दिखाया। वह अवश्य ही अपने इन शब्दों से अपने बंधु-वर्ग को उत्तेजना दे रहे थे–अवश्य ही उन लोगों के अदम्य साहस को बजा२ कर पक्का कर रहे थे क्योंकि–"हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्"–यही उनका अटल सिद्धान्त था। उन्होंने अंत समय–बुढापे में समर भूमि की सेवा में आत्म विसर्जन करने के लिये मरना ठान ही लिये था। बस इस लिये उस समय उनका मन यदि बाहर नहीं तो भीतर अवश्य कह रहा होगा कि:–

"पहले ही से बक देने से लाभ क्या? शीघ्रही दिखा देंगे कि वीर हाडाओंमें शत्रु का संहार करने और हार जाने पर भी पीठ न दिखा कर अपना एक २ शरीर–एक २ अंग कटा देने और मरते दम अंगद की तरह अचल खडे रहने की कहां तक शक्ति है!"

बस इस बार की तैयारी इसी उद्देश्य की सिद्धि के लिये थी। जब यह रात्रि के समय अपनी प्यारी पांचवी रानी सूर्य कुमरिजी के महलों में पधारे तब उन्होंने हाथ जोड कर इनसे निवेदन किया कि:–

"क्यों प्राणनाथ, जो करना विचारा सो करना पक्का ही विचार लिया? संग्राम भूमि में आत्म विसर्जन करके प्यारे प्राणों को स्वर्ग में अमर सिंहासन दिलाने के लिये मरने की तैयारी कर ही डाली? किन्तु इस दासी बिना उस जगह सेवा कौन करैगा? मुझे भी साथ लीजिये।"

"जीवन और मरण परमेश्वर के हाथ है। कदाचित् कुछ और तरह ही हो पडे। इसलिये तुम्हें साथ ले जाना अच्छा नहीं। भली भामिनी के भवनमें रहने ही से भलाई है।"

पति की आज्ञा को माथे चढा कर रानी अवश्य रह गईं किन्तु पाठक गण, राज दम्पती के इस अंतिम संभाषण से सोच सकते हैं कि वीर क्षत्राणियों के हृदय प्यारे के रणभूमि के लिये प्रयाण करते समय कितने कठोर हो जाते हैं। वीरप्रसू माता अपने आत्मज की युद्ध यात्रा के समय रोती नहीं है। वीर रमणी राजपूतानी अपने प्राणेश्वर के वियोग के अवसर पर रो २ कर अपनी आंखों का काजल बहा देने और इस तरह अपना मुख काला करदेने के बदले यदि प्राणेश्वर का परलोक वास हो गया हो तो उसकी चिता में अपना शरीर, अपना सर्वस्व होम देती है और यदि उसकी यात्रा युद्ध के लिये हो तो पति को लडने की, मरने मारने की उत्तेजना देती है क्यों कि वह जानती है कि जरासी मैंने कायरता दिखाई और पति का हृदय प्रेमांध होकर घबडा उठैगा। इसी चरित्र में इस बात के एक नहीं—दो उदाहरण मौजूद हैं। इसलिये कहना पडता है कि ऐसी स्वर्गीय हिंदू नारियों के लिये—वीर क्षत्राणियों के लिये—केवल लोग दिखावे के लिये नहीं—सच मुच ही पति परमात्मा है—पति ही जीवन सर्वस्व है। धन्य आर्य माता!

इस तरह हाडाराव ने यद्यपि प्राण प्यारी को समझा बुझा कर बूंदी में रहने पर राजी कर लिया किन्तु राज्य का भार अपने शिर पर पडजाने पर भी कुल परंपरा के मार्ग पर चलने का उपदेश पाकर उसे सचा कर दिखाने वाले भाव सिंहजी को मनाना कठिन काम था। संवत् १७१४ की फाल्गुन कृष्णा १३—सर्वसिद्धा त्रयोदशी के दिन जब इन्होंने प्रयाण किया तो वह भी साथ हुए। इन्होंने पधारने से पूर्व भगवान् इष्टदेव श्री-पीतांबर जी का और हाडा कुल की कुलदेवी भगवती आशापुरा का पूजन किया। दोनों से आज्ञा मांगी और तब अपनी सजी हुई सेना के साथ अपने शूर सामन्तों को लेकर बूंदी से आगरे के लिये कूच किया।

इस जगह कविराजा सूर्यमल्लजी ने वास्तव में सेना प्रयाण के समय सेना की तैयारी दिखाने में साक्षात् मूर्तिमान् वीर रस लाकर खडा कर दिया है। वह या तो शृंगार रसकी कविता करतेही न थे अथवा करते होंगे तो बहुत कम क्योंकि उनका "वंशभास्कर" वीररस से लबालब भरा हुआ है।

उनकी रचना का ओज देखकर इच्छा तो मुझे भी यहां उसका थोडा २ स्वाद पाठकों को चखा देने की हुई थी किन्तु मुझे थोडे में बहुत लिख कर यह पोथी संपूर्ण कर देना इष्ट है इसलिये लाचार हूँ।

खैर! पहले ही मुकाम पर बारहट कवि हरिदास, जिसने शत्रुशल्य जी के दिये हुए घोडे के गले में हांडी बांध कर इनका अपमान किया था और जिसकी कुचाल से क्रुद्ध होकर इन्होंने कह दिया था कि यदि हमारे राज्य में आजावे तो हम इसे अब घोडे के बदले गधे पर बिठला कर निकाल दें। आया। इस बार उसके "गधा पर चढने ही आया हूँ" कहते ही इन्होंने उसे हाथी दिया। इस तरह कूच दर कूच चलकर पांचवीं मंजिल से हठ पूर्वक भाव सिंहजी को उनकी इच्छा युद्ध में जाने की होने पर भी केवल राज्य की रक्षा के लिये लौटाया। भाव सिंह जी आज्ञा माथे चढा कर लौटे सही किन्तु चित्त उनका इस बात से बहुत दुःखित हुआ। अस्तु! बाप की आज्ञा मान कर वह चाहे वापिस आगये और आगे चल कर अपने यशों का विस्तार करने के लिये लौट आये किन्तु छोटे पुत्र भारत सिंहजी न आये। उन्होंने पूज्य पिता के चरण पकड कर स्पष्ट ही कह दिया कि—"ऐसे दुर्लभ पिता का दास आपका साथ नहीं छोडेगा।" और उन्होंने सच मुच साथ न छोडा। क्यों कि वह भी पिता के साथ ही धौलपुर के जंग में काम आये।

इस तरह चलते २ इनका लशकर जब मथुरा जी पहुंचा तब इन्होंने स्नान, मुंडन और श्राद्ध करके अपने पूर्वजों का पूजन किया। इन्होंने सोने का, चांदी का तुलादान करके १०८ गोदान किया। गोदान आज कल का सा चोअन्नी या दोअन्नी गोदान नहीं। शास्त्र विधि से उनके सींग सोने से और खुर चांदीसे मंढाये गये। ऐसे लख लूट दान से ब्राह्मणों का—तीर्थगुरुओं का दरिद्र दूर कर इन्होंने अब कुसुमल, केसरियां वस्त्र रंगवा २ कर बरात की सजावट की। सचमुच ही वर कंकण हाथ में बांधा और मोड शीश पर। परंतु मेरी समझ में यह वर कंकण नहीं रण कंकण था अथवा समर यज्ञ के लिये वरणी और वह मोड वास्तव में वीरता का शिर मोर था।

ऐसे चल कर यह फाल्गुन शुक्ला ९ को आगरे जाकर दाखिल हुए। बादशाह को इनका आगमन सुन कर बहुत हर्ष हुआ। दूसरे दिन यह बुलाने पर शाहजहां की सेवा में उपस्थित हुए। उसने अपने बुढापे की, अपने घराने की और अपने पुत्र दारा शिकोह की इन्हे शर्म दिलवा कर इनसे मिलाप किया। इन्हें सात हजारी मनसब देकर हाथी, घोडे, शस्त्र, वस्त्र, आभूषण और दश परगने दिये। इनमें आगर, सागर, छबडा, सिरोंझ, सारंगपुर, भिलसा, बालाभेट, बारां,बडोद, खैराबाद इस तरह १० थे। परगने पाकर इन्होंने अपना अधिकार जमाने के लिये पुत्र को लिखा और उन्होंने अपना अमल भी कर लिया।

खैर जब ऐसे शत्रुशल्यजी का सत्कार हो चुका तब बादशाह उनके पुत्र भगवंत सिंहजी को भी खिलअत देने लगा किन्तु उन्होंने—"हम औरंगजेब के सेवक हैं आपसे कुछ नहीं लेंगे।" कह कर न लिया। बादशाह ने कहा कि—"वह भी तो हमारा बेटा है" परंतु न लिया सो नहीं लिया। किन्तु न लेकर उन्होंने दिखला दिया कि—"चाहे आप उनके पिता ही हो परंतु हमने उनका नमक खाया है और आपसे उनकी शत्रुता है।" धन्य!

इनके बाद हाडाराव के चौथे पुत्र भारत सिंहजी की पारी आई। शाहजहां ने उन्हें खिलअत दिया और तब प्रत्येक हाडा सर्दार को, नरेश के प्रत्येक भाई बेटों को और प्रत्येक शूर सामन्त को जो रणभूमि में मारने और मरने के लिये आये थे खिलअत देकर उनका उत्साह बढाया। तब बादशाह ने नरेश को अपने समीप बुलाकर बिठलाया और उनकी कमर में अपनी खास तलवार बंधाने के अनंतर दारा को उनकी गोद में रख दिया और फिर बोला:—

"हमारी सफेदी, हमारा सिंहासन, और हमारे पुत्र की रक्षा अब केवल तुम्हारे हाथ है।"

हाडाराव ने आंखों में पानी भर कर, खड्ग पर हाथ लगा कर दारा को हृदय से लगा लिया और तब उत्तर दिया:—

" परमेश्वर जब तक इस धड पर शिर रक्खैगा तब तक दिल्ली का सिंहासन आप का और फिर आप के पुत्र दारा का। "

बस इस प्रकारसे सम्राट् को ढाढस दिलाकर जब हाडाराव अपने शिविर को जाने के लिये खडे हुए तब इनके दोनों पैरों में **सोने के लंगर** देखकर आमेर के दो राज कुमार हंसे। उन्होंने मुसकुराते हुए कहा कि—" यह बुढापा और ये लंगर! " हाडाराव ने कडक कर जवाब दिया—"ये शोभा के लिये नहीं पहने हैं। इन्हें पहनना इस लिये है कि ये जेवर नहीं **लाज के लंगर** हैं। यदि भागने की कुबुद्धि सूझे तो बूंदी का आडा बला पहाड इनमें **उलझ जाय**। यदि हम इन्हें घसीट कर भाग जायँ तब आप हंसना। क्योंकि हम रणभूमि में **अडे रहने** को आये हैं। "

बादशाह ने चलते २ फिर इनसे कहा कि—"**दारा** को अपने साथ ही अपने डेरों पर ले जाओ। तुम, कासिम खां, जाफर खां और शाइस्ता खां—इन **चारों की शरणमें** हम इसे छोडते हैं। "

राजा बोले—"इनको आप के पास ही रखकर खूब भोग विलास करने दीजिये किन्तु हमारी एक प्रार्थना अवश्य है। जरा **ध्यान तो दीजिये** कि हम आर्य कितने नम्र होकर रहते हैं। हम आपका हुक्म साधने में प्रवीण हैं और किन्तु हमें धर्म सबसे प्यारा है। **धर्म हीन** होकर जीने से मर जाना अच्छा समझने वाले हैं। बस हमारा धर्म भ्रष्ट करने के प्रयत्न करने के सिवाय आप चाहे जहां हमे **मरने को भेज दीजिये**। हम **धर्म के लिये** शिर देने को तैयार हैं। इसीको हम असंख्य धन गिनते हैं। किन्तु मुगलों का साम्राज्य नष्ट होने के लिये पहले आपके पितामह ने अपने पुत्र का आमेर **विवाह** करके और फिर आप के पिता ने जोधपुर व्याह कर दो **भयंकर विघ्न** खडे कर दिये हैं। इनसे अब क्षत्रियों में धर्म का चौथा भाग भी नहीं रहा। हमारे पूर्वपुरुष **सुरजनजी** ने आपके पितामह बादशाह अकबर से **सात कौल** लिखवा कर रणथंभोर का किला उनकी भेट किया था। वे प्रतिज्ञायें ये थीं:—

"न[1] कैनी दैन जौन[2] नवरोजन संसद गौंमन[3] इक्क आयुधसन,
कॅबहुं[4] करै न अटक उल्लंघन, शाह[5] दाग न धरैं हय संघन,
बंब[6] मुख्य तोरन लग वज्जै, अज्जौं[7] अनुग ह्वै संग न सज्जैं।"

इन्हींके अनुसार राव सुर्जनजी अटक पार न गये, मेरे दादा राव रत्नजी न गये और आप जब मुझे अपने साथ लेजाने लगे **तो मैं भी नहीं गया।** इस पर आपने मेरे राज्य के मऊ और वारां परगने उतार कर पितरों की प्रतिज्ञा पर पानी फेर कर पार जाने वाले मेरे पितृव्य माधव सिंहजी को दे दिये। क्या आपके पास और कोई परगने न थे जो आपने हमसे उतार कर उनको दे दिये। फिर अनेक देश जीत कर आपका राज्य बढाने पर जब न दिये तो अब क्यों देते हो? खैर! दो परगने चले गये तो चले गये किन्तु जैसे हमने उस समय अटक पार न जाकर अपने प्रण का निर्वाह कर लिया वैसे ही आज हम आपके लिये अपने **प्राण न्योछावर** करके मरने मारने का प्रण करते हैं। बस प्रार्थना यही है—करोड बार निवेदन यही है कि जिससे हमारे धर्म का नाश होता हो उसे छोडकर जंग का चाहे जैसा काम हमसे ले देखिये क्योंकि **धर्म ही हमारे लिये अक्षय धन है।"**

इसके आगे सूर्यमल्लजी के लेख में हाडाराव ने उन समस्त विजित देशों के दुर्गों के नाम गिनाये जो उनके बाहुबल से जीत कर बादशाह के अथवा उसकी आज्ञा से औरंगजेब की जागीर में मिलाये गये थे और जिनका वर्णन गत अध्यायों में हो चुका है। इसके अनंतर वह फिर बोले:—

"ऐसे ही हमारे परदादा राव **भोजजी** ने हाडाओं की सेना के समीप **गोवध न होवे,** हमारे राज्य के अथवा हमारे शिबिरों के निकट **मंदिर न तोडने,** बूंदी को दिल्ली के समान स्वतंत्र मानने और वर्षाऋतु में बिना छुट्टी हमारे घर चले जाने के लिये जो **प्रतिज्ञायें** आपके पितामह से कराई थीं उनका **पालन** होना चाहिये। बस आप अपनी प्रतिज्ञाओं का पालन कीजिये

---

१ कन्या न दैंगे। २ नवरोज में हमारी स्त्रियाँ न जायंगी। ३ आपके पास हम निरस्त्र नहीं आवैंगे। ४ कभी अटक नदी के पार न जायंगे ५ हमारे घोडों के शाही दाग न लगैगा। ६ हमारा नक्कारा दिल्ली के मुख्य द्वार तक बजैगा। ७ किसी राजा के अधीन होकर हम चढाई न करैंगे।

तो हम भी संग्राम के लिये अचल की तरह खडे हैं । या तो आपका विजय ही करा देंगे और नहीं तो अपना शिर आपकी भेट कर देंगे । बस आर्यों के धर्म की रक्षा कीजिये । "

इस प्रकार की बात चीत हो जाने के बाद बादशाह से अपनी सारी बातें स्वीकार कराके वह अपने डेरों पर चले आये । पिता से आज्ञा लेकर स्वामी के नमक का हक अदा करने के लिये भगवन्त सिंह जी औरंगजेब के पास चले गये और भारत सिंह जी को पिताने बहुत समझाया किन्तु वह बूंदी को न लौटे । उन्होंने कह दिया:—

"यदि आपको मेरे प्राण ऐसे ही प्यारे थे तो मेरा नाम ही भारत का सिंह क्यों रक्खा ? मैं अब अपना नाम लजा कर घर न जाऊंगा । अब तो पिता के सामने ही मुझे अपनी जान का व्यापार कर दिखाना है । अब या तो विजय ही होगा नहीं तो शत्रुसेना को गाजर मूली की तरह काट कर मर-मिटना है । बस इसलिये न जाऊंगा ! न जाऊंगा ! ! "

और वह न गये । उन्होंने अपने पिता के साथ कैसा पराक्रम करके वीर-गति पाई सो आगामि अध्याय में देखिये ।

अध्याय १२.

आत्म विसर्जन ।

धौलपुर की रक्त की प्यासी भूमि में दारा शिकोह का विजयी औरंगजेब से किस तरह युद्ध होकर क्यों कर वह विजयी हुआ, सो इस अध्याय में प्रकाशित करने पूर्व इस विषय में "शाहजहाँनामा" क्या कहता है सो कहदेना उचित होगा । उसमें लिखा है कि:—

"औरंगजेब ने (दशवें अध्याय में प्रकाशित) अर्जी रवाना करके लड़ने के लिये कूच कर दिया । दारा शिकोह ने भी पिता की आज्ञा के अनुसार लशकर सजा कर लडाई में खूब मजबूती और बहादुरी दिखलाई । परन्तु तकदीर उससे बदली हुई थी । इसलिये सबके दिल उससे फिर कर दोस्त

भी दुश्मन बन गये थे। तो भी रुस्तमखाँ, हाडाराव शत्रुशाल (जी) राजा रूपसिंह (जी), राठोड रायसिंह (जी), राजा सेवाराम (जी) गौड, और अर्जुन (जी) आदि राजपूत सरदार बड़ी बहादुरी से लड़कर काम आये। औरंगजेब के हाथी के पास बहुत थोड़े से आदमी रहगये थे तो भी वह अपनी जगह जमा रहा किन्तु दाराशिकोह जल्दी करके अपने तोपखाने से आगे जब बढ़ निकला तो उसके बहुत से साथी उसे वहीं छोड कर भाग गये। तीस चालीस आदमियों से अधिक उसके पास न रहे। तब वह लाचारी से भागकर आगरे आया और वहां १ पहर से अधिक न ठहर कर लाहोर की ओर चल दिया। बस इस तरह औरंगजेब विजयी हुआ।"

इसके आगे मुन्शी देवीप्रसादजी ने इस पुस्तक में वह बात लिखी है जिसका संबंध पिता को कैद करके औरंगजेब के दिल्ली का बादशाह बन बैठने से है। यदि यहां उस घटना का भी उल्लेख कर दिया जायगा तो दोनों बातों का गड्डमड्ड होकर पुस्तक की रचना का रस किरकिरा हो जायगा। इसलिये उसके साम्राज्य का स्वामी बनने की कथा आगामि किसी अध्याय के लिये छोड़ कर यहां मुझे पहले इस युद्ध का वर्णन टाड साहब के ग्रंथ तथा "वंशभास्कर" से करके एक वार तीनों का मिलान कर लेना आवश्यक जान पड़ता है। मुन्शीजी को जब शाहजहां बादशाह के राजत्वकाल का समस्त इतिहास इस छोटे से "शाहजहांनामें" में ठूंस देना था तब वह इस लोमहर्षण संग्राम का यदि विस्तार न करसकैं तो उनका कुछ दोष नहीं है परंतु कर्नल टाड साहब ने अपने "एनल्स ऐंड ऐंटी किटीज़ आफ राजस्थान" में इसका वर्णन बडे ही ओजवर्द्धक शब्दों में किया है। उन्होंने बहुत थोडा लिखने पर भी इसका अच्छा खाका खैंच डाला है। वह लिखते हैं कि:—

"यदि उन संग्रामों पर जिनमें भयानक रक्त पात हुआ था और जिनका यह दृश्य एक नमूना है एक दृष्टि डाली जाय तो इन दुर्घटनाओं से एक परिणाम अवश्य निकलता है। यदि हम इस चित्र पर पक्षपात रहित होकर नज

डालें तो हमको मालूम होता है कि सम्मान करने योग्य शाहजहां जो कबर में सोने के लग भग जा पहुंचा था उसे उसके पुत्रोंने राज्य लोलुपता से धक्के देकर शीघ्र ही कबर में जा ठूंसा। उसने अपने जाति भाइयों से, अपने नातेदार सरदारों से हाथ फैला कर सहायता की भिक्षा मांगी किन्तु उसका गिडगिडाना व्यर्थ गया। किन्तु राजपूत राजा जिसका सिद्धान्त ही "सिंहासन की भक्ति" था उसने बादशाह की विपत्ति के समय अपने प्राण—अपन राज्य उसके न्योछावर करके उसकी सहायता की। इस दृश्य को देखते हुए हमारे अंतःकरण में निःसहाय बादशाह के लिये सहानुभूति का उद्रेक हो उठता है किन्तु जब हमारी नजर भूतकाल की घटनाओं पर पहुंचती है तब हम देखते हैं कि शाहजहां (शाहजादे खुर्रम) ने कपट का पर्दा डाल कर जो काम किया था उसीका प्रयत्न औरंगजेब कर रहा है। उसने अपने भाई परवेज का खून करके सिंहासन के और उसके बीच की आड हटादी तो हमारी उसके साथ सहानुभूति रुक जाती है। और इसका परिणाम हम यही निकालते हैं कि निरंकुशता के साथ एकही व्यक्ति का शासन उसके लिये और प्रजाके लिये भयानक विपत्ति है।"

इन वाक्यों से पाठकों ने जान लिया होगा कि यह राजपूत नरेश हाडाराव शत्रुशल्यजी के अतिरिक्त और कोई नहीं था क्योंकि साहब बहादुर ने आगे चलकर फिर लिखा है कि:—

"अपने (बूढे) बाप के दुर्बल हाथों से राजदंड छीन लेने पूर्व औरंगजेब को अपने ज्येष्ठ बंधु दारा से धौलपुर के मैदान में भिड जाना पडा था। यही वीर क्षत्रिय का प्रधान कर्तव्य स्थल है। अपने हाडा सामंतों सहित बूँदीनरेश ने अपना विजय अथवा मर मिटने के लिये केसरिया जामे पहन कर दारा के गिर्द सेना के आगे हरावल में स्थान लिया। यही दारा के दुःखों का प्रथम दिवस था। इसीने उसकी जीवन लीला समाप्त करदी। क्योंकि धौलपुर का जंग दारा के लिये वैसा ही प्राणघातक था जैसा ईरानी डेरियस के लिये अरबला। यह प्रणाली दुर्निवार्य है कि राजा को शत्रु के सामने ऐसी जगह खडा रहना चाहिये कि जहां से अपने पराये सब को वह और उसे

सब दिखाई देते रहैं। बस इसीके वशीभूत होकर दारा हाथी पर सवार हुआ। इस तरह जब युद्ध का घमसान मच गया उससे न घबडा कर मारामारी के समय यदि वह हिम्मत दिखला कर वहां अचल खडा रहता तो संभव था कि राज्य छत्र पानेका वही अधिकारी होता किन्तु दारा अचानक गायब होगया। बस एकदम सेना में खल भली मच गई। दारा की सेना घबडा २ कर भागने लगी और तब इस भयानक अवसर पर सच्चे हाडा ने अपने उमरावों की ओर नजर डालकर ललकाराः—

"धिक्कार है उन्हें जो भाग कर जा रहे हैं! अपने नमक का हक अदा करने के लिये इस समरभूमि में पैर रोप कर अचल खडा हुआ हूँ। या तो विजय ही होगा नहीं तो मैं जीते जी इस संग्रामभूमि को कदापि न छोडूंगा।"

बस ऐसी प्रतिज्ञा करके अपने शूर सामन्तों की ओर मुसकुराते हुए वह तुरंत ही हाथी पर सवार हुए किन्तु जिस समय वह ऐसे वाक्यों की प्रतिज्ञा का स्वयं उदाहरण बन कर युद्ध में सन्नद्ध होते हुए उन्हें उत्तेजित कर रहे थे अचानक उनके हाथी के तोप का गोला लगा। हाथी ने उसी समय अपना लडाई से मुंह मोडा और वह भाग निकला। किन्तु (छत्रशालजी) भागने वाले व्यक्ति थोडे ही थे। वह फौरन ही उस पर से कूदते हुए यह कह कर कि:—

"यदि हाथी ने भाग कर शत्रु को पीठ दिखा दी तो क्या हुआ उसक मालिक की कभी वे लोग पीठ न देख सकैंगे।" घोडे पर सवार हो गये। घोड पर चढ कर उन्होंने अपने सरदारों का एक गोल बना लिया और तब शाहजादा मुराद पर एकाएक आक्रमण किया। हमला क्या किया उसे सचमुच जा लिया। और ज्यों ही उसकी जीवन लीला समाप्त कर देने के लिये उन्होंने उस पर भाला उठाया कहीं से एक गोली आकर उनके ऐसी लगी कि उनका ललाट छेद कर पार निकल गई। तब उनके सबसे छोटे पुत्र भारत सिंह (जी) ने भी बहुत वीरता के साथ युद्ध किया किन्तु वह

भी अपने पिता की तरह काम आये। मानो उस जाति का सर्वोत्तम वीर खो गया। हाडाराव के भाई मुहकमसिंह (जी) अपने दो पुत्रों सहित और दूसरे भतीजे उदय सिंह (जी) ने अपने २ प्राण विसर्जन करके अपनी सत्यनिष्ठा को पराकाष्टा तक पहुंचा दिया। बस इस तरह उज्जैन और धौलपुर—इन दो संग्रामों में इस राजकुल के बारह वीरों ने प्रत्येक शाखा के हाडा सरदारों सहित अपनी आत्मबलि देकर राजभक्ति का अंत तक उदाहरण बना दिया। क्या ऐसे दृष्टान्त हमें और भी कहीं मिल सकते हैं ? "

"राव छत्रशाल (जी) स्वयं बावन युद्धों में लडे थे। वह अपना ऐसा नाम छोड गये जो उनके साहस और उनकी निर्दोष सत्यनिष्ठा के कारण आदर पावेगा। उनका स्वर्गवास संवत् १७१९ में हुआ था।"

यहां तक टाड साहब के लेख का मर्मानुवाद है। इस भीषण संग्राम के विषय में कविराजा सूर्यमलजी ने जो कुछ लिखा है उसका आशय यही है कि जिस समय हाडावीर लडने के लिये तैयार हुए उन लोगोंने पहले जी खोल कर दान किया, भगवान का स्मरण किया, शास्त्रविधि से हवनादि किये, गंगाजल से त्रिकाल संध्या की और भगवती भागीरथी के पवित्र जल से स्नान कर, अपने कुल धर्म को शिरोधारण करते हुए अपने इष्टदेव भगवान पीतांबरधारी श्रीपीतांबरजी का स्मरण करके दिखला दिया कि जब हमें मरना ही है तब आज अपनी जीवन लीला समाप्त होने के अंतिम दिवस में अपने नित्य और नैमित्त कर्म करने से क्यों मुख मोडें।

लडाई तो बहुत ही भयावनी होती है किन्तु आज कल के लोगों पर जब जरासा भी काम का बोझा आपडता है, जब जरासी भी उनके दिल में घबडाहट होती है और जब थोडी सी भी आपदा उन पर सवार होती है तब वे डरके मारे—कष्ट के मारे चौकडी भूल जाते हैं, उनके धैर्य का भी धैर्य भाग जाता है, और इस तरह वे अपनी संपट खोकर उन्हें यह बोध नहीं रहता है कि अब क्या करना और क्या न करना चाहिये किन्तु उन पराक्रमी वीरों की प्रशंसा किये बिना आगे बढना नहीं बन सकता जो इस समय—अंतसमय तक उसी प्रकार अपने कर्तव्य पालन कर पुरुषार्थ दिखाने के लिये एक

इंच भी–तिलभर भी विचलित नहीं हुए थे। उन्होंने उसी धैर्य के साथ–उसी उत्साह के साथ इन कामों का संपादन किया जैसे निरापद अवस्था में सब कामों से छुट्टी पाकर सुखशय्या पर सोने से पूर्व एक विद्वान् कर लेता है किन्तु उसकी निद्रा–एक साधारण नींद है और इनकी एक महानिद्रा थी। ऐसी नींद थी जिससे जागने का विधाता ने उनको अवसर ही न दिया। धन्य! शतशः धन्य!!

उधर मुराद बख्श सहित औरंगजेब की चतुरंगिनी और इधर हाडाराव समेत दाराशिकोह की वीर वाहिनी एक दूसरे पर विजय प्राप्त करने केलिये धौलपुर के मैदान में आ डंटी। सेना क्या आई मानो दो महा सागर अपनी२ मर्यादा छोड कर एक हो जाने के लिये बढने लगे। रक्त की प्यासी धरती जो वर्षों से चातक की तरह मुंह फाडे स्वाति की बूंद की राह निहार रही थी उसे आज बूंदों के बदले रक्त की नदियों से–लहू की वर्षा से तृप्त होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मरने, मारने, कट मरने के लिये दोनों ओर के बहादुर कभी पहुंचों के बल दे २ कर दांत पीसते और कभी मोंछों के बल देकर भौंहों तक पहुंचाते हुए आ खडे हुए। इधर दारा अपनी गद्दी की रक्षा के लिये रणभूमि में अवतीर्ण होकर अपने दोनों भाइयोंका विनाश कर देना चाहता था और उधर औरंगजेब मन ही मन कह रहा था "देखना मेरा रण कौसल। आज तुझे कब्र में सुलाकर इस बापडे मुराद को मक्खी की तरह न मल डालूं तो मैंने किया ही क्या?" ढाल के नीचे इस तरह दिल्ली का साम्राज्य ढका देख कर एक ओर से बाजीगर औरंगजेब और दूसरी ओर दारा–दोनों अपने २ वार खेलने लगे।

कविराजा सूर्यमलजी ने अवश्य अपनी ओजवर्द्धिनी कविता में दोनों सेना का वर्णन कर साक्षात् वीर रस खडा कर दिया है किन्तु युद्ध की मार काट का वर्णन करने के समय न मालूम वह मौन क्यों साध गये। जैसे उन्होंने और२ संग्रामों का उल्लेख किया है वैसे ही यदि वह इस युद्ध का चित्र खेंच देते तो बडा मजा होता परंतु उन्होंने यह नहीं लिखा कि किस तरह सूर्य के प्रकाश में तलवारों की चमक ने शत्रु के मन दहला कर गाजर मूली की तरह पर

सेना का संहार किया। उन्होंने यह नहीं लिखा कि भालों की नोकों में टंग कर कैसे सुभटों के मुंडों ने ध्वजा का काम दिया। उन्हें अवश्य लिखना चाहिये था कि क्योंकर गोलियों ने पराई सेना के कलेजे छेद२कर किसी का शिर, किसी का भुज और किसी का पैर उडाने के लिये आकाश का रास्त बतलाया। वह यदि लिखते कि तोपों की मार से, उनके गगनभेदी गर्जन से सचमुच आकाश में बादलों की गरज के समान शब्द होकर धूंएं ने पृथ्वी और आकाश को धुआंधार करने के साथ मार्तंड मंडल को ढांक दिया तो योग्य था। खैर! उन्होंने न लिखा तो न सही। अवश्य वहां तलवारवाजी से सर्वत्र खचाखच शब्द के सिवाय कान पडी बात नहीं सुनी जाती थी। गोलों पर गोले और गोलियों पर गोलियों की आवाज ने घरबराहट में तड-तडाट मिला कर मानो प्रलय के बादलों का सा समा बांध दिया था। बस बात की बात में दोनों ओर की सेना में लहू के पनाले बहने लगे, वीरों के कहीं शिर, कहीं भुज और कहीं धड पडे हुए ढेर पर ढेर बनते जारहे हैं। कहीं घायल वीरों की "हे तात! हे मा!!" मची हुई है तो कहीं चील्ह, कौवे, गिद्ध, स्यार मनमाना भोजन पा२ कर मग्न होने लगे हैं। कहीं कायर जान बचा कर भाग रहा है तो कहीं ललकार के लोग उसे फटकार रहे हैं। कहीं "अल्ला हो अकबर" की पुकार है तो कहीं "पीतांबरजी की जय" के जयघोष से दिशायें प्रतिध्वनित होरही हैं।

इस तरह भयानक संग्राम ने रणभूमि को तृप्त कर वही काम किया जो टाड साहब ने अपने ओज वर्द्धक--नसे फडका देने वाले शब्दों में लिखा है। वास्तव में उनके लेख के अनुसार दुनियां में ऐसे उदाहरण नहीं मिल सकते हैं क्यों कि प्रत्येक हाडा के शरीर में जब तक प्राण रहा उसने रणभूमि को न छोडा और इसलिये हाडाराव की सेना का हरएक शूर सामन्त तिल२ कट कर समरभूमि में शयन कर गया। उनमें से जो वीर मरने की अनी पर आकर सिसक रहे थे उन्हें खैंच कर लेजाने के लिये जब शृगालों ने--गीदडों ने हमला किया तो शक्ति न होने पर भी, बोलने की ताकत न होने पर भी उनके मुख से अनायास निकल गया कि:--

"यदि हमारे रक्त मांस से तुम्हारी क्षुधा की निवृत्ति हो तो तुम भले ही हमारा शरीर नोंच २ कर खाना क्योंकि जो शरीर परोपकार के लिये पैदा हुआ है वह यदि भूखों की भूँख बुझाने में काम आवे तो अक्षय पुण्य है किन्तु देखना हमारे मरजाने पर भी हमारी लाश को बूँदी की ओर-पश्चिम दिशा में न घसीट लेजाना जिससे कहीं यह कोई न कह बैठे कि कायरता से पीठ दिखाकर संग्राम छोड भागा। ऐसा कहने में हमारी जननी लाज जायगी।" धन्य वीरो! हजार बार धन्य!!

बस इसी तरह इस युद्ध की इतिश्री हो गई। बस आज ही पराक्रमी शत्रुशल्यजी ने अपनी प्रतिज्ञा का पालन-संग्राम भूमि में वीरगति पाकर-मरते दम तक अपने वचन का पालन कर केवल अपने धर्म के लिये-दिल्ली के राज सिंहासन की असीम भक्ति के लिये और सच पूंछो तो हाडा जाति की- बूंदी नरेशों की विमल कीर्ति को अधिक प्रकाशमान करने के लिये आज संसार को वह काम कर दिखाया जो भारतवर्ष के इतिहास में सोने के अक्षरों से लिखने के योग्य है। ऐसे ही अनेक वार पराक्रम करने से आज हाडा जाति का-बूंदी नरेशों का शिर ऊंचा है इनके पितामह ने जहांगीर से सर बुलंद-राय की पदवी पाकर सदा अपना शिर बुलंद रक्खा और इन्होंने अपनी असाधारण प्रतिभा से उसे और भी ऊंचा कर दिखाया। भारत की वीर प्रसू वसुन्धरामें अनेक नामी २ बहादुर हो गये हैं किन्तु हाडाराव शत्रुशल्यजी जैसे पुरुषार्थी केवल भारत के इतिहास में ही क्यों संसार के इतिहासों में इने गिने हैं।

जब तक उनके शरीर में प्राण रहा उन्होंने स्वधर्म रक्षा के लिये, स्वकुल की मर्यादा के लिये और प्रतिज्ञा पालन के लिये अपने राज्य को, अपने वैभव को, अपने शरीर सुख को, और अपने आपे को तिनके के समान समझा। और जब क्षात्र धर्म के अनुसार, भारत वासियों के प्यारे धर्म सिद्धान्त से, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के महावाक्य से संग्राम में शस्त्रों के आघात से शरीर छोडने वाले के लिये स्वर्ग का मार्ग खुला हुआ है तब वह उनके साथी-उनकी

सेना यदि स्वर्ग में वहाँ का अक्षय सुख लूटने को चली गई तो आश्चर्य क्या है ! यह कर्तव्यदक्ष थे और इस तरह अपने कर्तव्य का सच्चे अंतःकरण से (बनावट से नहीं) पालन करके, संसार में अपना नाम अमर करके अमर लोक को प्रयाण कर गये। "कीर्तिर्यस्य स जीवति" इस कृष्ण वाक्य को चरितार्थ करते हुए उनका देहावसान होने पर भी वह अबतक जीवित हैं।

इस तरह सूर्यमल्लजी "वंश भास्कर" में जब इस लडाई के भीषण कांड का वर्णन छोडने के साथ इस संग्राम का परिणाम भी न लिख सके तब केवल "शाहजहांनामें" का टाड साहब के ग्रन्थ से ही मिलान करने का काम रहा। पाठकों ने गत पृष्ठों में पढ ही लिया कि जो बात पहले में संक्षेप से है वही दूसरे में विस्तार से। दोनों का परिणाम शत्रुशल्यजी का वीर गति पाना और दारा के हार भागने से विजय विभूति अथवा यों कहो कि दिल्ली का साम्राज्य ही औरंगजेब के चरणों में आ पडा। इन दोनों इतिहासों में एक ही बात का अंतर-नहीं महदंतर है कि इस युद्ध में शाहजहांनामा शत्रुशल्यजी के संयुक्त होकर वीरगति पाने को स्वीकार करने पर भी उन्हें विशेष प्रधानता नहीं देता हैं किन्तु टाड साहब के एक २ अक्षर से टपका पडता है कि केवल वही एक अचल की तरह अडकर काम आये और दारा के भाग जाने बाद अपना पुरुषार्थ दिखाकर खेत रहे किन्तु "शाहजहां नामे" में इनके मारे जाने बाद दारा को भागना पडा। इनमें किसका लेख सच्चा है सो भगवान जाने। क्योंकि बूंदी का सविस्तर इतिहास "वंशभास्कर" इस विषय में बिल-कुल चुप्पी साध गया। उस में मौन धारण किया गया है सही किन्तु आरंभ से लेकर अंततक की प्रत्येक बात का मिलान बूंदी के इतिहास का टाड राज-स्थान से हो रहा है तब मेरी राय उन्हीं की ओर है।

"वंशभास्कर" में यह प्रसंग छूट जाने का कारण यह हो सकता है कि जब उस दारुण समर से बूंदी का एक भी हाडा जीता जागता बच कर घर को न लौटा तब वहांकी कथा कहने वाला ही कौन था ! खैर कुछ भी हो। जैसा है वैसा पाठकों के सामने है।

मैंने इस संग्राम भूमि का स्वयं धौलपुर जाकर दर्शन किया है। वहां पर अब भी हाडाराव शत्रुशल्यजी और शायद उनके चौथे पुत्र भारत सिंहजी के चोंतरे बनेहुए हैं। यह समर क्षेत्र चंवल नदी के किनारे पर रेल्वे लाइन के समीप है। यहां के निवासी इसे रण के चौंतरे कहा करते हैं। वहां की भूमि वास्तव में बडी भयावनी है। उसे देखकर इस: इतिहास का स्मरण आते ही शरीर के रोम खडे हो उठते हैं। लोग कहते हैं कि अब भी—ढाई सो वर्ष हो जाने पर भी कभी २ वहां रात्रि के समय चिरागों के प्रकाश के साथ धरकर मार मार के शब्द सुनाई देने लगते हैं। सेना का इधर उधर जाना आना और जुझाऊ बाजों का बजना मालूम होता है। नदी के जल ने काट २ कर इन चबूतरों का नाम निशान तक मेटने की ठानली और एक उनमें से टूट भी पडा तब रेल्वे वालों ने उनके समीप ही दूसरे चबूतरे बनवा दिये हैं। पहले चबूतरों की जगह इस तरह शायद रेल्वे लाइन में भी आगई यह स्थान शायद इंडियन मिडलैंड रेल्वे में जो आगरे से ग्वालियर होती हुई झांसी को चली गई है धौलपुर से तीन चार मील के फासिले पर है।

अस्तु-धौलपुर के जंग में जब शत्रुशल्यजी के साथ इनके सब ही आत्मीय क्षत्रिय अपना पुरुषार्थ दिखाकर खेत रहे तब उनके जोशी हरजी ब्राह्मण ने नरेश की—उनके भाई बेटों की पगडियां लाकर आषाढ कृष्णा ३ को बूंदी राजप्रासाद में पहुंचा दी।

अध्याय १३.

दिल को दहला देने वाला दृश्य।

जिस भीषण समर भूमि में सब ही आत्मीय सुभट कट कर मर गये, जिसमें से एक भी बच कर न आया उसका शोक संवाद पहुंचते ही यदि बूंदी नगर में—राज्यभर में कुहराम मच गया हो तो आश्चर्य क्या है ! जब केवल एक ही नरेश के परलोक को प्रयाण करने पर सर्वत्र हाहाकार मच

जाता है तब इस बार की मृत्यु नहीं साका था। नरेश की मृत्यु हुई, उनके प्यारे पुत्र का मरण हुआ और उनके भाई, भतीजे, कुटुम्बी, नातेदार, इष्ट, मित्र, संगी, साथी, सुभट, सैनिक—सब मारे गये। किसी तरुणी का जीवन सर्वस्व पति गया, किसी का बुढापे की लकडी इकलौता पुत्र गया, किसीने अपना प्राण समान भाई खो दिया, कोई अपना सब कुछ खोकर अपने जीवन तक से हाथ धो बैठी और किसीके लिये दुनिया में जब किसी तरह का सहारा ही न रहा तब इसे मौत नहीं कहना चाहिये। सचमुच ही उस समय दुःख का दावानल राजकुटुम्बमें, परिजनों में, और प्रजा वर्ग में जल २ कर भयानक ज्वालायें छोडने लगा था। जहां देखो वहां आकाश-भेदी रुदन, आर्त्तनाद, हाय २ के सिवाय कान पडी बात नहीं सुनाई देती थी। कितनी आर्य ललनाओं ने अपने २ प्राणनाथ के साथ ही अपने प्राणों को पठाकर स्वर्ग का अक्षय सुख लूटा सो इतिहास नहीं बतलाता है किन्तु जो आर्य महिलायें उस समय पवित्र चिता में चढकर जीती जागती जली नहीं उनका हृदय, उनका शरीर और उनका सुख, अवश्य विर-हानल में जल मरा। राम राम। बडा भयानक दृश्य था। आगे लिखने को जी नहीं चाहता है। हाथ के साथ ही विचारी नेजे की लेखनी कंपाय-मान होती है और दिल धडकने लगता है।

परंतु क्या जैसा कुहराम नगर में—राज्य भर में मच गया वैसा ही राज-महल में भी मचा होगा। "मरे को रोना और जन्मे को हँसना" जब समस्त जीवधारियों की प्रकृति है—जब मनुष्य मात्र का स्वभाव है, जब बडे २ धीर वीरों को भी कलेजे का बोझा हलका करने के लिये रोना पडता है और भगवान मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र जी तक जगज्जननी जानकी के वियोग में रो पडे थे तब राज महिलाओं ने रो २ कर आसुं-ओं की धारा बहा दी हो—परिवार की—परिजनों की और प्रजावर्ग की अश्रुधारा में अपनी अश्रुधारा मिला कर यदि धारा प्रवाह हो गया तो इस में संदेह की बात ही क्या? किन्तु नहीं! वीर क्षत्राणियां अपने पति के परलोक पधारने के समय रोने के बदले हँसा करती हैं। यदि उनके प्राणेश

ने संग्राम भूमि में शत्रुओं का संहार कर अपने शरीर को भगवती असिदेवी के वलि चढा दिया हो तो वे उसे पति का मरण नहीं मानती हैं। भगवान् कृष्णचन्द्र के "हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गम्" इस सिद्धान्त को माथे चढा कर वे जानती हैं कि हमारा पति नारायण मरा नहीं किन्तु देवताओं की "जयजय ध्वनि" के साथ पुष्प वृष्टि का आनंद लूटता हुआ स्वर्ग का सुख लूटने के लिये जाने को विमान पर विराजमान होकर हमारी राह देखता है। वस इसी खयाल से वे रोने के बदले हँसती हैं। वे अपना सर्वस्व लुटा कर काजल बेंदी से–सुन्दर वस्त्र आभूषणों से सोलहों शृंगारों से सज धज कर तव विमान में विराजित पति परमात्मा से जा मिलने के लिये शीघ्र ही चल कर–पति की वैकुंठी के साथ २ चल कर श्मशान भूमि में पहुंचती हैं। जो पर्दे की रहने वालियां हैं उन्हें उस पर्दे से कुछ काम नहीं, जो घूंघट की ओट में सदा अपना मुखचंद्र छिपाये रहती हैं उनका घूंघट खुल जाता है। पर्दा, घूंघट, लाज मर्यादा, धन, वैभव जिसके कारण था आज वही नहीं है तो फिर कुछ भी नहीं है। समस्त हिन्दू नर नारी, बालक, बूढे, जवान उसके दर्शन करने में अपना बहुत पुण्य समझते हैं और सच पूंछो तो दुनियां में ऐसे इस गये वीते जमाने में भी कोई हिन्दू ऐसा न होगा जो ऐसी सती नारियों के चरण धो २ कर पीने में अपने आपे को कृतार्थ न समझता हो। ऐसी सतियां सत चढने पर जो वरदान देती हैं वह सिद्ध होता है और सदा ही उनकी आज्ञा का पालन होता है।

अस्तु जिस अंतःपुर में–जिन जनाने महलों में से–ऐसी एक नहीं अनेक पूजनीय सतियां प्राणेश्वरों की चिताओं पर चढ कर उनके साथ विमानों पर चढने के लिये तैयार थीं वहां के शोक का यदि मैं वर्णन करूं तो मेरी बराबर कोई मूर्ख नहीं किन्तु इन सती ललनाओं का ढंग संसार की–नहीं २ हिन्दू संसार की साधारण सतियों से निराला था। भारतवर्ष में सती दाह के बंद करने का कठोर कानून होने पर भी जो सतियां स्वामी की चिता में जा सोती हैं उनके लिये आज कल के लोग कहा करते हैं कि विरह है–साहस है। अपने मन को न रोक सकीं इसलिये जल मरीं। किन्तु जब

सब लोगों ने अनुभव करके देखा होगा कि जितना कष्ट मनुष्य का मुर्दा देखकर व्यापता है उतना उसकी मृत्यु का संवाद सुनकर नहीं । जैसा शोक मरने के समय रहता है वैसा उसके जलने बाद नहीं और जैसा एक दिन रहताहै वैसा दूसरे दिन नहीं । ऐसे ज्यों २ समय का पर्दा आड में आता जाता है वैसे ही शोक की मात्रा कम होती जाती है ।

ऐसी अवस्था में इनके प्राणों का परलोक को प्रयाण हुआ धौलपुर के मैदान में । उनकी मृत्यु का शोक संवाद भी इन्हें कई दिनों के अनंतर मिला और यों जब अंत समय में अपने प्राणेश्वरों के दर्शन करने न पाईं थीं तो उनके पवित्र मस्तकों को प्रेम पूर्वक अपनी गोद में रखकर चिताओं में विराजमान होने के स्थान उनकी उष्णीषों (पगडियों) को गोद में रखकर दहकती हुई चिता में जल मरीं । यदि भूल से भी आग की जरा सी चिनगारी अंगुली के लग जाय तो आज कल के वचन वीर जब तुरंत ही "सी ! सी ! " कर के अंगुली टटोलते,आंखें मूंदते और फूंक २ कर उसे ठंढा करने लगते हैं तब जीते जी दहकती हुई चिता पर चढ जाना अथवा चिता में चढने के बाद उसमें आग लगा देने के अनंतर पर्वत के समान अचल होकर बैठा रहना—क्या हँसी खेल है! यह साहस नहीं—प्रेम नहीं किन्तु इसमें कोई अनिर्वचनीय कारण है जिसे आज कल के बडे२ विद्वान् नहीं जान सकते हैं । उनका अंत:करण ही ऐसा विमल नहीं है कि उस वाणी से अगम्य बात पर पहुंच सकें । बस उसी हम लोगों की हृदय से अगम्य शक्ति ने उनको उत्तेजित किया और अब भी जहां कहीं ऐसी घटनायें--वर्ष में एक दो सुनने में आती वहां भी वही अनंत शक्ति आ विराजती है । इतना होने पर भी ब्रिटिश गवर्नमेंट ने जो इस विषय का आईन बना दिया है वह सब प्रकार से प्रजा का हित करने वाला है । वही सच्चे झूंठे की कसौटी है और जो वास्तवमें सच्ची सती हैं वह उसकी रंचक भी पर्वाह न कर इस भयंकर कलिकाल में भी अपना उदाहरण छोड जाती हैं । सारे आईन कानून संसारियों के लिये हैं दैवी जीवों के लिये नहीं । धन्य आर्य ललनाओ ! इस गये बीते जमाने में भी तुम्हें लाख बार धन्य है ! !

खैर ! अपने प्राणपति की पगडी के साथ हाडाराव शत्रुशल्यजी की छः रानियां, पांच खवासें और चालीस पातुरें सती हुई । इनकी सोलह रानियों में से सात का पति से पहले ही स्वर्गवास हो चुका था। तीन से अपने प्राणों का लोभ न छूट सका और सोलंखिनी सूर्यकुमारि, सोलंखिनी हरकुमारि, रानावत चंद्रकुमारि, राठोडिनी कल्याणकुमारि, राठोडिनी फूलकुमारि और राठोडिनी लक्ष्मीकुमारि—यों छः रानियोंने और चमेली, अनारां, श्यामरंग, चंपा और हारमाला—इस तरह पांच खवासों ने अपने २ प्राण अपने प्राणपति की एक ही चिता में होम दिये। ऐसे कुमार भारतसिंहजी की पांच कुमारियों में से चार पति की पगडी के साथ जल कर सहगामिनी हुई। उनकी एक कुमरानी जो उस समय गर्भवती थी उसे राव भावसिंहजी ने धर्म विरुद्ध कर्म बतला कर रोका और उनसे आनंदसिंहजी नामक बालक का जन्म भी हुआ किन्तु चार मास तक जीवित रहकर यह बालक भी मर गया।

इस संग्राम में हाडाराव शत्रुशल्यजी के साथ उनके मुहकमसिंहजी उदयसिंहजी और सूरसिंहजी—ये तीन भाई और इन्द्रशल्यजी के पुत्र गुमानसिंहजी, मुहकम सिंहजी के पुत्र जोरावरसिंहजी,-और महासिंहजी के पुत्र कनक सिंहजी, और लालसिंहजी—ये चार भतीजे काम आये थे। इनमें से मुहकमसिंहजी के साथ दो और औरों के साथ उनकी एक २ वधुएँ सती हुई । यों सब मिला कर तरेसठ रमणियां सती होकर अपने २ पतियों के साथ परम पद को प्राप्त हुई।

शास्त्र विधि से सब ही का क्रिया कर्म युवराज भावसिंहजी ने जिनको उनके पूज्य पिता शत्रुशल्यजी पहले ही से समरभूमि में मर मिटना निश्चय जान राज तिलक करगये थे, किया कराया। किसी का आश्वासन से, किसी का द्रव्य से, किसी का जागीर से और किसी का दर्जा बढाकर—मृतकों के भाई, बेटे, माता, पिता और स्त्री, बालकों का इन्होंने सम्मान किया, उनके दुखिया मनों को संतुष्ट किया और इस तरह राज्य का अधिकार पाकर प्रथम बार ही सच्चे पिता के सच्चे पुत्र होने का सच्चा परिचय दिया। इन लोगों के स्वर्गवास होने का शोक संवाद संवत् १७१५ की आषाढ कृष्णा ३ को समरसें-

राजमहल में पहुंचा था और दूसरे ही दिन चौथ की रिक्ता तिथि ने सतियों के जल मरने से राजमहल को सचमुच **रिक्ता**—रीता कर दिया।

हाडाराव शत्रुशल्यजी पितामह का परलोक वास होने पर २९ वर्ष की भर जवानी में संवत् १६८८ में बूंदी के राजसिंहासन पर आसीन हुए थे और उनका देहावसान संवत् १७१५ में हुआ। इस कारण उन्होंने **सत्ताईस** वर्ष राज्य करके केवल **बावन वर्ष** की उमर में टाडसाहब के लेख के अनुसार **बावन युद्धों** में विजय पाकर अंत में समर भूमि में ही शरीर छोड दिया। इनके भावसिंहजी, भीमसिंहजी, भारतसिंहजी, भगवंतसिंहजी भूपति सिंहजी, भूपालसिंहजी और ईश्वरी सिंहजी—इन **सात कुमारों** में से भारतसिंहजी और भीमसिंहजी की मृत्युका संवाद पहले प्रकाशित हो चुका और शेष का इस जगह उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं। ऐसे जिस समय पिता का देहान्त हुआ भावसिंहजी और भगवंतसिंहजी विद्यमान थे। इनमें भगवन्तसिंहजी औरंगजेब के पास और भावसिंहजी राज्य के स्वामी। इस संग्राम में ९०० हाडा मरे और ७०० घायल हुए।

अध्याय १४.

उपसंहार।

हाडाराव शत्रु शल्यजी ने जैसे बावन वर्ष की उमर में बावन ही लडाइयां जीत कर अपनी तलवार बहादुरी का मजा शत्रुओं को चखाने में अपनी **सच्ची शत्रुशल्यता** का परिचय दिया और जैसे अपने धर्म का तथा अपनी प्रतिज्ञा का पालन कर वह स्वर्ग को सिधार गये सो पाठकों ने गत अध्यायों में अच्छी तरह पढ लिया। उससे उनको भली भाँति विदित होगया होगा कि वह केवल रणवीर ही नहीं थे। यदि वह केवल जंग बहादुर होते तो राजपूताने के और २ नरेशों की तरह बादशाह को, शाहजादों को अपनी बहन बेटियां विवाह कर अथवा उनके साथ अटक पार जाकर कदाचित् बूँदीराज्य को उस समय की सीमा से कितना ही अधिक बडा कर सकते थे। जब वह परम पुरुषार्थी थे जब वह सच्चे पराक्रमी थे और जब वह समर यज्ञ में

अपने शरीर की, अपने पुत्र की, अपने भाई भतीजों की और अपने सुभट सामन्तों की आहुति देकर अपनी सच्ची राज्यभक्ति का संसार के इतिहास में एक ज्वलंत उदाहरण छोड गये फिर अपना राज्य, अपना वैभव दूना चौगुना कर लेना उनके लिये बायें हाथका खेल था किन्तु नहीं! वह सच्चे तेग बहादुर होने के साथ ही पक्के धर्म वीर थे, दृढ हाडा थे। वह शरीर, वैभव, राज्य और दुनियाँ के सब सुखों को धर्म के आगे एक तिनके के बराबर समझते थे। इसके एक नहीं अनेक उदाहरण इस चरित्र में विद्यमान हैं।

अच्छा! ऐसे वह केवल रणवीर और धर्मवीर ही न थे वरन वह दानवीर भी थे। यह विद्वानों का, कवियों का सत्कार करने में भी सब से आगे रहना चाहते थे। जब तक उन्होंने शरीर धारण किया ऐसे ही कामों में लाखों रुपया लुटा दिया और मरने के समय तक जब बडे २ मंदिर बडे २ महल बना कर छोड गये तब राजपूताना वालों के इस सिद्धान्त के अनुसार कि "नाम या तो पूतडां या भींतडां" होता है पीछे नहीं रहे। भगवान् श्री-कृष्णचंद्र ने अर्जुन के प्रति भगवद्गीता में "कीर्तिर्यस्य स जीवति" का उपदेश किया है और सच पूंछो तो वह जब अपना शरीर छूट जाने पर भी यश अमर छोड गये तब वह मरे नहीं जीते हैं।

इनका बनवाया हुआ केशवरायजी की पाटन में चंबल नदी के किनारे भगवान् श्री केशवरायजी का नामी मंदिर है। यह पाटन बूँदी राज्य में नागदा मथुरा रेल्वे का एक स्टेशन है। कविराजा सूर्यमल्लजी लिखते हैं कि सो बांस के समान इस मंदिर का पीढा है। मंदिर दश २ बारह २ कोस से दिखलाई देता है। मंदिर की रचना बडी सुंदर है, भगवान् की मूर्ति बडी मनोहारिणी है और हाडाराव उसका प्रबंध भी ऐसा कर गये हैं कि जिससे परमेश्वर के भोग रागादि में कभी किसी तरह की न्यूनता न रहने पावे। यद्यपि आज कल मंदिर को चूनेसे पोत २ कर न मालूम क्यों उसकी कारी-गरी ढांक दी गई है किन्तु पत्थर की कुराई का काम अवश्य ही उसमें

प्रशंसा के योग्य हुआ है । उस समय का स्थिर किया हुआ सेवा पूजा का राजसी ठाठ अबतक ज्यों का त्यों चला आता है। कहते हैं कि जिन दिनों राव शत्रुशल्यजी बूंदी में विराजा करते थे नित्य ही अपने मनोगति तुरंग पर आरूढ होकर बूँदी से दश बारह कोश पाटन भगवान् केशवरायजी के दर्शन को जाया करते थे। वहां सायंकाल की आरती के दर्शन कर नित्य ही लौट आया करते थे। राजपूताने में "प्राचीन शोध" की प्रथम संख्या में मुन्शी देवीप्रसादजी ने इस मंदिर के विषय में इस तरह लिखा है:-

" केशवरायजी का मंदिर चंबल के एक ऊंचे और संगीन घाट पर बना है। इसका शिखर इतना ऊंचा है कि बहुत दूर से दिखलाई देता है। इसमें लाल, पीले, गुलाबी, सफेद और बसंती रंग के पत्थर लगे हैं। पत्थरों में कोरनी भी बहुत सुंदर हुई है। अंगरेज लोग बहुधा इस मंदिर को देखने आते हैं और नक्शे उतार २ कर ले जाते हैं।"

कहते हैं कि राव रत्न (जी) हाडा की रानी बडी पुण्यशीला थीं। उसने यहां एक विशाल मन्दिर बनवाना स्थिर करके १२ घाट पक्के बनवाये जिनमें विष्णु घाट सबसे ऊंचा था। उसकी पोल से लेकर मन्दिर तक १०० सीढियां हैं। इसी घाट पर मन्दिर की कुर्सी आठ दश गज चौक छोड कर बनी थी जो घाट से तीन गज ऊंची १४।१६ गज लंबी और इतनी ही चौडी है। उस पर स्वच्छ पत्थरों का अठपहलू फर्श उस समय तैयार हो चुका था। फिर रानीके मर जाने से काम बंद हो गया किन्तु उनके पोते शत्रुशल्यजी ने मन्दिर बनवा कर अपनी दादी का मनोरथ पूरा किया। और केशव रायजी को इसमें विराजमान करा दिया। यह मूर्ति उन्हें चंबल नदीमें से मिली थी। और कोई कहते हैं कि वह उसे मथुरा से लाये थे। "

यह बात उन्होंने सुनी हुई लिखी है और इसका बहुत अंश मिलता जुलता भी है इस लिये यहां इस बात के विशेष विवेचन करने की आवश्यकता भी नहीं। हां! इस पोथी में शत्रुशल्यजी के विषय में दो एक

बातें और लिखी हैं। उन्हें भी इस जगह प्रकाशित करदेना चाहिये। इस पोथी के अनुसार **खटकड** में पहाड के पूर्व नाके पर धूंधलाजी का मन्दिर राव शत्रुशल्यजी हाडा का बनवाया हुआ है। धूंधलाजी को गुरु गोरख नाथजी और जलंधरनाथजी का चेला बतलाते हैं। वह तपस्या करने को इस पहाड में आगये। यहां पाटन नामक नगर बसता था किन्तु धूंधलाजी के चेले को कोई भीख नहीं देता था। वह जंगलसे लकडियां काटकर बेचता और उसके मोल से अन्न लाकर एक तेलिन को दे दिया करता था और वह आटा पीस कर उसे रोटियां बना दिया करती थी। एक दिन गुरु ने चेले की टांट के बाल उडे हुए देख कर उससे पूंछा और जब उसने कारण बतलाया तो चेले से बोले:–"उस तेली से कह दे कि अपने बाल बच्चे लेकर चार कोस पर चला जाय। अभी इस नगरी पर **उल्कापात** होने वाला है।" जब तेली चला गया तब उन्होंने कोप करके कहा कि:–

"पट्टण पट्टण सब डट्टण और तेली का घर बच्चण।"

"बस उसी समय से गर्म २ रेत बरस कर सब लोग जल मरे और सारे मकान रेत में दबगये। कहते हैं कि उस दिन पट्टन नाम के सब ही शहरों का यह हाल हुआ अब भी उनके खंडहरों में खोदने से राख और उस समय के दबे हुए बरतन निकलते हैं। मारवाड में भी ऐसी कई कथायें धूंधली धमाल जोगीके नाम से विख्यात हैं।"

इसी पोथी में फिर आगे चल कर एक घटना और भी लिखी है, जो यहां प्रकाशित कर देने योग्य है। वह यह है कि–"राव राजा शत्रुशल्यजी के समय में यहां (खटकड में) **सिंधुनाथ** योगी तपस्या करते थे। रावजी उनके चेले होगये थे। उन दोनों के चित्र एक पाषाण में खुदे हुए हैं। दोनों के हाथ में प्याले हैं। एक मनुष्य रावजी के ऊपर चँवर कर रहा है। नीचे एक लेख खुदा है जिसका आशय यह है, कि संवत् १७११ ज्येष्ठ शुक्ला ११ सोमवार को राव राजाजी शत्रुशालजी बूंदी

नरेश और गुरुजी बाबा सिधुनाथजी के चेले ने बनवाया और चुंगी और भूमि सदाके लिये लगा दी।"

इस लेख में मुख्य बात विचारणीय यही है कि हाडाराव उक्त बाबाजी के शिष्य हुए थे अथवा नहीं। बूँदी के इतिहासों से इस बात का अनुमोदन नहीं होता वरन जब उनका देहान्त संवत् १७१५ में हो चुका था और इसका संवत् १७१६ है तब इसे सत्य मानने को भी जी नहीं चाहता है। परंतु मुन्शी देवीप्रसादजी का यह लेख टौंक निवासी स्वर्गवासी पंडित रामकरणजी की शिला लेखों की खोज के अनुसार है तब सहसा इसे मिथ्या भी क्यों कर बतला दिया जाय। संभव है कि उनके स्वर्गवास के पीछे इस मंदिर की समाप्ति हुई हो।

अस्तु रावराजा शत्र शल्यजी के बनवाये केवल इतने ही मंदिर नहीं हैं। "वंशभास्कर" के अनुसार और भी चार मंदिर उनके बनवाये हुए अब भी बूँदी में विद्यमान हैं। एक नगर से बाहर चौगान में भगवती हर्षदा देवी का मंदिर, दूसरा श्यामलाजी का, तीसरा जगदीश का और चौथा राधा दामोदर का।

इनका बनवाया हुआ बूँदी नगर के राजप्रासाद में जो गढ के नाम से विख्यात है छत्र महल नाम का एक विशाल भवन महलों की शोभा बढा रहा है। वही सचमुच समस्त महलों का शिरमौर है। इसके सिवाय रात्रिखंड, हथियां शाल, रंग मंडप, मुकुट मंदिर भी इनके बनवाये हुए हैं। नाहर के चौहट्टे में पाषाण का हाथी भी इनका ही बनवाया हुआ है। इन्होंने रत्न बुर्ज से लेकर पहाड की चोटी तक की खाई बनवा कर सूर्यपोल के बदले इन्होंने नगर की सीमा बढा दी है। चोगान दर्वाजे का कोट-मैंडकदरे का कोट इन्हीं का बनवाया हुआ है। अपनी धाय पती के नाम पर बाहर की बूँदी में प्रताप सागर नामक कुंड जो आज कुल पतीधाय वा प्रथधाय का कुंड कहलाता है इन्होंने बनवाया है। बडौदा ग्राम में पाषाण का हाथी इन्हीं का बनवाया हुआ बतलाया जाता है और पती-

भाय के कुंड के निकट बडी २ छत्रियां इनके धाभाई के नाम पर इन्हीं के समय की बनी हुई हैं और पहले बूँदी नगर की सीमा भैरव दर्वाजे से सूर्य-पोल तक थी। जो शहर बढा वह उसके कोट के बाहर था। इन्होंने **वर्तमान कोट** बनवा कर नगर की वृद्धि की है। कविराजा सूर्यमल्लजीने पता लगाया है कि आज कल जो वस्ती पुरानी बूँदी के नाम से प्रसिद्ध है वह **पुरानी बूँदी नहीं**। पुरानी बूँदी भैरव दर्वाजे और सूर्यपोल के बीच में वसती है।

अच्छा! इस तरह केवल इन्हीं महाशय ने इतने देवालय, इतने महल और इनने खाई कोट बनवाये हों सो नहीं। इनका शासन सचमुच बूंदी के लिये बडे २ विशाल **मंदिर महल बनने का युग था**। इनकी प्रतापगढ वाली रानी राज कुमारिजी का बनवाया हुआ कोटे के रास्ते पर एक बाग और बावडी है। बूंदी से पश्चिम की ओर पर्वत के एक ऊंचे शिखर पर **सूर्यछत्री** को बनवाने वाली रानी का नाम राठोरिनी श्याम कुमरिजी था। सोलंखिनी रानी सूर्यकुमरिजी ने सारबाग से दक्षिण की ओर कुछ दूर पर बावडी बनवा कर बाग लगवाया। रानावतरानी चंद्रकुमरिजी की बनवाई कंवारती ग्राम के मार्ग पर बावडी और बाग है। ऐसे ही दक्षिण की ओर रानी राठोरिनी कल्याण कुमरिजी ने बाग और बावडी बनवा दी थी। रानी राठोरिनी फूलकुम-रिजी की बावडी और बाग माटूंदा गांवके मार्गपर, खवास चमेली का बनवाया बूंदी के बाजार चौमुखा में मंदिर (**चमेलीका देवरा**) खवास अनारां का गांव छत्रपुरे में मंदिर और बावडी और उनकी पातुर मयूरी की बनवाई हुई "**मोरडी की छत्री**" अब तक विद्यमान है।

यद्यपि आज कल के भाव से उस समय मसाले के मूल्य में धरती आकाश का सा अंतर होगा। तब से अब चूना, पत्थर और मजदूरी बहुत ही मंहगी होगई है तब भी इनके बनवाये हुए महल मंदिरों का, कोट खाई का, इनके ही दिये हुए द्रव्य से बनवाये हुए इनकी रानियों, खवासों और दासियों के मन्दिर बाग और बावडियों का मूल्य कम से कम **एक करोड रुपया** कूंता जा

सकता है । यों इन्होंने प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप पर मकानात बनवाने में इतना रुपया खर्च कर डाला । इन्होंने सूर्यमलजी के मत से सैंकडों हाथी घोडों का दान कर, छकडे के छकडे ब्राह्मणों को, कवियों को देकर लख लूट खर्च कर डाला। जब टाड साहब के मत से इन्होंने बावन वर्ष की उमर में बावन ही लडाइयां लड डालीं तो उनमें भी लाखों ही रुपया खर्च हुआ होगा। इन बातों पर जब दृष्टि डाली जाती है तब एक दम आश्चर्य में डूब जाना पडता है। किसी भी इतिहास से यह नहीं मालूम होता है कि इन्होंने लूट के माल से अपना खजाना भर लिया हो। बादशाह अवश्य बडा दानी था किन्तु उससे भी इन्होंने अनाप सनाप इनाम पाई हो सो कोई इतिहास नहीं कहता। फिर प्रश्न यही पैदा होता है कि इस प्रकार के खर्च करने के लिये करोडों रुपया इनके पास आया कहांसे ? क्योंकि इनके रनवास का, इनके भाई बेटों का, इनके शूर सामंतों का और इनकी सेना का खर्चा भी अपरिमित था परंतु सचमुच ही "नियत में बरकत" है । धर्मवीर के पास, दानशील के हाथों में अनायास ही धन आजाया करता है। रुपया जो आता है वह खर्च के भाग से आता है इसलिये इन्होंने जो कमाया वही लुटाया और सो भी शुभ कामों में लुटाया ।

यों रावराजा शत्रुशल्यजी जब सब तरह से भले २ काम करके, यश लूट कर नाम कमा गये—युग युगान्तर तक अपना नाम अमर कर गये तब वह शरीर छोड देने पर भी मरे नहीं । बूँदी के इतिहास में—भारतवर्ष के इतिहास में उनका पवित्र नाम सोने के अक्षरों से लिखा जाना चाहिये। वह भारतवर्ष के उन नरेशों में से एक थे जो यहाँ के भूषण गिने जाने योग्य हैं। वह बूँदी नरेशों के सत्य ही शिरोभूषण थे। धन्य हाडावीर ! तुमने हाडा हट का आजीवन निर्वाह किया।

हाडा कुल कमल दिवाकर, समर भूमि में अंगद के समान अचल रहने वाले रावराजा शत्रुशल्यजी की प्रतिभा की, उनके महत्व की और उनके पराक्रम की परख करने के लिये दो एक आंखों देखने वाले गवाह भी मिल गये हैं।

मरहटा वीर शिवाजी के लोकमान्य कवि राज भूषण महाराज इनके जमाने में मौजूद थे। उनके भाई मतिरामजी रावराजा भावसिंहजी की सेवा में बहुत वर्षों तक रहे थे। उनके चरित्र का थोडा बहुत संकेत इस ग्रंथ के तीसरे खंड के ग्यारहवें अध्याय में किया गया है। भूषण जी के चरित्र का, उनकी रचना का, दिग्दर्शन "भूषण ग्रंथावली" में पंडित श्यामविहारीमिश्र एम्. ए. और पंडित शुकदेवविहारी मिश्र बी. ए. ने भली भांति कर दिया है। इस पोथी के अवलोकन से विदित होता है कि इन हाडाराव की प्रशंसा में भूषणजी ने कुछ छंदों की रचना की है और वे छत्रशाल जी बुंदेला की प्रशंसा में बनाये हुए "छत्रशाल दशक" में प्रकाशित हुए हैं। नीचे लिखे हुए दोनों दोहों में हाडाराव शत्रुशल्यजी और बुंदेला शत्रुशल्यजी दोनों की संयुक्त प्रशंसा है:-

दोहा-"इक हाडा बूंदी धनी, मरदम हेवा बाल,
साल्त नौरंगजेबके, ये दोनों छतसाल।
वै देखो छत्ता पता, ये देखो छतसाल,
वै दिल्ली की ढाल, ये दिल्ली ढाहन हाल।"

इन दोनों दोहों में दिल्ली की ढाल हाडाराव और दिल्ली ढाहने वाले महेवा वाले अधीश बुंदेला छत्रशालजी थे क्योंकि हाडाराव शत्रु शल्यजी बादशाह शाहजहां की आज्ञा से दारा के पक्षपाती थे और वही दिल्ली के राज्य सिंहासन का असली उत्तराधिकारी था और दूसरे छत्रशालजी औरंगजेब के सहायक थे और वह दिल्ली को बाप से छीनना चाहता था।

भूषण महाराज की रचना में से दो छंद जो इस ग्रंथ में प्राप्त हुए हैं बडे ही प्रभावोत्पादक हैं। उन्होंने हाडारावकी स्तुति करते हुए लिखा है:-

मनहरन-"चलै चंद्वान, घनवान, कुहूकबान,
चलत कमान धूम आसमान छ्वै रहो।
चली जम डाढैं बाढ वारैं तरवारैं जहां,
लोह आंच जेठ के तरनि मान वे रहो।

ऐसे समै फौजें विचलाई छत्रसाल सिंह,
अरि के चलाये पाय वीर रस च्वै रहो।
हय चले हाथी चले संग छांडि साथी चले,
ऐसी चला चली में अचल हाडा है रहो।
दारा साहि नौरंग जुरे हैं दोऊ दिल्ली दल,
एकै गये भाजि एकै गये रूंधि चाल में।
वाजी कर कोऊ दगावाजी करि राखी जेहि,
कैसे हू प्रकार प्रान बचत न काल में।
हाथी ते उतारि हाडा जूझो लोह लंगर दे,
एती लाज कामें जेती लाज छत्रशाल में।
तन तरवारिन में मन परमेश्वर में,
प्रान स्वामि कारज में माथो हरमाल में।"

कविराजा भूपणजी का एक छंद ऐसा है जिसका मतलब मिश्र बंधुओं ने कुछ और ही तरह समझ लिया है। उनका खयाल है कि इस पद्य में "छत्र-शाल" से मतलब छत्रशालजी बुंदेला से है और रावराजा की पदवी महाराव राजा बुधसिंहजी की थी इसलिये उन्होंने मान लिया है कि, कविराजा बुध-सिंहजी के दर्बार में आये और उन्होंने इनका पूर्ण आतिथ्य नहीं किया इस कारण उन्हींको इसमें ताना दिया गया है परंतु ऐसा मान लेना केवल भ्रम मूलक है क्योंकि जो भूषणजी शत्रुशाल्यजी के सम सामयिक थे वह उनके पर पोते के पुत्र के शासन काल तक जीवित नहीं रह सकते। फिर बूँदी के इतिहास बतला रहे हैं कि रावराजा की उपाधि इनकी वंश परंपरा में आई हुई थी और बुधसिंह जी को महाराव राजा की पदवी प्रदान की गई थी इसलिये मेरी समझ में "रावराजा" से प्रयोजन "राव" और "राजा" से है। वह छंद इस तरह पर है:—

मनहरन—"राजत अखंड तेज छाजत सुजस बडो,
गाजत गयन्द दिग्गजन हिय साल को।

जाहि के प्रताप सों मलीन आफताब होत,
ताप तजि दुर्जन करत बहु ख्याल को।
साज सजि गज तुरी पैदरि कतार दीन्हे,
भूषण भनत ऐसो दीन प्रतिपाल को?।
और राव राजा एक मन मैं न ल्याऊं अब,
साहू को सराहौं के सराहौं छत्र साल को।"

अस्तु "भूषण ग्रंथावली" में इन मिश्र बंधुओं ने लिखा है और यथार्थ लिखा है कि—"छत्रसाल ने तब तक कोई ऐसी लड़ाई नहीं जीती थी जो सल्हेरि और परनालो इत्यादि युद्धों के द्दष्टा और वर्णनकर्ता भूषणजी की निगाह में जंचती। छत्रशाल हाडा (महाराजबूंदी) से तुलना करके मानो उनकी प्रशंसा ही की है क्यों कि तब तक वास्तव में वे ५२ युद्धों में सम्मिलित रहने और लडने वाले **बीरवर हाड़ा** महाराज के बराबर कदापि न थे।" इन महाशयों की यह टिप्पणी उक्त दो दोहों के लिये है।

इस तरह केवल भूषणजी ने ही हाड़ाराव के गुणों का गान किया हो सो नहीं किन्तु इनके भाई "ललित ललाम" के रचयिता कवीश्वर **मति रामजी** भी शत्रुशल्यजी के यशों का—उनकी कीर्ति का स्वयं परिचय पाकर अपनी इसी पोथी में बहुत कुछ लिख गये हैं। वह लिखते हैं:—

मनहरन—"पंडित सुकवि भाट चारन को गुन संमुझैया,
सावधान सदा सुजस विधान में।
कवि मतिराम जाको तेज पुंज दिनकर,
दुर्ज्जन को दाह कर दस हूँ दिसान में।
गोपीनाथ नन्द चित चाही बकसीसन सों,
जाचक धनेश कीन्हे सकल जहान में।
ज्ञान में दिवान शत्रुशाल सुर गुरु साहिबी में,
सुरपति सुरतरु वरदान में।

सवैया—औरंग दारा जुरे दोउ जंग भये भटं युद्ध विनोद विलासी,
मारू बजै मतिराम बखाने भई अति अस्त्रनि की बरखा सी,
नाथ तनै तिहिं ठौर भिर्यो जिय जाति के छत्रिन को रन कासी,
सीस भयो हर हार सुमेरु छता भयो आपु सुमेरु को वासी।
दोऊ जुरे सहजादन के दल जानत है सगरो जग साखी,
मारू बजै रस वीर छके वर वीरन कीर्ति बडी अभिलाखी,
नाथ तबै करतूति करी जगजोति जगी मतिराम सुभाखी,
श्रोनित वैरिन को वरषाय कै राव सता रन में रजराखी।"

जैसे "छत्रशाल दशक" को भूषणजी ने शत्रुशल्यजी बुंदेला का यश विस्तार करने के लिये बनाया है उसी तरह "छत्रप्रकाश" भी उन्हींके लिये है। इसमें लालकवि उनका गुणकीर्तन करते हुए हाड़ा राव शत्रुशल्यजी को नहीं भूलसके हैं। उन्होंने लिखा हैः—

"दारा सार बजत रन छाज्यो, जवन पातसाही को भाज्यो।
हाडा सार धार में पैठ्यो, सूरज भेदि विमाननि बैठ्यो।"

वर्णन थोडा सा होने पर भी मतलब सब निकल आया है। इस चरित्र को समाप्त करने पूर्व बूंदी के पुरोहित दुर्गाशंकरजी की हस्त लिखित पुस्तक से रावराजा शत्रुशल्यजी के विषय में जो बातें विशेष विदित हुईं वे भी यहां उल्लेख करने योग्य हैं। उसमें लिखा है कि दक्षिण का विजय कर जब यह बादशाह शाहजहां की सेवा में उपस्थित हुए तो उसने और २ इनाम इकराम जागीर और पदवियों के अतिरिक्त अपने संगमरमर के सिंहासन के चारों पाये और उसकी चौखट भी दी और साथ ही यह कहा कि—"बाबा रत्न (रत्नसिंहजी) की छत्री में लगाये जायँ।" बूंदी के क्षार बाग में अब भी रावराजा रत्नसिंहजी की छत्री में मौजूद हैं। और नाहर के चौहटे में जो पाषाण का हाथी खडा है वह उसी हाथी की प्रतिमूर्ति है जिसकी बदौलत दौलताबाद का किला टूटा था। जब किसी

तरह तोपों का मेह बरसाने पर भी किले में घुसने का रास्ता नहीं हुआ तब इस हाथी ने सदर दर्वाजे के किंवाड तोडे और तब हाडाओं की सेना भीतर घुसगई। इसका नाम शिवप्रसाद था। रावरत्नजी ने यह बादशाह को भेट किया था और बादशाह ने रावराजा शत्रुशल्यजी को दे दिया था।

गांव बडोधा में लालबिहारीजी का मंदिर राव रत्नजी का बनाया हुआ है और उसका उत्सव शत्रुशल्यजी ने किया था। शत्रुशल्यजी के शासन में सीलोर के छीपा गणेश ने खोजा का दर्वाजा, साठोदरा नागर भट गंगाराम ने अपने दादा के नाम पर भाऊ भट का मंदिर और इनके कृपापात्र बली-राम ब्राह्मण ने राधा दामोदरजी का मंदिर बनवाया। उक्त पुस्तक से यह भी मालूम होता है कि पहले बूंदी में अभयनाथ (आभूनाथ) महादेव के ऊपर प्रताप सागर नामक तालाब था। उसकी झरन का पानी बाजार में सदा बहा करता था। प्रजा का कष्ट देखकर पंडितों से पूछा गया कि—"तालाब को फोड देने का प्रायश्चित्त क्या?" उन्होंने निवेदन किया—"एक लाख ब्राह्मणभोजन।" बस एक लाख ब्राह्मणों को जिमाकर तालाब फोड दिया गया। और इसके अनंतर दूसरा तालाब बनाया गया जो अब नवल सागर के नाम से प्रसिद्ध है। इसतरह उस पोथी में चाहे ऐसा लिखा गया है किन्तु ऐसी बडी बात का वर्णन "वंशभास्कर" जैसे प्रामाणिक ग्रंथ में न होने से संदिग्ध ही है।

तीसरा खंड।

भावसिंह चरित्र।

अध्याय १.

राव भाव की दुहाई।

अपने जीवन और मृत्यु का यथार्थ फल प्राप्त कर स्वर्ग को रावराजा शत्रु-शल्यजी के पधार जाने के अनन्तर रावराजा **भावसिंहजी** ने पैंतीस वर्ष की आयु में **बूँदी राज्य** का शासन भार–राज्य की लगाम अपने हाथ में ली। पिता के सामने इनको रण में, राज्य में, लोकव्यवहार में और धर्मकार्य में अनुभव प्राप्त करलेने का अच्छा अवसर मिलगया था। यह थे भी बडे **होनहार।** इनका न्याय–इनकी उदारता और इनका प्रजापालन आज तक **प्रसिद्ध हैं।** बूंदी राज्य की सर्वसाधारण प्रजा, राजपरिवार **और** स्वयं राजा तक इनका–इनके नाम का यहां तक आदर करते हैं कि जिस समय जो नरेश हो उसके नाम की दुहाई फिरने पर भी इनके नाम की दुहाई उस **दुहाई से कई** दर्जे विशेष मानी जाती है। कोई **दीन दुखिया** किसी के अत्याचार से कष्ट पाकर न्याय पाने के लिये यदि किसी जगह उसे न्याय न मिलने पर–नरेश के न सुनने पर राजा को भी दुहाई–"राव **भावसिंहजी की दुहाई"** दिलादे तो **बूंदीनरेश का** यह प्रधान कर्तव्य है कि वह अपना हजार काम छोडकर भी खडे होजायँ और उसकी **प्रार्थना सुनें।** किसी की मजाल नहीं जो रावराजा भावसिंहजी की आन सुनने पर खडा रहने के बदले–अन्याय करने के बदले एक कदम भी आगे बढने का साहस कर सके। बूंदी राज्य भर के समस्त दूकान दार **प्रातःकाल** उठकर जिस समय दूकानें खोलतेहैं तो अपने २ इष्ट देव का स्मरण करने के साथ विघ्न-विनाशक–गणनायक का पवित्र नामोच्चारण करने के साथ रावराजा भाव-

सिंहजी के प्रातःस्मरणीय नाम का अवश्य स्मरण करते हैं। वे लोग अवश्य कहे विना नहीं रहते कि-"रावभाव आडावला का बादशाह! यश दीजियो और अपयश टालियो।" आडावला उस पहाडी सिलसिले का नाम है जो बूंदी के राज्य के बीचों बीच होकर निकलगया है। केवल इतना ही क्यों बरन बूंदी राज्य में जहाँ २ न्यायालय हैं वहां २ इनकी गादी लगती है। मुख्य २ स्थानों में इनकी गादी का पूजन होता है। न्यायाधीश उस गादी के सामने किसी प्रकार का अनुचित कार्य करते हुए डरता है। कितने ही स्थानों में प्रजावर्ग में विवाह के अवसर पर दूलह दुलहिन गठजोडे से आकर उस गादी को रुपया नारियल भेंट करते हैं और इसलिये उनको स्वर्गवास हुए दो सो वर्ष होजाने पर भी आज दिन वह "हाजिर नाजिर" समझे जाते हैं और बूंदी राज्य की जन साधारण प्रजा उन्हें "हाजिराहुजूर" कहा करतीहै।

दूसरे खंड के गत अध्यायों में पाठकों ने पढ ही लिया होगा कि इनके पूज्यपाद पिता इन्हें सब प्रकार से योग्य समझ धौलपुर के लिये मरने मारने को प्रयाण करते समय, इस यात्रा को मरकर परलोक जाने की महायात्रा मानते हुए राज्य का तिलक कर गये थे। उसी समय से यह छत्रधारी नरेश हो चुके थे किन्तु जब पिता का परलोक वास होगया तब पिता की छत्र छाया की जो थोडी बहुत आशा थी वह भी जाती रही और इसलिये इन्होंने उन्हीं उपदेशों के अनुसार शासन करना आरंभ किया जिनका उल्लेख दूसरे खंड के ग्यारहवें अध्याय में किया गया है। पिता के उन्हीं सदुपदेशों को अपने हृदय की पट्टी पर सदा के लिये अंकित कर इन्होंने उन्हींको अपना पथदर्शक बनाया। उन्हींको माथे चढाकर इन्होंने क्योंकर राज्यशासन किया, कैसे अपने पूर्वजों की प्रतिज्ञा का, अपने प्यारे धर्म का निर्वाह किया सो दिखलाना ही इस चरित्र का उद्देश्य है।

राव राजा भावसिंहजी के लिये "सुभाषित रत्नभांडागार" में किसी प्राचीन कवि की रचना इस तरह मुद्रित हुई है:-

"यस्याग्निः कोपपुंजे वसति खुरपुटे वाजिनां गंधवाहो,
लक्ष्मीः सस्नेहदृष्टौ कमठकुलमणेर्वांचि वाचामधीशा ।
रौक्षे कौक्षेयकाग्रेः क्षपितरिपुगणे कोपनोऽसौ कृतान्तः,
कस्तं श्रीभावसिंहं प्रबलमखभुजामाश्रयं नाश्रयेत ॥ "

अब देखना चाहिये कि इसको उन्होंने कहां तक सत्य कर दिखाया ।

अस्तु ! इन्होंने राज्यशासन की बाग हाथ में लेते ही किस तरह उन चरण बंधा **सती माताओं** का अपने हाथ से अंत्येष्टिसंस्कार किया, कैसे युद्ध में घायल होने वाले वीर पुरुषों की सेवा शुश्रूषा की, कराई और क्योंकर संग्राम में कट मरनेवालों के स्त्री बालक, जननी जनक, भाई बेटों का आजीविका से, जागीर से, वेतन से, द्रव्य से और जो जिस योग्य था उसका उसी तरह **संतोष किया**, किस तरह स्त्री पुत्र विहीन मृतकों का अंतिम संस्कार कर कराकर उनके अस्थि भगवती भागीरथी में पहुंचाये सो विस्तार से लिखने की आवश्यकता नहीं । इस बात का संकेत गत खंड के चौदहवें अध्याय में कर दिया गया है । अब इसे बढाने से कोई लाभ नहीं । हां ! यहां इतना और भी लिखदेना चाहिये कि इन्होंने केवल हाडावीरों की संतानोंका अथवा क्षत्रियरत्नों के स्त्री बालकों का ही संतोष न किया किन्तु इनके पिता के साथ अपनी प्यारी जान देदेनेवालों में योगी राम और बलराम—दो ब्राह्मण, लालचंद, हरिदास, रत्नलाल और खेमकरण—ये वैश्य, फतेहचंद कायस्थ गुमान और ऊदा गूजर, खेमा माली और नाथू पासबान भी थे । सो इनकी स्त्री बालकों का भी सन्मान किया गया । राजसिंहासन पर विराजते समय शास्त्रविधि से और लोकाचार के अनुसार वे ही कार्य किये गये जो परंपरा से होते चले आते हैं ।

अस्तु ! इस तरह उनका शासन संवत् १७१५ के आषाढमास से आरंभ हुआ । उन्होंने अपने **बारह विवाह** किये थे और ये सब उनके पिता के समय में ही होगये थे । इनकी पहली शादी उदयपुरनरेश महाराना राजसिंहजी की भगिनी बाई धनकुमरिजी से हुई थी और इनसे पृथ्वीसिंह जी

नामक राजकुमार का भी जन्म संवत् १७०० में हुआ था परंतु केवल दो मास जीकर नाम के साथ ही इस बालक का नाश होगया। **दूसरा विवाह** प्रतापगढ के सीसोदिया नरेश हरिसिंह जी की कन्या मातुलदेवी से हुआ, **तीसरी बार** इन्होंने राजपुर के बड गूजर क्षत्रिय राजा फतेसिंहजी की कुमरि-हरकुमरिजी का पाणिग्रहण किया, **चौथी बार** यह ईडर के राठोड राजा कल्याणसिंहजी की बाई नाथकुमरिजी को विवाहे, **पांचवाँ विवाह** इनका भानुदहर के भीमसिंहजी की दुहिता गंगाकुमरिजी से, **छठां** रिहाणां के नाथावत प्रतापसिंहजी की पुत्री अमरकुमरिजी से, **सातवाँ** भाटखेडी में चंद्रावत अमर-सिंहजी की कन्या दीपकुमरिजी से, **आठवां** जोधपुर की कल्याणकुमरिजी से, **नवम** वेगूं के चूंडावत राजसिंहजी की बेटी देवकुमरिजी से, **दशवां** राठोड हरनाथसिंह जी की बाई प्रेमकुंमरिजी (लाडकुमरिजी) से, **ग्यारहवां** मालानी के राठोड सुमेरु सिंहजी की अंगजा सदाकुमरिजी से और **बारहवीं** सीसोदिया सहस्रमल्लजी की पुत्री लाडकुमरिजी से हुआ। इनके भाई भगवन्तसिंहजी के आठ विवाह हुए। गत युद्ध में इनके पिता के साथ इनके छोटे भाई मारे ही जा चुके थे। उनके शायद छः विवाह हुए थे। रावराजा शत्रुशल्यजी के साथ उनके एक पुत्र, तीन भाई, चार भतीजे, तीन सपिंडभ्राता, सात असपिंड, तीन सगोत्र और चार असगोत्र मारे गये।

खैर! जो कुछ होना था सो होगया किन्तु रावराजा **शत्रुशल्यजी** की मृत्यु का उल्लेख करते समय कर्नल टाड साहब ने लिखा है किः—

"उनका देहान्त संवत् १७१९ में होगया। उन्होंने मारे जाने के समय चार चार पुत्र छोडे थे। राव भावसिंह, गूगोर पानेवाले भीमसिंह, मऊ पानेवाले भगवन्तसिंह और धौलपुर में मारे जाने वाले भारतसिंह।"

इनमें से भारतसिंहजी के विषय में उन्होंने ठीक लिखा है परंतु बूंदी के इतिहास के मत से भीमसिंह जी उस समय विद्यमान नहीं थे। उनका स्वर्गवास उनके पिता के ही समक्ष होगया। इस कारण उस समय केवल

भावसिंह जी और भगवन्तसिंहजी ही मौजूद थे । इनमें भावसिंहजी बूंदी के राजा हुए और भगवन्तसिंह जी ने बादशाह से मऊ का राज्य जुदा पाया और भाई के राज्य में से छिनवाकर प्राप्त किया।

अध्याय २.

शाहजहां का शासन।

दूसरे खंडके बारहवें अध्याय में औरंगजेब का विजय और दाराशिकोह का पराजय पाठकों ने पढ लिया। गत पृष्ठों का अध्ययन करने से वे लोग यह भी जान ही गये कि शाहजादा **औरंगजेब** का इस समर में विजयी होना मानो दिल्ली का साम्राज्य जीत लेना था। वास्तव में घटना इसी तरह हुई। मुन्शी देवीप्रसादजी के "शाहजहांनामे" से लेकर जो कुछ बात इस पुस्तक के दूसरे खंडके दशवें अध्याय में लिखी गई है उसके आगे पीछे का कुछ हाल—"शाहजहांनामे" से लेकर यहां ज्यों का त्यों प्रकाशित करदेने योग्य है। मुन्शीजी लिखते हैं कि:—

"औरंगजेब (धौलपुर के मैदान में दारा से) विजय पाकर आगरे के पास नूरमहलबाग में पहुंचा। सब अमीर और वजीर इजाफे के लालच से **बादशाह को छोडकर** उसके पास आगये। बादशाह ने इस बात से दुखी होकर फाजिलखां के हाथ औरंगजेब के पास फर्मान भेजा और कुछ बातें जबानी भी कहलाईं जिनका मतलब यह था कि "बहुत दिनों से हमारा दिल तुम्हें देखने को चाहता है परंतु यहां तक पहुंच कर भी अपने बाप को देखने तक न आना जिसने बीमारी का सख्त सदमा उठाकर नई जिन्दगी पाई है सिवाय **कठोरता** के क्या समझा जावे।" औरंगजेब ने बाद शुक्रिये के लिखा कि "कदमबोसी के शौक में दरे दौलत तक तो पहुंच ही गया हूँ। हुजूर में भी किसी अच्छे मुहूर्त पर हाजिर होजाऊंगा।"... ....बादशाह ने फाजिलखां के साथ खलीलुल्लाखां को भेजकर फिर लिखा कि "वह बेटा तो हमेशा से अपने बाप का ताबेदार रहा है फिर अब इतनी निठुराई का क्या सबब है?" खलीलुल्लाखां ने खिलवत में जाकर बादशाह

को कैद करने और उनसे किला और खजाना छीन लेने की सलाह दी। औरंगजेब ने लोगदिखावे के लिये उसे तो कैद करदिया और फाजिलखां से कह दिया कि--"मुझको हजरत की तर्फ से तसल्ली नहीं है। मत कहीं हाज़िर होने पर गुस्से से कुछ और सलूक करैं इसवास्ते मैं नहीं आसकता हूं।"

"फाजिलखां ने लौटकर सारा हाल अर्ज कर दिया तब तो बादशाह ने किले के दर्वाजे बंद करवाकर अपने शुभचिन्तकों के पहरे चौकी बिठला-दिये। औरंगजेब ने रातको किला घेरकर तोपें मारना आरंभ करदिया। भीतर वाले एक दिनरात के घेरे से घबडा उठे। सब के सब औरंगजेब में मिलगये। बादशाहने फिर उसके नाम लिखा कि--"परमेश्वर जिसे चाहता है राज्य और विजय देता है। किसीने अपने जोर से कुछ नहीं किया है हमारे ऊपर सख्त सदमा गुजर रहा है। जमाने ने हमारे सताने में कोई कसर नहीं रक्खी। बाप की ममता और बहन का प्रेम तेरे पत्थर जैसे कडे दिल पर कुछ असर नहीं करते हैं। अब हमने बादशाहत छोडी। एक कोने में बैठ कर परमेश्वर की याद करते हैं। यह राज्य जो चाहै सो ले। तू मतलबी लोगों के बहकाने से क्यों अपने को बदनाम और हम को हलका करता है। इस दुनिया मेंजैसा कोई करता है वैसा ही उसे मिलता भी है। अगर तू इस पर भरोसा करके परमेश्वर और रसूल की आज्ञा के अनुसार बाप की बंदगी करैगा तो परमेश्वर और उसकी सृष्टि के निकट नेकनाम होगा।"

"इसके उत्तर में औरंगजेब ने अर्जी में फिर लिखा कि"—आपकी नाराजी के डरसे मुझे वहम ने घेर रक्खा है। आप किले के दर्वाजों की तालियां मेरे आदमियों को सौंप देवैं तो मैं पूरी तसल्ली से हाजिर होकर आपको राजी रक्खूंगा और आपकी किसीतरह की हतक न होने दूंगा और न कुछ कष्ट सहना पडेगा।"

"बादशाह ने अर्जी पहुंचते ही लाचारी से तमाम किला खाली कर दिया। उसी दम औरंगजेब के आदमी जगह २ बैठ गये। खजानों और कारखानों पर मोहरें लग गईं। बादशाह के पास लोगों का आना जाना

बंद होगया और वह किला उनके वास्ते कैदखाना होगया । अब वह अपनी बाकी उमर बडी तंगी से तेर करने लगे ।"

यहां तक उनके "शाहजहांनामे" का लेख है किन्तु मुन्शी देवीप्रसाद जी अपने "औरंगजेवनामे" में कुछ और तरह ही लिखते हैं। उसमें लिखा है कि:-

"ज्येष्ठ शुक्ला १२ संवत् १७१९ को वह आगरे जाकर नूरमंजिल बाग में उतरा। बादशाह ने अर्जी का जबाब भेजा और आलमगीर तलवार भेजी। बादशाही अमीर और नौकर चाकर उसमें आमिले । आषाढ वदी १ को वह नगर में जाकर दारा की हवेली में ठहरा। उसका इरादा बादशाह की खिदमत में हाजिर होने का था परंतु दाराशिकोह ने शिकायती खत भेज २ कर बादशाह का मिजाज बिगाड दिया था इसलिये औरंगजेब इस इरादे से हट कर आषाढ कृष्ण ९ को दिल्ली की ओर रवाना होगया।"

इन दोनों पुस्तकों से लेकर उद्धृत करदेने से स्पष्ट होता है कि दोनों का लेखक एक होने पर उसने दोनों में यह घटना दो तरह पर लिखी है। एकमें औरंगजेब का बादशाह को आगरे के किले में कैद कर देना लिखा गया है और दूसरे से मालूम होता है कि वह दारा का दिल्ली पर चढाव देख कर पिता को अपने प्रारब्ध के भरोसे यों ही छोड कर दिल्ली की ओर कूच कर गया। टाड साहब के ग्रंथ का इस घटना से बूंदी के इतिहास में संबंध नहीं था। इस कारण वह बिलकुल मौन साध गये किन्तु बूंदी के इतिहास "वंशभास्कर" में जो कुछ उल्लेख है उसका आशय "शाहजहांनामे" से मिलता जुलता है। इस बात का न तो अब संबंध शत्रुशल्यजी के चरित्र से रहा और न भावसिंहजी से इसलिये केवल प्रसंगोपात्त लिखदेने के सिवाय बहस बढाकर पृष्ठ रंगने से कुछ मतलब नहीं। हां! प्यारे पाठक! हाडा-नरेशोंमें प्रत्येक पिता पुत्र का संबंध इन पिता पुत्रों के वर्ताव से मिलाकर-देखलें कि कैसा कोडी मोहर के समान अंतर है।

हां! शाहजहां के चरित्र के जितने शेषांश से इस चरित्र का कुछ संबंध होगा वह समय आपडने पर लिखने के लिये छोड कर यहां यह लिख देना-

चाहिये कि उसका शासन कैसा था? इस प्रश्न का उत्तर देनेके लिये बादशाह शाहजहां का समस्त चरित्र लिखकर फिर उसकी समालोचना करना आवश्यक होता है किन्तु जिन बातों का मेरी इस पोथी से कुछ लगाव ही नहीं उन्हें लिखकर व्यर्थ वितंडावाद बढाना निरर्थक। यहां केवल प्रसंग आपडा है इसीलिये लिखना है कि भारत वर्ष के अनेक मुसलमान बादशाहों में अकबर, जहांगीर, शाहजहां और औरंजेब—ये **चार ही मुख्य** मुगल सम्राट् माने जातेहैं। इनमें **अकबर** इस बादशाहत को दृढ करने वाला, उसे बढाकर पराकाष्ठा को पहुंचाने वाला और **सबसे अच्छा** बादशाह हुआ। हिन्दू राजाओं की लडकियां लेना और जजिया आदि टैक्स लगाना—ऐसे २ कितने ही प्रबल दोष न होते तो शायद उसके समान और कोई नहीं था। अकबर की कमाई **जहांगीर** ने खूब ही भोगी। उसने न्याय की सांकल लटकाने आदि कितने ही शुभकार्य भी किये किन्तु उसके चरित्र में सब से बढ कर कार्य भोग विलास ही समझना चाहिये। हां इतना अवश्य कहदेना चाहिये कि उसने विशेष रूप पर किसी को **सताया भी नहीं**। गत अध्यायों से पाठकों ने जान ही लिया होगा कि थोडे और बहुत बाप के वैरी तो ये सब ही थे किन्तु **औरंगजेब** ने सताने का शिरमौर बनकर नाम पाया। आगामि पृष्ठों से मालूम हो जायगा कि वह कैसा अत्याचारी था, हिन्दू द्वेषी था और क्योंकर उसने मुगल बादशाहत के **सर्वनाश** का बीजारोपण किया। अब रहा **शाहजहां** बादशाह। उसका चरित्र न अच्छा ही रहा और न विशेष बुरा ही। उस बिचारे को अपने शासन काल में अपने बेटों के अत्याचार के मारे सच पूछो तो कोई काम ही कल से करने का अवकाश नहीं मिला और यदि वह भारतवर्ष में बडे २ स्थान बनवा कर अमर यश न लूट ले जाता तो शायद उसे कोई **याद भी न करता**। उसका नाम तक भूल जाते। राजपूताना निवासी—"या तो पूतडां और या भीतडां—"यों दो ही तरह अपना नाम मानते हैं। शाहजहां ने "पूतडां"—पूतों से कैसा नाम पाया सो पाठकों ने सुन ही लिया

अब "भीतडां"—बडे २ मकानों से उसका कैसा नाम हुआ सो "शाहजहां-नामे" से लेकर मैं यहां लिखे देता हूँ।

शाहजहां का शासन वास्तव में भारत की उन बडी २ इमारतों के लिये दुनिया भर में प्रसिद्ध होगया जो अब भी बडा नाम पाये हुए हैं। उसने केवल इसी काम में ३ करोड ६० लाख रुपया खर्च किया। आगरे की इमारतों में १ करोड १० लाख, आगरे के किले की संगमरमर की मसजिद और दौलत खाने में ६० लाख, ताजबीबी के रोजे में ५० लाख, दिल्ली की मसजिद के सिवाय इमारतें ५० लाख, लाहोर के बाग और इमारतें ६० लाख, काबुल की इमारतें १२ लाख, अजमेर और अहमदाबाद १२ लाख, काश्मीर की इमारतें ८ लाख और कंदहार और दावर में ८ लाख खर्च हुए। उसके शासन के २० वर्ष में ९ करोड ५० लाख रुपये रीझ इनाम में खर्च हुए और उसकी सेना का वार्षिक व्यय करोडों पर था। उसके पास कुल सेना ४ लाख ३० हजार जिसमें ३ लाख ७५ हजार सवार, ८ हजार मनसवदार, ७ हजार अहदी बरकंदाज, ४० हजार पैदल थे। इनमें १० हजार सदा बादशाह की सेवा में उपस्थित रहा करते थे। मनसबदारों की पृथक् २ सेना की संख्या इसमें संयुक्त नहीं है।

उसके राज्य की लंबाई ठट्टे के पास लाहुरी बंदर से सिलहट तक २ हजार कोस के लगभग और चौडाई किले बस्त की सीमा से जो ईरानके राज्य से जा मिली है कुतबुल्मुल्क की अमलदारी से मिले हुए अडसे तक १॥ हजार कोस। एक कोस ५ हजार गज का और एक गज ३२ अंगुल का। यह साम्राज्य २२ सूबों में और ये सूबें ४ हजार ३५० परगनों में बंटे हुए थे। जिस समय शाहजहां सिंहासनासीन हुआ उसके राज्य की आय केवल ७ करोड रुपये की थी। उसके शासन में ८० करोड दाम का राज्य और बढ गया। इस किताब में सरासरी ४० दामों का एक रुपया माना गया है इस कारण २ करोड रुपये की वार्षिक आय बढ गई। इस पुस्तक के मत से हाडाराव रत्नसिंहजी का मनसब ५

हजारी जात और ५ हजार सवारों का, रावराजा शत्रुशल्यजी का ४ हजार जात और ४ हजार सवारों का, कोटे वाले माधवसिंहजी का ३ हजार जात और २॥ हजार सवारों का, उनके पुत्र मुकुंदसिंहजी का ३ हजार जात और ३ ही हजार सवारों का, इन्द्रगढ वाले इन्द्रसिंहजी का ४०० जात और ४०० ही सवारों का था। बूंदी के इतिहासों के मत से दोनों बूंदी नरेशों का अंत में बढ कर सात सात हजारी होगया था। इस पुस्तक में लिखा नहीं है किन्तु बूंदी में कहाजाता है कि रत्नसिंहजी तक तो राव की पदवी रही और शत्रुशल्य जी राव राजा कहलाये। मुन्शी देवी प्रसादजी ने भी अपनी "राजपूताने की प्राचीन शोध" में इन्हें रावराजा ही लिखा है।

शाहजहां के शासन में देशी कारीगरी को असाधारण उत्तेजना मिली थी। ताजबीबी का रोजा तो संसार के सात आश्चर्यों में स्थान पा ही चुका है और उसके समय के और २ विशाल भवन भी बडे २ इंजिनियरोंको उनकी विलक्षणता देख कर दांतों अंगुली दबाने पर लाचार करते हैं। मीनाकारी और जडाव के काम के लिये दिल्ली का तख्तताऊस "मयूरसिंहासन" दुनियां में अपना जवाब नहीं रखता है। जेवरों पर जडाई और मीनाकारी का काम भी उस समय बहुत ही चढ बढ कर होता था। बंगाल, गुजरात और बुरहान पुर में ऐसा अनोखा, बारीक और सफीट कपडा बुनता था कि जिसपर दूसरे देशों के बादशाह तक लट्टू थे। इसमें से ईरान, तूरान और रूम के बादशाहों के पास सैंकडों थान सौगात में जाया करते थे। दुदामी के थान मालवे में ऐसे बढियाँ बनते थे कि जिनका मूल्य प्रतिथान ८० रुपये तक पहुंचगया था। कालीनों की कीमत १००) गज तक जा पहुंची थी। बस यही देशी कारीगरी का संक्षेप समझ लेना चाहिये।

शाहजहां बादशाह सदा वजू किये हुए रहता था। वह बडा नमाजी और मुसलमानों के पवित्र त्योहारों पर आधीरात तक—या इससे भी अधिक नमाज पढने में लगाया करता था। वह बडा ही क्षमाशील था।

जिन्होंने उसके शाहजादेपन के समय अपराध किये उनका भी कुसूर उसने क्षमा कर दिया था। किसी पर कठोर दंड होता सुन कर उसकी तवियत घबडा उठती थी। वह अपनी जबान से कभी ऐसी कोई बात नहीं निकालता था जिससे किसी के दिल पर चोट पहुंचती हो। उसके अक्षर बहुत ही अच्छे होते थे और वह कभी २ अपने बेटों और बडे २ अमीरों को अपने हाथ से फर्मान लिखा करता था। उसने आगरा फिर से बसा कर उसका नाम अकबराबाद रख दिया था। वह नित्य ही नियत समय पर झरोखे में बैठ कर दीन दुखियाओं की पुकार सुना करता था।

उसका पूरा नाम अबूउल्मुजफ्फर शहाबुद्दीन मुहम्मद शाहजहां साहिब किरांसानी बादशाह गाजी था। बादशाह अरबी फारसी के सिवाय संस्कृत की भी कदर करताथा। एकदिन तिरहुतके दो ब्राह्मणो को उसके सामने और कवियों के बनाये हुए १० श्लोक ऐसे सुनाये गये जो उन्होंने पहले कभी सुने न थे। उन्होंने एक ही वार के सुनने से याद करके उनको ज्यों का त्यों सुना दिया और उसी क्रम से सुना दिया जिससे बादशाह के सामने और कवियों ने पढ कर सुनाया था। और साथ ही उसी मेल के १० श्लोक अपनी ओर से नये बना कर उसी समय सुना दिये। बादशाह ने केवल १ हजार रुपया इनाम दिया। किन्तु उसने अपने बाप दादे की राय के विरुद्ध हिन्दुओं के मंदिर तुडवा कर अपयश का टोकरा भी अपने शिर पर उठाया। उसने बनारस के ७६ नये मंदिर तुडवा कर आज्ञा देदी कि हमारे राज्य में जहां कहीं नये मंदिर बने हों वा बन रहे हों तुड़वा दिये जांय और अब से कोई हिन्दू नया मंदिर न बनाने पावे। उसका कपूत बेटा उससे भी बढ कर निकला। उसने प्राचीन मंदिर नष्ट करवा कर उनके मसाले से मसजिदें बनवाई। बिचारे हिन्दू नरनारियोंका मुसलमान कर लेना या लौंडी गुलाम बना लेना तो अनेक मुसलमान बादशाहों की चाल थी किन्तु संवत् १६८० की आषाढ शुक्ला १२ को कासिमखां जब ४०० मर्द औरत फरंगियों को कैद करके बादशाह

के पास लाया तब उसने हुक्म देदिया कि इनमें से जो मुसलमान होजायँ उन्हें छोड दो और शेष को कैद रक्खो। बस तुरंत इसकी तामील हुई। उसने पंजाबी दौरे में यह आज्ञा देदी थी कि हमारे लशकर से किसी की खेती को किसी प्रकार की हानि न पहुंचने पावे और जो नुकसान हो जाय तो उसका हर्जा खजाने से देदिया जाय। उसने जगन्नाथ कलावन्त को कविराय की पदवी दी और उसकी नई धुरपदों के नये २ रागों से प्रसन्न होकर उसे चांदी से तौल दिया। तौल में ४॥ हजार रुपये चढे। काश्मीर से संवत् १६९१ में लाहोर आते समय उसे भँवर के पडाव पर मालूम हुआ कि यहां के हिन्दू लोग मुसलमानों की लडकियां विवाह कर उनके मरनेपर उन्हें गाडने के बदले जलाते हैं। बादशाहको यह बात पसन्द न आई। उसने हुक्म देदिया कि जब तक कोई हिन्दू मुसलमान न होजाय उसे मुसलमान औरत न व्याही जाय। वहां का जमीदार जोकू सकुंटुब मुसलमान होगया। उसने दौलत मंद नाम पाकर अपनी बहुत प्रतिष्ठा बढाई। इसी तरह जो राजा या राजकुमार उसके शासन में मुसलमान होगये उनकी सबकी खूब उन्नतियां हुईं।

इसजगह केवल एकही विचार कर्तव्य है। राजपूताना के जिन रजवाडों ने बादशाहों को अपनी बहन बेटियां दीं हैं उनमेंसे किसी २ को प्रायः ऐसा कहते हुए जाना है कि मुसलमानों की बेटियां मिलने पर भी न लेकर हमारे कुल को मुसलमान होने से बचा दिया। इस तरह बच अवश्य गया किन्तु इस पुस्तक की यह घटना इस बात की गवाही देती है की बादशाह ही अपनी लडकियां हिन्दू राजाओं को देने में अपनी हतक समझते थे। शायद वे देने को राजी होते तो इन लोगों को कदापि नहीं करने का साहस न होता। खैर !

उसके शासन का एक बहुत ही खराब नमूना यह है कि संवत् १६९२ में जब प्रताप उज्जैनियां उसके सेनापति अबदुल्ला खां से हार कर सारे शस्त्र डाल, राजसी पोशाक उतार केवल एक धोती पहने अपनी औरत का हाथ पकडे उसकी शरण में आगया—आया क्या उसने स्वयं अपने मुंहसे

कहा कि मैं आपकी शरण में आया हूँ तो अब्दुल्लाखां ने उस शरणागत को बादशाह के हुक्म से मार कर उसकी औरत को मुसलमान कर दिया और अपने पोते से उसे निकाह पढवा दी। और यह दण्ड केवल आज्ञा न मानने पर दिया गया।

"शाहजहांनामे" से लेकर बादशाह के एक न्याय की भी बानगी यहाँ प्रकाशित करदेने योग्य है। संवत् १७१३ में सूरत के मुतसद्दी मुहम्मद अमीन के प्रजा पर बहुत अत्याचार करने की खबर पाकर उसका मनसब और जागीर बंद करदिये। शाहजहां की आज्ञा से वह पकड कर शाही दर्बार में हाजिर किया गया तब आज्ञा हुई कि इसकी बाहों में सांप छोड दिये जाँय। उसके वकीलों ने बहुत कुछ प्रार्थना की किन्तु कुछ सुनाई न हुई। वे लोग दौडकर बेगम साहबा का रुक्का उसे जीवदान देने के लिये लाये क्योंकि सूरत उन दिनों उसकी जागीर में था। बादशाह ने बेगमके महल में जाकर नाराजी के साथ कहा कि:—

"सूरत बंदर तुम्हारी जागीर में है तो क्या हुआ! मुल्क की आबादी रैयत से है। खजाना भी उसी की माल गुजारी से भरता है। और लशकर भी उसीसे बढता है। उसने जमा बढाने के काम में इतना जुल्म किया है कि रैयत को अपने बाल बच्चे ईसाइयों के हाथ बेंच कर हासिल भरना पडा है। सूरत बंदर सातों विलायतों के आदमियों के आने जाने की जगह है। यह खबर दूसरे बादशाहों को मालूम होगी तो हमारी कितनी बदनामी होगी और जो परमेश्वर (खुदा) की खफगी होगी सो अलग।"

इस तरह असली कारण जानकर बेगम ने अपना हठ छोड दिया। उस समय के एक वजीर राजा रघुनाथ ने जब बादशाह से यह अर्ज की कि इसके ऊपर प्रजा का बहुत रुपया बाकी निकलता है। यह यदि इस समय मार दिया जायगा तो लोगों का रुपया डूब जायगा इस पर बादशाह ने उसे कैद कर रुपया दिलाने का हुक्म देदिया। यों उसकी मौतकी अनी टल गई। यह किस्सा केवल दो तीन प्रयोजनों से लिखा गया है। एक यह कि यदि यह लेख सत्य हो तो संसार से दास व्यापार उठा देने वाले

ईसाई भी उस समय दास व्यापार करनेसे नहीं हिचकते थे और उनकी विलायत में इससे बहुत पहले यह कुकर्म बंद होगया था दूसरे प्रजा की पीडा सुनकर बादशाह का हृदय इतना पिघल जाया करता था और तीसरे उसके समय में दंड ऐसे २ भयानक दिये जाते थे। अस्तु।

अब मुझे एक ही बात यहां और लिख कर यह अध्याय समाप्त करदेना है। शाहजहां बादशाह के शासन में केवल मुसलमानों ही को बडे २ पद दिये जाते हों सो नहीं। हिन्दू भी उस समय अच्छे २ उहदों पर काम करते थे। उसने संवत् १६८८ की चैत्र शुक्ला ७ को दयानतराय नागर ब्राह्मण को जो हिसाब अच्छा जानता था और प्राचीन हिन्दी ग्रंथों से अच्छी जानकारी रखता था खालसे का अफसर बनाया। उसका मनसब एक हजारी और २५० सवारों का था। इसकी पदवी रायरायां की थी। संवत् १६९४ में वह दफ्तरदार खालसा और तन दफ्तर का अफसर नियत हुआ। संवत् १६९६ में वजीर अफजलखां के मरने पर उसे कितने ही अधिकार तिजारत के भी मिल गये थे। और इससे एक साल के बाद "रायरायां" की पदवी दी गई थी। संवत् १६९८ की कार्तिक कृष्णा १ को वह कारखानों का दीवान नियत हुआ। इसके बाद वह बादशाही सेवा छोडकर काशी क्यों चला गया सो मालूम नहीं किन्तु संवत् १७०५ में फिर शाहजहां की सेवा में उपस्थित होकर दक्षिण के कुल सूबों का दीवान और बगलाने का फौजदार नियत हुआ। यह कौन और कहां का रहने वाला था सो अभी तक विदित नहीं हुआ किन्तु उस जमाने में दयाराम और वेणीराम दो गुजरात के रहने वाले नागर अवश्य होगये थे जो दक्षिण के जंग में मारे गये थे। इनका नाम बादशाह ने दयाबहादुर और वेणीबहादुर रक्खा था। शायद यही दयानतराय हो। खैर! यहां अधिक बढाने से कुछ मतलब नहीं।

इस अध्याय में जो बातें लिखी गई हैं वे शाहजहां के शासनका दिग्दर्शन करने की इच्छा से लिखदी गई हैं। इनका इस चरित्र से कुछ लगाव नहीं इसलिये और इतिहासों से इनका मिलान करने की भी आवश्यकता नहीं। यदि पाठकों की रुचि हो तो वे स्वयं ऐसा कष्ट उठाने की कृपा करें।

अध्याय ३.

औरंगजेब का बंधुनाश।

आगरे के किले में औरंगजेब ने जब अपने जन्मदाता पिता को कैद कर लिया तब ही शाहजहां बादशाह न रहा। अब उसके भाग्य का फैसला होगया अथवा उसने जैसा सलूक अपने बाप के साथ किया था उससे भी बढ कर बदला पा लिया। वह संवत् १७१५ में कैद होकर संवत् १७२१ तक जीता रहा। जीता क्या रहा बरन यों कहना चाहिये कि ज्यों त्यों करके अपने दिनों के धक्के देता और दिन २ अपने मरने की राह देखता पडा रहा। इस नसीब की भी बस बलिहारी ही है। जो एक दिन सारे भारत वर्ष का बादशाह बनकर सुरराज इन्द्र के समान सुख भोगता था उसे ही बेटे की कैद में मरना पडा। खैर! इस तरह छः वर्ष तक दुःख भोगते २ उसे फिर उसी मूत्रकृच्छ्र की बीमारी ने धर दबाया और संवत् १७२१ की माघ कृष्णा १३ की रात्रि को ७३ वर्ष की उमर में ३१ वर्ष २ महीने राज्य करके शाहजहां सदा के लिये कबर में जा सोया। और उसकी प्यारी बेगम मुमताज महल के मकबरे में जो आज कल "ताजबीबीके रोजे" के नाम से प्रसिद्ध है, दफन किया गया। चार २ बेटे होने पर भी मरते समय उसके पास कोई न था। कोई पोता भी उसके समीप न था। हां औरंगजेब के हुक्म से उसका लडका मुअज्जम अवश्य उसके मातिम में शामिल हुआ। औरंगजेब ने भी सुनकर मातिम की धूमधाम में कमी न रक्खी।

औरंगजेब जब उसे वर्षों पहले कैद कर चुका था तब शाहजहां को तो उसके लिये कांटा समझना भी न चाहिये किन्तु हां यदि बेटे के लिये बाप भी कांटा था तो निकल गया। यह कांटा बहुत देर से निकला परंतु दारा मुराद और शुजाअ—इन तीनों कांटों को किस तरह निकाल कर उसने राज्य किया सो पहले लिख कर फिर रावराजा भावसिंह जी का चरित्र लिखना अधिक उत्तम होगा।

मुन्शी देवी प्रसाद जी वास्तव में मुसल्मानी इतिहासों को हिन्दी का जामा पहनाने में आजकल एकही व्यक्ति गिने जाते हैं। उन्होंने जैसे "जहांगीर

नामा" और "शाहजहां नामा" लिखा है वैसे ही "औरंगजेब नामा" भी। बस उसी पोथी से लेकर इस अध्याय के आरंभ में शाहजहां की मृत्यु का थोडा सा हाल लिखा गया है और पहले उसी पोथी के मत से दारा और मुराद के प्रारब्ध का फैसला करना है। इन दोनों के साथ औरंगजेब ने जिस तरह बर्ताव किया सो ही यहां लिख देना होगा क्योंकि इस षडयंत्र में रावराजा भावसिंह जी संयुक्त न थे। वह शुजाअ से लडने में शामिल थे। इस कारण उस युद्ध का वर्णन फिर समय पडने पर किया जायगा।

खैर! औरंगजेब आगरे के किले में अपने बाप को कैद करके दारा शिकोह को दंड देने के लिये जब दिल्ली को रवाना हुआ तो रास्ते में मथुरा के मुकाम पर उसे मालूम हो गया कि मुराद का इरादा लडाई करने का है। बस इसी अभिशाप में उसे पकड कर दिल्ली के किले में कैद करने के लिये भेज दिया। और स्वयं अपने दल बल समेत दिल्ली पहुंचकर संवत् १७१५ की श्रावण शुक्ला ३ को सिंहासन पर जा बैठा। इसके बाद मुराद के भाग्य का क्या फैसला हुआ सो इस पुस्तक से अभी तक नहीं मालूम हुआ किन्तु बादशाह औरंगजेब ने दिल्ली के सिंहासन पर बैठ कर अपना नाम "मुईउद्दीन मुहम्मद औरंगजेब आलमगीर बादशाह" रक्खा।

दारा शिकोह अथवा उसके पुत्र सिपहर शिकोह से बादशाही सेना की कितनी ही छोटी मोटी लडाइयां हुई। उनका वर्णन करके इस पोथी का विस्तार बढाने से कोई लाभ नहीं। हां! जहां २ उन दोनों ने शाहीसेना का सामना किया वहां २ ही उन्हें मैदान छोड कर भागना पडा। दारा के पैर जब पंजाब में न टिक सके तो मुलतान में, वहां से अजमेर में, फिर मारवाड में और इसी तरह भटकते भटकाते एक वर्ष तक मारा २ फिर कर अंत में अपने बेटे सिपहर शिकोह के साथ पकडा गया। जमीन दावर के जमीदार मलिक जीवन ने इनको पकडकर सेनापति बहादुर खाँ के हवाले किया और उसने बादशाह के पास पेश कर दिया। "औरंगजेबनामे" में लिखा है कि:—

"संवत् १७१६ की आश्विन कृष्णा ९ गुरुवार की रात्रि को उसकी जिंदगीका चिराग ठंढा किया गया। लाश हुमायूं बादशाह के मकबरे में गाडी गई और सेफ खां को हुक्म देकर सिपहर शिकोह ग्वालियर के किले में कैद किया गया।

अस्तु! अब थोडे से में यहां यह भी दिखला देना आवश्यक है कि बूंदी के इतिहास "वंशभास्कर" में इस विषय में क्या लिखा गया है। इस ग्रंथ का अवलोकन करने से विदित होता है कि जब औरंगजेब और मुराद बख्श ने पिता को कैद करलिया तब आमेर नरेश जयसिंहजी, भावसिंहजी और दलेलसिंहजी ने इनके नाम लिखकर पूंछा कि "अब हम बादशाह किसको मानें?" औरंगजेब पहले ही से घाट गढचुका था। उसने वास्तव में मुराद को बादशाह बना देने का झूंठा प्रपंच रचकर स्वयं फकीर होजाने का जाल फैलाया था। असल में उसकी इच्छा यही थी कि पहले बहला फुसला कर मुराद को मिला लिया जाय ताकि वह उपद्रव खडा करके औरंगजेब के मार्ग में कांटे न फैलाने पावै और जब अपना काबू पूरा पहुंच जावै तब उसकी भी सफाई करदी जावे। बस इसी मनसूबे के अनुसार अब उसने मुराद से पूंछा:—

"देखा आपने इन राजाओं का पाप? अब फर्माइये क्या करना चाहिये।" वह इस प्रश्न का शायद उत्तर भी न देने पाया था इसी समय अवसर निकाल कर पेशाब करने के बहाने से वह कमरे के बाहर हुआ और तुरंत ही भाई मुराद अपने मन की मुराद पूरी हुए विना ही पकड लिया गया। बस ऐसे वह मूर्ख मुराद बन कर ग्वालियर के किले में उसके पुत्र समेत कैद किया गया।

ऐसे मुराद भाई की जब वह सफाई कर चुका तो अब दारा शिकोह की पारी आई। इधर जोधपुर नरेश यशवन्त सिंहजी जब से शाहजहां की आज्ञा से औरंगजेब को पकडने के लिये जाकर लडाई के मैदान में से भाग निकले औरंगजेब उन पर दांत पीस ही रहा था। बस दारा को पकड कर बादशाह को राजी करलेने का उनके हाथ अच्छा अवसर आगया। उन्होंने

एक भारी सर्दार को जिस पर दारा बहुत भरोसा रखता था उसके पास भेज कर कहलाया कि—"औरंगजेब से तो हमारी शत्रुता हो ही चुकी और राजनीति के अनुसार भी सिंहासन पर अधिकार आप का है। आप स्वयं बादशाह बन कर हमें वजीर बना दीजिये। बस युद्ध में मार कर उसे पकड लेना हमारा काम है। हम परमेश्वर और गंगाजी को बीच में लेकर आपको बुलाते हैं। यदि आप न आयँगे तो अंत में पछताना होगा।"

बस इन लोगों के झांसे में आकर दारा जो उस समय शतद्रू (सतलज नदी) के निकट था चलकर जोधपुर पहुंचा। यह उसे लिये हुए मीना, मेर, भील और नीच लोगों की ४ लाख सेना लेकर लडने के मिस से दिल्ली गये। दारा ने भी इस समय बहुत सी सेना इकट्ठी करली थी। लडने की तैयारी बादशाह ने अवश्य दिखलाई किन्तु संधि करने के बहाने से दारा को बुलाकर उसे कैद करलिया और तब अपने बडे भाई से पूंछा कि:—

"यदि तुम मुझे इसी तरह पकड लेते तो मेरा क्या हाल करते?"

दारा—"तेरा शिर तलवार से उडवा देते।"

औरंगजेब—"तब मुझे क्या करना चाहिये?"

दारा—"जैसा हम करते तैसा ही तू कर।"

इसपर अपने विश्वास पात्र सेवक बहादुर खां को बुलवा कर भाई को—उस भाई को जो एक ही पिता का बडा पुत्र था वध करने के लिये सौंपा। उसने दिल्ली बाहर १२ कोस लेजाकर पहले नमाज पढने का उसे अवसर दिया और जब दारा के कुरान पढते २ तान कर बहादुर खांने किताब मारी तब कुरान को उठा कर उसने उसी समय दारा का माथा काट लिया। इसके अनंतर बादशाह ने उसके पुत्र सलेम (?)को कैद किया और तब एक शुजाअ के सिवाय उसके लिये कोई कांटा शेष नहीं रहा। हां इस जगह कविराजा सूर्यमल्लजी लिखते हैं कि, जोधपुर नरेश यशवन्त सिंहजी को बादशाह ने इस विश्वासघात के लिये कुछ भी इनाम न दिया और उन्हें अपना सा मुँह लिये रह जाना पडा।

टाड साहब ने बूंदी का इतिहास लिखते समय इस घटना का बिलकुल उल्लेख नहीं किया है और जब इस बात का उससे कुछ लगाव न था तब उन्हें ऐसा करने की आवश्यकता भी नहीं थी। खैर ! "औरंगजेबनामे" का यदि "वंशभास्कर" से मिलान किया जाय तो परिणाम दोनो का एक होने पर भी दोनो के प्रकार में आकाश पाताल का सा अंतर है। एक ने जमीनदावर के जमींदार मलिक जीवन के हाथ से दारा का पकडा जाना बतलाता है और दूसरे ने इस भयंकर विश्वास घात के कलंक का काला टीका जोधपुर नरेश यशवन्त सिंह जी के ललाट पर लगा डाला है। दोनों में से कौन सच्चा और कौन झूंठा है सो उस समय तक नहीं कहा जा सकता जब तक किसी तीसरे इतिहास से किसी तरह की गवाही न मिल जाय। सो न तो मेरे पास इस विषय का छान बीन करने के लिये कोई साधन मौजूद है और जब इस चरित्र का इस घटना से कुछ संबंध ही नहीं तो फिर मुझे ऐसे साधन इकट्ठा कर इसकी छान बीन करने की आवश्यकता भी क्या ? जिन पाठक महाशयों को इसका निर्णय करने की इच्छा हो स्वयं खोज कर लें। हां जब तक इस बात का खूब निश्चय न हो ले "वंशभास्कर" का लेख सहसा संदिग्ध ही समझ रखना चाहिये।

बादशाह ने "औरंगजेब नामे" के अनुसार दारा को पकडने वाले मलिक जीवन को खिलअत, २०० सवारों का मनसब और वख्तियारखां का खिताब दिया। वह अवश्य ही पहले ही सिंहासन पर बैठ चुका था किन्तु उसने उस समय केवल मुहूर्त साध लेने के सिवाय लाहोर जाने की जल्दी से कुछ धूमधाम करने का अवसर नहीं पाया था इसलिये अपने गद्दी पाने के ठीक एक वर्ष बाद वह बहुत ठाठ और ठस्के के साथ तख्त पर बैठा। उस समय उसकी उमर ४१ वर्ष २ महीने और १२ दिनकी थी। उसके सिक्के में एक ओर उसका नाम और दूसरी तर्फ सन जुलूस और टकसाल का मुकाम और इस तरह उसके खुतबे (मुहर छाप) में "अबुल मुजफ्फर मुईउद्दीन मुहम्मद औरंगजेब बहादुर आलमगीर बादशाह गाजी" रक्खा गया। उसने नशे की चीजें बंद करने के लिये एक मुल्ला "एवज वजीह" नियत कर दिया। और

गल्ला और सब चीजों पर से उसने राहदारी का महसूल उठा दिया ! दारा शिकोह का एक लडका तो पहले कैद हो चुका था अब सुलेमान शिकोह को भी पहाडी श्रीनगर के राजा पृथ्वीसिंह ने आमेर नरेश जयसिंहजी के प्रयत्न से अपनी शरण में से निकाल कर बादशाह के सिपुर्द करदिया । यों एक शुजाअ के सिवाय उसके राज्य के सब ही भाई भतीजे नष्ट भ्रष्ट होगये । अब देखना है कि उसका शासन कैसा निकलता है और इस चरित्र के नायक रावराजा भावसिंहजी के साथ उसका कैसा वर्ताव रहा । इस दूसरी बात के लिये आगामि अध्याय देखिये ।

अध्याय ४.

भाई की ईर्षा ।

रावराजा भावसिंहजी के राज्य शासन का आरंभ कर्नल टाड साहब ने अपने ग्रंथ में चाहे थोडे ही शब्दों में क्यों न किया हो किन्तु वह थोडे से में बहुत सा मतलब निकाल गये हैं ।

"औरंगजब" ने राज्य शक्ति प्राप्त करते ही छत्रशाल जी पर जो उसका कोप था उसका बदला उसके उत्तराधिकारी और पुत्र राव भाव पर निकालना चाहा । उसने शिवपुर के गौड राजा आत्मारामजी को आज्ञा देदी कि-"तुम स्वयं जाकर उपद्रवी और असंतुष्ट हाडा जाति को नष्ट भ्रष्ट कर बूंदी राज्यको रण थंभोर सूबे में मिलालो । मैं स्वयं दक्षिण की यात्रा के समय बूंदी आकर तुमको इस सफलता पर बधाई दूंगा"-राजा आत्माराम ने १२हजार सेना के साथ हाडौती पर आक्रमण करके तोपों और तलवारों से उसे खूब ही छिन्न भिन्न किया । बूंदी के जागीर दार इन्द्रगढ वालों के इलाके में खातोली पर जब उन्होंने हमला किया तो समस्त हाडाजाति ने गुप्त रूप पर इकट्ठे होकर गोतरदे (?) में उनका सामना किया । गौडराजा के पैर उखडकर वह भागे और तब इन्होंने बादशाह का सामान लूटकर शाहीझंडा छीन लिया । केवल इतने ही पर राजा को

संतोष नहीं हुआ वह बादशाह के पास पुकारू गये और इधर इन लोगों ने गोलों की मार से शिवपुर को जर्जर कर डाला। बादशाह ने इस बात पर हाडाओं से नाराज होने के बदले उलटी गौड नरेश की दिल्लगी की और कष्ट के समय अपने पडौसी को सताने के अमानुषी व्यवहार पर उनको लानतें भी कम न दीं। हाडाओं का ऐसा साहस देख कर इस घटना से वह बहुत प्रसन्न हुआ और उस अत्याचारी ने फर्मान भेजकर राव भाव को बुलाया और साथ ही लिखा कि हम तुम्हारा अपराध क्षमा करते हैं। एक बार इन्होंने बादशाह की सेवा में उपस्थित होने से नाहीं भी की किन्तु जब उसने अपने नेक इरादे का बारंबार वचन दिया तब भावसिंहजी हाजिर हुए और बादशाह ने शाहजादे मुअज्जम के अधिकार में औरंगाबाद के सूबे पर इन्हें नियत कर प्रतिष्ठा प्रदान की।"

इस तरह साहब बहादुर ने यद्यपि थोडी ही पंक्तियों में काम निकाल लिया है किन्तु बूंदी के इतिहास "वंशभास्कर" मे इन बातों के लिये—इनके साथ अनेक घटनाओं के लिये कितने ही—बहुत से पृष्ठ खर्च किये हैं। बस उन पृष्ठों का सारांश इस जगह लिखकर तब चरित्र का सिलसिला आगे बढाना होगा। ऐसा करने से टाड साहब के लेख का बूंदी के इतिहास से मिलान करना भी बन सकैगा। इस ग्रंथ के मत से जब राव राजा भावसिंहजी ने अपना राजपाट संभाल लिया तब जैसे और २ राजा बादशाह औरंगजेब के बुलाने से दिल्ली गये वैसे ही यह भी गये। सब ही ने बादशाह की नजरें कीं—न्योछावरें कीं और उसने जयसिंह जी आमेर नरेश के अधिकार में एक हजारी मनसब की वृद्धि कर जोधपुरनरेश यशवन्त सिंहजी की पगडी में अपने हाथ से तुर्रा पहनाते हुए कहा:—

"क्यों ? औरंगजेब को पकड कर लाने का वादा किया था ना" ?

"जहां पनाह हम तो तख्त के नौकर हैं।" जोधपुरनरेश ने यही उत्तर दिया।

रावराजा भावसिंहजी ने अवश्य ही बादशाह की सेवा में हाथी घोडे

और अन्यान्य पदार्थ औरों से भी अधिक २ भेंट किये किन्तु इनके पिता का पराक्रम याद करके इन्हें कुछ देने के बदले इनके २० परगने खालसे कर लिये । बादशाह शाहजहां से रावराजा शत्रुशल्यजी ने अंत में सात हजारी मनसब पा लिया था । अब औरंगजेब ने रावराजा भावसिंहजी का मनसब ४॥ हजारी रखकर २॥ हजारी इनके छोटे भाई भगवन्तसिंह जी को जो पहले से औरंगजेब की सेवा में थे देदिया । यों हाडाओं का दुर्द-मनीय बलविक्रम बढता देखकर जैसे टाड साहब के मत से हाडा जाति के दो टुकडे करदेने की नीयत से बादशाह जहांगीर ने कोटे का राज्य अलग करके इस जाति की शक्ति घटादेने का प्रयत्न किया था वैसे ही दूध के जले हुए औरंगजेब ने भी भावसिंहजी और भगवन्तसिंह जी इन दोनों भाइयों के आपस में फूट डाल कर छाछ फूंक २ कर पीने का सूत्र पात किया ।

धौलपुर के युद्धमें दारा के भाग जाने पर केवल प्रारब्ध के बल से औरंगजेब अवश्य विजयी हुआ था किन्तु हाडाओं की मार के मारे उसके दांतों पसीना आगया था, मरते २ भी रावराजा शत्रुशल्यजी ने अपने भीम पराक्रम से घबडाहट में डालकर औरंगजेब की सेना का छठी का दूध निकाल डाला था और इस तरह आजकल की भाषा में उसे अच्छी तरह आटा दाल का भाव मालूम पडगया था इस कारण उसका हृदय उस बात को याद कर२के यदि जलता हो—यदि उसके दिल में द्वेष की आग धधक२कर चिन-गारियां छोडती हो तो कुछ आश्चर्य नहीं है क्योंकि जिसकी राज्य लोलुपता में—जिसके द्वेषानल में पिता, भाई, भतीजे—सारा कुनबा ही जलकर राख होगया उसका भावसिंहजी पर कोप होना कोई विशेष बात नहीं थी । हां ! इतना इस जगह अवश्य ही लिखना पडेगा कि उसका कोप यदि उचित हो सकता था तो शत्रुशल्यजी पर भावसिंह जी पर नहीं । शत्रुशल्यजी यदि इस समय विद्यमान होते तो शायद वह कदापि न मुचते और भावसिंहजी भी केवल छुई मुई नहीं निकले जो अंगुली दिखाते ही सिकुड जाया करती है । आगे के अध्यायों का अवलोकन करने से यह

बात खुल जायगी। तब ही पाठकों को मालूम होजायगा कि वह भी उनके पिता के समान स्वच्छ सोना निकले।

पिता का बदला लेने के लिये यदि भावसिंहजी पर कोप करके औरंगजेब इनके परगने उतार लेता तो इन्हें इतना दुःख न होता इनके छोटे भाई भगवन्तसिंहजी को भारत साम्राज्यभर में से कहीं के एक-दो-सो-पचास परगने देकर उन्हें बडे भाई से भी बढकर दर्जा दे दिया जाता तो इन्हें दुःखित होने के बदले सुख होता किन्तु इन्हें दुःख इस बात का हुआ कि बादशाह ने ऐसा करके इनके कुटुंब में कलह खडा कर दिया। खैर! जो कुछ होना था सो होगया।

इन परगनों में से टोंक, मालपुरा, केकडी, हथनीगढ, हिंगुलाज, मैसोदा, पानगढ, और केथोली ये आठ परगने शत्रुशल्यजी को शाहजहां से विजय की रीझ में मिले थे और भीमगढ उन्होंने मर्दामर्दी लिया था। बारां और मऊ इनके पुराने थे और छीनलेने के बाद उन्हें वापिस मिल गये थे इनके सिवाय खैराबाद, बडोद, सागर, आगर, सारंगपुर, भिलसा, वालाभेट, सिंरोझ, छबडा,—बस ये कुल बीस परगने थे। इनमें से और २ परगनों के जाने का इन्हें विशेष दुःख नहीं हुआ क्योंकि वे जैसे आये तैसे ही चलेगये। इन्हें खेद हुआ मऊ और बारां के निकलजाने का और सो भी इस लिये कि ये इनके पैतृक थे। भगवन्तसिंह जी में यदि कुछ भी बुद्धि होती तो वह पिता समान बडे भाई से प्रेम रखने के लिये अथवा समस्त हाडा जाति के एक समष्टि शरीर के दो टुकडे न करने के लिये अथवा परगने लेकर उनकी जीविका पर लात न मारने के लिये बादशाह से नाहीं करदेते। यदि वह ऐसा करदेते तो बूंदी के इतिहास में उनका नाम सोने के अक्षरों से लिखाजाता। जब वह रावराजा शत्रुशल्यजी के पुत्र थे तो नहीं कर देना भी उनके लिये बडी बात न थी। पितृद्रोही औरंगजेब के नौकर होकर शाहजहां की इनाम स्वीकार न करने में उन्होंने एक बार अपने साहस की बानगी भी दिखला दी थी। ऐसे समय में वह यदि यह सोचते कि मेरे पिता ने स्वार्थ त्याग कर शाहजहां से इनाम लेने के बदले अपने काका

हरिसिंह जी का अपराध क्षमा कराकर उन्हें एक लाख का पट्टा दिलवा दिया था तो उनका नाम रहजाता। परंतु उनको लोभ ने, घेर लिया। लोभ आदमी को अंधा करदेता है। बस उसीके वशीभूत होकर उन्होंने यह न सोचा कि बादशाह मुझसे प्रसन्न होकर मुझे राव बनाने के व्याज से हाडाओं की एक समुदाय शक्ति के दो टुकडे करके हिन्दू जाति को दुर्बल कर रहा है अथवा अपने राज्य का एक प्रबल कांटा निकाल रहा है।

उन्होंने मऊ बारां का राज्य अवश्य पालिया किन्तु बूंदी के अनेक शूर सामन्त, यहांके अनेक सुभट, यहांके अनेक कवि और यहांके अनेक छोटे बडे अधिकारी–कर्मचारी जीविका विहीन हो बैठे। जिन लोगों का रोजगार उन परगनों में था, जो वहां जागीरें पाते थे अथवा उन परगनों की आय से राज्य के खजाने में रुपयों का बाहुल्य होकर बूंदी में जिनकी रोजी चलती थी वे सब बेकार होगये। बस इस बात से बूंदी नगर में–राज्य में और इनके शिबिरों में खलभली मचगई। इनके संगी साथियों ने पहुंचोंपर बल दे २ कर, मोंछोंपर ताव दे२कर, इन्हें यही सलाह दी कि "बादशाह का रहा सहा पट्टा फाडकर फेंक दो और अपने बाहुबल से अपने राज्य की रक्षा करने के लिये मारो और मरो" किन्तु वीर भावसिंहजी ऐसे हडबडाने वाले व्यक्ति नहीं थे। उन्होंने अपने पूज्यपाद पिता से जिसतरह अभ्युदय में क्षमा की, युद्ध में वीरता की, यश में अभिरुचि, सभा में वाक्पटुता की, व्यसनों में पवित्रता की शिक्षा पाई थी उसी तरह विपत्ति में धैर्य का गुण भी उनमें भर दिया गया था। बस इसलिये इन्होंने सब लोगों का संबोधन करके कहा:–

"वीरो, घबडाओ नहीं। जरा धैर्य रक्खो। अभी तलवार उठाने का समय नहीं आया है। जब आवैगा तो तुम्हारा यही भरोसा है कि तुम अपने वचनों को सच्चा सिद्ध कर दिखाओगे। मऊ बारां गये तो क्या चिन्ता है। गये तो हमारे भाई के ही घर में हैं। अभी जितना टुकडा बचा है उसे सब मिलकर, बांट कर खा लेंगे।"

इस तरह हाडराव ने दिल्ली में और फिर बूंदी, आकर सब लोगों को आश्वासन दिया। कितने ही अपने हृदय की दुर्बलता दिखला कर इन्हें

छोडजाना चाहते थे उन्हें ढाढस दिला कर रोका और इसी अवसर में इनके एक राजकुमार का जन्म हुआ था—जिसका धूमधाम से उत्सव किया और तब ही से नेगियों के, राव चारणों के लिये, व्यास, पुरोहित, भाट, नाई और ढोलियों के नेग की व्यवस्था सदा के लिये करदी। और इस तरह दिखला दिया कि सघन वन का निवासी सिंह यदि शिकार न पाकर भूखों मरने लगे तब भी वह जिस तरह अपनी क्षुधा निवृत्ति के लिये घास नहीं खाता है उसी तरह कुलीनों पर घोर विपत्ति पडजाने पर भी वे नीच कर्मों का आचरण नहीं करते हैं।

खैर! इन्होंने इस विपत्ति को सह लिया किन्तु भगवन्तसिंह जी को भाई से अलग होने के साथ ही ईर्षा बढी। अब वह राजा तो जुदे हो ही गये थे किन्तु उन्होंने मन भी अपने भाई से, भाई बंधुओं से, जातिवालों से अलग करलिया। यहां तक स्वतंत्र होगये कि मिलना भेटना छोडदिया, आपसका कुल व्यवहार, कुटुंबसंबंध त्याग दिया और इस तरह एक प्रकार बूंदी से नाता ही तोड दिया।

इसप्रकार भाई से वैमनस्य होना था सो होगया, राज्य का जो बृहत् भाग जाना था सो चला गया और विपत्ति भी पडनी थी सो पडगई किन्तु इन्होंने किस प्रकार इस कष्ट को सहा, कैसे बादशाह को अपनी बहादुरी की बानगी दिखाकर प्रसन्न किया और कैसे धर्म की,कुलाभिमान की समय२ पर रक्षा करते हुए उसके आज्ञाचारी होने पर भी औरंगजेब जैसे दुर्दान्त बादशाह से न दबे सो धीरे २ पाठकों को मालूम होजायगा। कुछ आगे बढने से उन्हें विदित होगा कि भगवन्तसिंहजी ने क्यों कर पराक्रम दिखाकर मृत्यु पाई और उनके कुटुंब का किस तरह रावराजा भावसिंहजी ने हितसाधन करने में आत्मीयता का परिचय दिया। बस ये बातें—ऐसी २ अनेक बातें आगामि अध्यायों का विषय है। उनके पढने से पाठकों को औरंगजेब के चरित्रका भी थोडा २ नमूना मालूम होगा।

अध्याय ९

भावसिंहजी की बहादुरी।

मुन्शी देवीप्रसादजी का "औरंगजेबनामा" जब बहुत ही संक्षेप से लिखागया है तब उसमें यदि गत अध्याय में लिखी हुई दोनों घटनाओं का उल्लेख न हो तो कुछ आश्चर्य नहीं किन्तु अचरज इसबात का है कि "वंश-भास्कर" में भावसिंह चरित्र का अच्छा विस्तार करने पर भी टाड साहब की लिखी हुई बात का वर्णन करने में कविराजा सूर्यमल्लजी मौन साध गये हैं। उन्होंने कहीं नहीं लिखा कि औरंगजेब ने इनपर क्रोध करके बूंदी छीन लेने के लिये शिवपुरनरेश आत्मारामजी गौड को अपनी सेना का सरदार बनाकर भेजा और हारकर जब गौड राजा ने पलायन किया तब हाडाओं ने शाही झंडे छीन लिये।

खैर! "वंशभास्कर" में लिखा है कि जब औरंगजेब को यह मालूम हुआ कि शुजाअ सजधजकर बादशाही सेना से युद्ध करने के लिये पटना नगर से पूर्व भगवती भागीरथी के किनारे राजमहल तक आ पहुंचा है तब उसने भाई से लडने के लिये अपनी सेना लेकर स्वयं कूच किया। बूंदी नरेश भावसिंहजी और बादशाह के कृपा पात्र भगवन्तसिंहजी भी उसके साथ थे। खजुआ के निकट दोनों दलों का खूब ही घमासान संग्राम हुआ। दो दिन और दो रात निरंतर दोनों ही ओर से खूब गोले बजे। तीसरे दिन दोनों भाई अपने २ शूर सामन्तों सहित अपने २ घोडे बढाये हुए शुजाअ की सेना में बेधडक जा घुसे। वहां पैठकर इन्होंने अवश्य ही शत्रुसेना के बडे २ सुभटों को अपने २ खांडों से, अपनी २ तलवारों से और अपने २ भालों से गाजर मूली की तरह खूब ही काटा किन्तु जब इनकी मारकाट से शत्रुसेना में तहलका मचगया था तब एका एक औरंगजेब की सेना बिखरगई। इस बात को जानकर शुजाअ ने उसपर धावा किया और परिणाम यह हुआ कि औरंगजेब के हाथी को शुजाअ के एक सरदार के हाथी ने दांतों की टक्कर लगाकर गिरादिया। हाथी के गिरते ही

एकदम बादशाही सेना में पुकार मची कि—"बस हाथी से गिरा सो तख्त से गिरा।"

कहने वाले कुछ भी कहें परंतु जब हाथी बैठ ही गया और अनेक प्रयत्न करहारने पर न उठा तब अवश्य लोगों ने औरंगजेब की हार भी मानली। यहां तक कि जोधपुरनरेश यशवन्तसिंहजी ने अब शुजाअ को दिल्ली का बादशाह मानकर शाही बेगमों के खेमे लूट लिये और तब यह औरंगजेब का साथ छोडकर जोधपुर चले गये। परंतु अभी औरंगजेब के दिन सीधे थे। उसके भाग्य में अपने भाई भतीजों को मारकर एकबार एक छत्र राज्य करना था। बस इसलिये हाथी ज्यों त्यों करके उठाया गया। जिस मुसलमान सरदार के हाथी की टक्कर से औरंगजेब का हाथी गिरगया था उसे भगवन्तसिंहजी ने मार गिराया। इस समय बादशाह ने भावसिंहजी को दूर खडे देखकर इन्हें लडने के लिये बढावा दिया। औरों के भाग जाने पर भी—अपनी सेना विचलित होजाने पर भी इन्हें अचल खडे देखकर कहा:—

"यह सर बुलंद तलवारों के हाथ दिखाकर अभी नाम पावेगा।"

बादशाह के ऐसे उत्तेजनापूर्ण वाक्य सुनकर भावसिंहजी का उत्साह बढा और तुरंत ही वह काई की तरह शत्रुसेना को चीरते हुए औरंगजेब को साथ लिये हुए शत्रुसेना में घुस पडे। इनको इस तरह बढते देखकर औरों को भी साहस बढा और तुरंत ही इनलोगों ने शुजाअ को जा लिया। बस अब भावसिंहजी का हाथी उसके हाथी से भिडगया। बादशाह ने इनका मन बढता देखकर फिर इन्हें उत्तेजना दी। फिर कहा:—

"बस मनसब बढाने का यही समय है।"

और तुरंत ही सूर्यमल्लजी के शब्दों में भावसिंह जी शुजाअपर इस तरह झपटे जिस तरह किलकिला पक्षी मछली पर झपटता है। इन्होंने पहले भालों की मार से उसके हाथी को व्याकुल कर महावत का खांडे से सिर काट लिया और फिर वही खड्ग शुजाअपर चलाया। उसका सिर कट-कर अवश्य ही धरती पर गिरजाता क्यों कि जब वह एक पराक्रमी राजा के

सधे हुए हाथों से किया गया था किन्तु उसके पास हाथी के हौदे पर जो सुभट खवासी में बैठाहुआ था उसे अच्छा औसान आगया। उसने इनके खाँडे का प्रहार अपनी ढाल पर झेललिया और ऐसे उस समय शुजाअ के प्राण बचगये। अब भगवान भुवनभास्कर के अस्त होजाने से चारों ओर अंधेरा छागयाथा। किसी को अपना पराया नहीं दिखाई देता था, बस ऐसा अवसर देखकर शुजाअ घबडा उठा। इधर रात्रि का घोर अंधकार और उधर भावसिंहजी के हाथ से मारे जाते २ प्राणरक्षा और तिसपर हाडाराव के चचेरे भाई जजावर के महाराजा रूपसिंहजी के हाथ से उसके वजीर इबादतखां का मारा जाना—ऐसा होते ही शुजाअ के पैर उखड गये। वह अपनी जान लेकर भागा और तब विजयलक्ष्मी केवल भावसिंहजी की बदौलत औरंगजेब के चरणों में आ लौटी। हाडाराव का असाधारण पराक्रम, अदम्य साहस और अप्रतिम उत्साह देखकर औरंगजेब इनके पिता का वैर भूलगया। उसके मुख से अनायास निकल पडाः—

"वाह हाडाराव! शाबाश बहादुर! शाबाश!!! बस आज की फतह तुम्हारी ही बदौलत हुई।"

ऐसे विजयभेरी बजाते २ जब औरंगजेब अपने शिबिरों को लौटा तो मार्ग में ही उसने सुना कि उसके खेमे लुटगये और उसकी बेगमों के जेवर कपडे तक को लूटलिया। यद्यपि लूट पाट कर जोधपुरनरेश यशवन्त-सिंहजी स्वदेश को लौटगये थे किन्तु इस का अपराध मंढागया हाडाराव के नौकरों के माथे। इनके नौकर अवश्य लूट में शामिल हुए थे और साथ ही भगवन्त सिंहजी के सेवक भी। भगवन्तसिंहजी के इस संग्राम में घाव भी अधिक आयेथे। इसलिये बादशाह ने उनके इलाज का प्रबंध कर भावसिंहजी की सेना को कतल कर डालने की आज्ञा देदी। इसतरह जैसे वह एकबार "बाप का वैर" भूलगया था वैसे ही अब शुजाअ को मारभगाने का अहसान भूलगया। तुरंत शाही सेना ने हाडा राव के शिबिर घेर लिये। भावसिंहजी उस मट्टी के पुतले नहीं थे जो गीली होने पर दबजाय और सूखते ही फूटजाय। वह तुरंत ही तलवार लेकर लडने को तैयार हुए। झगडा बढता देखकर बादशाह के दो

विश्वसनीय नव्वाबों ने बीच में पडकर बीचबचाव किया और तब अपराधियों को सिपुर्द करदेने पर झगडा निपटा। इन दोनों नव्वाबों का नाम जाफर खां और शाइस्ताखां था। हाडाराव इस ठहराव से पहले ही अपराधियों को दंड देचुके थे इसलिये इन दोनों ने बादशाह से विनय किया:—

"जहांपनाह, यह शुजाअ सिर्फ इनकी बहादुरी से ही भागा है। और जो लूट भी की तो यशवन्तसिंहजी ने। हाडाराव के नौकर जो इस काम में शामिल हुए थे उनको इन्होंने सजा भी देली। ऐसी हालत में अगर आप इनको सजा देंगे तो सब हिन्दू राजा आप के दुश्मन बनजायंगे।"

बादशाह नव्वाबों के ऐसे परामर्श से शान्त अवश्य हुआ और उसने भगवन्तसिंह जी को सात परगने भी दिये किन्तु भावसिंहजी के लिये उसके हृदय में जो द्वेष था वह निकला नहीं और इस कारण शुजाअ को भगाने के समय उसने मनसब बढाने का जो वचन दिया था वह यों ही हवा में उडगया।

खैर! न दिया सो न दिया परंतु जब बेगमों के लूट का माल लेकर राठोड नरेश यशवन्तसिंहजी जोधपुर पहुंचकर अपने जनाने महलों में हाडाराव भावसिंहजी की बहन कर्मवतीजी के पास गये तब उन्होंने मोंछों पर हाथ डालकर अपनी रानी से कहा:—

"जिस औरंगजेब के डरसे भागकर मुझे यहां चला आने पर तुमने ताना दिया था अब उसीके शिबिरों का—उसकी बेगमों का जेवर लूट लाया हूँ। इन्हें प्रसन्न होकर धारण करो।"

प्राणनाथ ने अवश्य ही प्रियपत्नी के बढिया२आभूषण अर्पण किये थे किन्तु माल लूट का था। जीत या बहादुरी से प्राप्त नहीं हुआ था इसलिये हठीली हाडीजी ने इसको स्वीकार न किया और इसपर पतिने जितना कोप किया यह सब सहन करलिया।

इस तरह औरंगजेब और शुजाअ के संग्राम में भावसिंहजी को भीम विक्रम से शुजाअ का भागजाना, जोधपुरनरेश यशवन्तसिंहजी का शाही शिबिरों से शाही बेगमों को लूटलेना, इसकार्य से अप्रसन्न होकर प्यारे पति की कर्म-

बतीजी का भेट स्वीकार न करना और भावसिंहजी पर अभीतक औरंगजे-बका कोप कम न होना—इन घटनाओं का उल्लेख केवल 'वंशभास्कर' के आधार पर किया गया है । कर्नल टाड साहब ने हाडा जाति के इतिहास की केवल मुख्य२घटानाओं का उल्लेख किया है और इसलिये वह गत अध्याय में लिखित आत्मारामजी गौड के हार भागने का संवाद प्रकाश करने के सिवाय भावसिंहजी को दक्षिण की सूबेदारी दिलवाकर चुप होगये हैं । इस कारण ही वह यदि इस घटना का वर्णन न करसके तो कोई विशेष आश्चर्य नहीं और मुंशी देवीप्रसादजी का "औरंगजेबनामा" भी इतना संक्षिप्त है कि उसमें अंबावाडी समेत हाथी चने की दाल में ठूंसदेने का यत्न किया गया है इस कारण उसमें भी इन बातों का कुछ उल्लेख नहीं । उसमें औरंगजेब का शुजाअ के साथ युद्ध होना जिस तरह लिखा है उसका सारांश यह है:—

"संवत् १७१९ में जब बंगाल से शाह शुजाअ के चढकर बनारस तक पहुंचजाने की खबर औरंगजेब को मिली तो वह पौष वदी २ को दिल्ली से बिदा हुए । बादशाह पहले सोरों और तब कोडा गया । यहांसे चार कोस पर शुजाअ का लशकर पडा हुआ था । जंग भारी हुआ किन्तु शुजाअ हारकर भाग गया । महाराजा यशवन्तसिंह जाहिर में तो ताबेदारी करता था किन्तु दिल में दुश्मनी रखता था । वह दाहिनी सेना का सरदार बना हुआ था । उसने कारखानों, खजानों, अमीरों और सिपाहियों का माल असबाब लूट लिया ।"

"वंशभास्कर" में लिखे हुए संग्राम का इससे यद्यपि नाम धाम नहीं मिलता है क्यों कि उसमें यह युद्ध पटना के निकट राजमहल में होना बत-लाया गया है और इसमें कोडा में । परंतु इसके मत से यह लडाई संवत् १७१९ में हुई और "वंशभास्कर" में साल संवत् लिखा न होने पर भी इसी संवत् के निकट होना पाया जाता है । फिर दोनों इतिहासों में इसके सिवाय साक्षात् औरंगजेब से शुजाअ के दूसरे कोई युद्ध होनेका उल्लेख नहीं है तब ऐसा मानने में कुछ भी संदेह नहीं है कि यह युद्ध एक ही था ।

हां ! दोनों में एक बात का बहुत भारी अंतर है ।: वह यही कि एकमें केवल औरंगजेब के पराक्रम से शुजाअ के भागजाने का उल्लेख है और दूसरा हाडाराव भावसिंहजी की बहादुरी से। इन दोनों के सिवाय जब कोई तीसरा गवाह इस समय उपलब्ध नहीं है तब कैसे कहा जा सकता है कि दोनोंमें से किसको सच्चा मानना चाहिये। हां ! इधर कविराजा सूर्यमल्लजी जब विना अच्छी तरह छानबीन करने के यों ही चापलूसी से लिख मारने वाले मनुष्य नहीं थे और उधर मुंशी देवीप्रसादजी ने फारसी इतिहासों का आधार लेकर संक्षेप करने में कमी नहीं रक्खी है। इसके सिवाय जब इस समर में सेना का प्रधान नायक होकर स्वयं औरंगजेब गया था तब उसके साथियों द्वारा जय–उसीका जय था क्योंकि लोग कहा भी करते हैं कि–"लडै फौज नाम सरदार का" तब मेरा मत "वंशभास्कर" के लेख का अनुमोदन करने ही में अग्रसर होता है।

अस्तु ! यशवन्तसिंहजी के विषय में बूँदी के इतिहास में जो कुछ लिखा गया है उसके एक अंश का अनुमोदन "औरंगजेबनामे" से होता है और मुंशी देवीप्रसादजी के बनाये "यशवन्तसिंहचरित्र" में कर्मवतीजी के विषय में कुछ नहीं लिखा है। उज्जैन से भागकर जोधपुर चलेजाना दोनों में लिखा है और शुजाअ से मिलकर बादशाह के डेरे लूटते हुए जंग के मैदान से चल देना भी दोनों ही से पाया जाता है। इसके सिवाय जब यशवन्तसिंहजी के चरित्र से इस पुस्तक का कुछ संबंध नहीं तब यहां उसे लिखकर कागज रंगने की आवश्यकता भी नहीं। कर्मवतीजी भावसिंहजी की बहन थीं। इस कारण उनके चरित्र का जितना सा भाग मालूम होसके प्रसंगोपात्त प्रकाशित करदेना ही मेरा उद्देश्य है। इस से कोई यह न समझले कि यशवन्तसिंहजी का चरित्र ऐसी २ बुराइयों ही बुराइयों से भरा हुआ है। उनके चरित्र को जानने की जिनकी इच्छा हो वे महाशय मुंशी देवीप्रसादजी रचित "यशवन्तसिंहजी गजसिंहोतका चरित्र" देख सकते हैं।

"वंशभास्कर" के मत से शुजाअ ने जंग के मैदान में से भागकर फिर सेना सजाई। खबर पाकर बादशाह औरंगजेब ने अपने पुत्र सुलतान मुअज्जम

के अधीन करके बूंदीनरेश भावसिंहजी, आमेरनरेश के पुत्र रामसिंहजी और कीर्तिसिंहजी, शिवपुर के गौड सरदार अनिरुद्धसिंहजी और कोटा नरेश जगत्सिंहजी को भेजा और साथ ही सब को यह आज्ञा देदी कि "या तो शुजाअ को पकड ही लाओ अथवा मारडालो ।" सेना इनके साथ ८० हजार दी गई थी और यह चढकर गये भी किन्तु लड मरने के बदले बाप के वैरी चाचा ने शाहजादा सुलतान मुहम्मद को अपनी बेटी देकर फुसला लिया । शाहजादा शाही शिबिरों से निकल कर अपने चाचा के पत्र के अनुसार शुजाअ के पास चलागया और वहां सगे चाचा की बेटी से निकाह कर जब उसके प्रेम में आसक्त होगया तब इन राजाओं ने बादशाह को लिख कर या तो लडने या लौटआने की आज्ञा मांगी । बादशाह का हुक्म इनकी अर्जी के उत्तर में यही पहुंचा कि–"वहां ही अडे रहो और जहां तक तुम लोगों से बन सकै शुजाअ को दिल्ली की ओर न बढने देना "

इस आज्ञा के अनुसार सब ही नरेश वहां अवश्य अडे रहे किन्तु प्रपंची औरंगजेब ने अपनी कूटनीति से उस जगह लडने का अवसर तक न आने दिया। औरंगजेब ने न मालूम कैसी चाल खेली कि जिससे इन चाचा भतीजे में द्रोह पडगया और इस तरह श्वशुर शुजाअ से सुलतान मुहम्मद ने औरंगजेब को मारकर स्वयं बादशाह बनबैठने की जो आशा प्राप्त की थी उसपर सदा के लिये पानी फिर गया और ऐसे उसे ग्वालियर के किले में पिता औरंगजेब की आज्ञा से कैद होजाना पडा केवल। इतना ही क्यों शुजाअ के भी पैर अब उखड गये और तब वह भारतवर्ष से भागकर ब्रह्मदेश में अराकान के राजाकी शरण में चला गया । सूर्यमल्लजी को चाहे उस नरेश का नाम मालूम नहीं हुआ परंतु "वंशभास्कर" के अवलोकन से विदित होता है कि उसने ओरंजेब को प्रसन्न करने के लोम में पकडकर विश्वास घात करके शुजाअ को सकुटुम्ब मरवा दिया । इसतरह बादशाह के एक २ करके समस्त ही कांटें निकलगये । ऐसे वह पिता को कैद कर, दो भाइयों को मारकर, तीसरे को कैद करके और अपने बेटे भतीजों का दमन कर अपने कुटुम्ब की ओर से अवश्य निष्कण्टक होगया और उसका शासन भी बहुत ही जोरदार हुआ किन्तु वह भी सुख से बैठने

न पाया अंत में वह भी पछताता२ मरा और इसमें संदेह नहीं कि उसका अत्याचार ही भारतवर्ष से मुसलमानी बादशाहत का समूल नाश करदेने का कारण हुआ। इन बातों का भावसिंहजी के चारित्र से संबंध नहीं। उनके चरित्र से जितने से अंश का संबंध है वही मुझे इस पुस्तक में लिखना है। विशेष के लिये भारतवर्ष में एक नहीं अनेक इतिहास विद्यमान हैं।

शुजाअ और सुलतान मुहम्मद के विषय में जो बातें "वंशभास्कर" से लेकर ऊपर लिखीगई हैं वेही थोडे लोटफेर के सिवाय "औरंगजेब नामे" में हैं। हां! उन में संक्षेप करने के लिये मानसिंहजी का नाम नहीं लिखा है, किन्तु यशवन्तसिंहजी के चरित्र में इस बात का आभास अवश्य है। यदि न भी हो तो जब केवल छलघात में शुजाअ मारा जाकर प्रपंच ही से सुलतान मुहम्मद कैद हुआ तब कुछ गरज भी नहीं है उनके लिये जो कुछ नसीब में लिखा था सो होयगा। अब न उनके चरित्र से भावसिंहजी के चारित्र का लगाव और न यहां लिखने की आवश्यकता।

अध्याय ६

शाहजहां की कैद व मृत्यु।

हाडाराव भावसिंहजी के भाई भगवन्त सिंहजी का बादशाह औरंगजेब की कृपा से मऊ वारा आदि परगने पाकर जुदे राजा बनना पाठकों ने गत अध्यायों में पढलिया। अब बादशाह ने उनको राव की पदवी भी देदी। उस समय मऊ में राज्य के मुख्य अधिकारी ककोड के कल्याणसिंहजी थे। यह इन भगवन्तसिंहजी के मामा थे, मऊ के प्रबंध करने में इनकी किसी तरह की कुछ भी निन्दा न सुनी गई किन्तु भगवन्तसिंह जी ने भावसिंह जी से इनके मेल होने का संदेह कर इन्हें मारडाला।

बूंदीनरेश भावसिंहजी के कोई पुत्र हुआ ही न हो सो नहीं है। उनके राजकुमारों का जन्म भी हुआ किन्तु नाम के साथ ही उनका नाश होगया। पूज्य पिता ने पहले ही इनको संकेत कर दिया था। इस कारण इन्होंने अपने

छोटे भाई भीमसिंहजी के पुत्र राजकुमार कृष्णसिंहजी को गोद लिया। उनको इस तरह युवराज पद प्रदान करके इन्होंने २९हजार वार्षिक आय के साथ कापरेन जागीर में दिया। भगवन्तसिंहजी के स्वतंत्र राज्य पालने से इनके राज्य की सीमा सिकुड गई थी नहीं तो २९नहीं इनको ५०हजार का पट्टा दिया जाता। अवश्य इन्होंने इतने ही में संतोष कर लिया, किन्तु भगवन्तसिंहजी की माता नरूकी नित्य कुमीरजी को अपने पति की पोल छोडकर पुत्र के राज्यसुख का अनुभव करने की लालसा बढी। भगवन्तसिंहजी ने मऊ वारा के सिवाय—बादशाह से पहले जो कुछ पालिया था उसके अतिरिक्त गूगैर का परगना, खाताखेडी आदि ७ परगने और बहुत सा राज्य पालिया था। अब उनका राज्य उस समय के बूंदी राज्य से बहुत बढ निकला था। बस राज्य बढने के साथ ही उनका घमंड बढा। अब उन्होंने समझ लिया कि यदि नाते में मैं छोटा हूँ तो क्या हुआ किन्तु मेरा राज्य ज्येष्ठबंधु के राज्य से बडा है इसलिये उनका यहां तक दिल बढगया कि वह पिता समान बडे भाई से, समस्त हाडा जाति के शिरोमणि से यहां तक इच्छा करने लगे कि बूंदी हमारे अधीन है इस लिये भावसिंहजी को हमारे पास हाजिर होकर मुजरा करना चाहिये। अवश्य ही हाडाराव ने छोटे भाई की ढिठाई का एक तिनके के समान भी मोल न समझा और वह पहले की तरह अब भी उन्हें अपना छोटा भाई मानकर अपनी अप्रतिम उदारता का परिचय देतेरहे किन्तु पिता के परलोक प्रयाण करने के अनंतर भगवन्तसिंहजी के औरंगजेब के कृपाभाजन बनकर अलग राज्य पाने से इनके घर में जो कलह का बीज पडा था वह हराभरा होकर अब उसमें पुष्प और फल भी लग गये।

हजार समझाने पर भी भगवन्तसिंहजी की माता ने उस घर को जिसमें वह विवाह करलाई गई थीं, जो उनके पति का घर था और जो हाडाजाति के सब से बडे टीकायत का घर था छोडदिया। वह श्री. केशवरायजी के दर्शन और चर्मण्वती में स्नान करने के बहाने से बूंदी छोड गई और अपनी ससुराल को सदा के लिये छोडकर पुत्र के अस्थिर राज्य में बुढापे के समय राज्यवैभव का सुख लूटने के लिये चली गई। उनके साथ उनके

नौकर चाकर गये और कितने ही आदमी जीविका के, जागीर के और सम्मान के लालच से चलेगये। इसतरह शक्ति में नहीं, धर्म में नहीं, चरित्र में नहीं, किन्तु समुदाय के विचार से बूंदी और भी दुर्बल होगई। मऊ का स्वतंत्र राज्य स्थापित कर भगवन्तसिंहजी ने अपनी कन्या यशकुमरिजी का विवाह मेवाडनरेश राना राजसिंहजी के पुत्र सरदारसिंहजी से संवत् १७२० में करदिया।

इसी संवत् में अंगरेजों का बंबई में राज्य स्थापित हुआ। इंग्लैंड के राजा दूसरे चार्लेस के साथ पोर्टुगीजनरेश की कन्या का विवाह हुआ और इसीके दहेज में इनको यह नगर प्राप्त हुआ। इस विषय का इस चरित्र से कुछ संबंध न होने पर भी सामयिक इतिहासों का मिलान करने के अभिप्राय से इतना अंश यहां लिखदिया गया है।

अस्तु! "वंशभास्कर" में लिखा है कि संवत् १७२२ में नाम के बादशाह किन्तु जेल के कैदी शाहजहां की मृत्यु होगई। "औरंगजेबनामे" से लेकर इस घटना का उल्लेख पहले किसी अध्याय में कर दिया गया है। यहां यद्यपि इस बात को दुहरा कर पुनरुक्ति दोष का अधिकारी मुझे नहीं बनना है किन्तु सच पूंछो तो बादशाह औरंगजेब को अब ही दिल्ली का सर्वतंत्र स्वतंत्र सम्राट् बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उसने हजार अपने भाई बंधुओं को मार लिया था, अपने बेटे भतीजों को कैद कर लिया था और अपने तीर्थस्वरूप पिता को बंदी बनालिया था परंतु वह जानता था कि उसकी क्रूरता, उसके अत्याचार और उसका धर्मद्वेष देखकर यहां के राजा महाराजा, यहांके शूरसामन्त मनही मन उससे प्रसन्न नहीं हैं और जब एक दीन से भी दीन, सामान्य से भी समान्य और नीच से भी नीच बूढे आदमी का सम्मान करना हिन्दूजाति की नस२में भरा हुआ है तब उसे निश्चय था कि अवसर पाकर सब ही हिन्दू नरेश बूढे शाहजहां की सहायता के लिये यदि तैयार होजायँ तो उसे लेने के देने पडजायँ। इस कारण उसके अंतःकरण में पिता की ओर से खटका अवश्य था।

अब पिता की मृत्यु से औरंगजेब बिलकुल स्वतंत्र होगया। इससे आगे उसने हिन्दुओं के धर्म पर कुठार चलाने के जो २ काम किये उन सब का भावसिंहजी के चरित्र से संबंध न होने पर भी उनमें से जितने से अंश का संबंध इस चरित्र से है वह समय २ पर इस पोथी में लिखा जायगा। अच्छा! संवत् १७२३ में शाहजहां के मरने बाद निःशंक होकर औरंगजेब ने वैशाखमास में सब राजाओं के साथ हाडाराव भावसिंहजी को भी स्मरण किया। एक बीकानेर नरेश को छोडकर सब ही राजा वहां गये। वहांके राव करणसिंहजी बादशाह की आज्ञा के विरुद्ध काबुल जाने के बदले पिता की बीमारी सुनकर स्वदेश को लौट गये थे। बस इस डर से दिल्ली न गये और जोधपुरनरेश यशवन्तसिंहजी भी न गये। जब सब राजा दिल्ली में इकट्ठे होगये तो औरंगजेब ने निडर होकर, इन राजाओं की संयुक्त शक्ति की रंचक भी पर्वाह न कर हिन्दुओं के धर्म का, राजकुलका सत्यानाश करने की इच्छा से कहाः—

"अब से हिन्दूधर्म को छोडकर तुम सब लोग मुसलमान होजाओ। अब हजरत मुहम्मद अले सलाम की अताअत कबूल करके कुरान शरीफ पर ऐतकाद लाओ। तुम हमें बेटियां तो देते हो लेकिन हमसे उनकी निकाह होजाने बाद फिर उनका छुआ खाना न खाकर हमारी बेइज्जती करते हो। अब ऐसा नहीं करने पाओगे। अब से हमारे साथ बैठकर खाना खाओ और सब ही दूना २ मनसब लो।"

बादशाह औरंगजेब की ऐसी धर्मनाशक आज्ञा सुनकर सब घबरा उठे। इधर धर्म खोकर जीना मरने से भी बढकर और उधर धर्म की रक्षा में प्राण-हानि, राज्यहानि, सर्वस्वहानि। बस इसलिये सब लोगों ने समझलिया कि दोनों प्रकार से मौत आ पहुंची। तब भावसिंहजी बोलेः—

"नहीं २! ऐसा कभी न होगा। मरना एकबार है। बार२ थोडा ही है! मरेंगे। मारेंगे और मार कर मरेंगे परंतु जीतेजी अपना धर्म नहीं नष्ट होने देंगे। जबतक हमारे धड के ऊपर शिर और हाथ में तलवार है

तब तक मजाल किसकी है जो हमारे धर्म की ओर आंख उठाकर तो देखसके।"

हाडाराव के ऐसे धर्मरक्षक, निर्भय और साहस दिखाने वाले सच्चे वाक्यों से अवश्य ही सब क्षत्रिय नरेशों की नसें फडक उठीं उनके मुर्दा शरीरों में प्राण आगये और तब सब ही ने इकट्ठे होकर बादशाह से स्पष्ट कहदिया:-

"जिस आज्ञा का हम पालन करने में समर्थ हों वही देना चाहिये। हम आपके हुक्म से अपना शिर देने को तैयार हैं। आज नहीं-सदा से हम अपना शिर देकर मरने मारने को तैयार रहते चले आये हैं, किन्तु जब तक हमारे शरीर में प्राण रहेंगे अपना धर्म नष्ट न होने देंगे।"

इन्होंने बहुत नम्रता के साथ कहा था। बादशाह के मुख्य दरबारी जाफरखां और शाइस्ताखां ने भी औरंगजेब को बहुत कुछ समझाया बुझाया किन्तु उसने अपना हठ नहीं छोडा। उसने आमेर नरेश जयसिंहजी, उनके पुत्र रामसिंहजी और जैसलमेरके भाटी नरेश-इनको अलग लेकर समझाया:-

"तुम हमारा हुक्म मानलो। तुम को दूने पट्टे दिये जायंगे। अगर तुम को मंजूर भी न हो तो न सही लेकिन औरों को दिखाने के वास्ते मंजूर करलो। इससे अगर वे लोग हमारे साथ खाना खाने में राजी न होंगे तो जो लडकियां नहीं देते हैं वे अपनी बेटियां तो देने लगेंगे।"

अवश्य उसने इनसे ललचाकर, धमकाकर और दबाव डालकर सब तरह नीच ऊंच दिखला ली, परंतु इन्होंने बादशाह की बात बिलकुल स्वीकार न की। इन्होंने उत्तर दे दिया कि:-

"हमारी लडकियां तो आप ले ही लेते हो परंतु दीन बिगडवा कर हमें जाति बाहर न करवाओ। हमें लडकियां कोई न देगा। मुसलमान भी न देंगे और ऐसे हमारे बेटे कुंआरे रहकर हमारे कुलका नाश होजायगा। पहले ही उदयपुर, रामपुर और बूंदी वाले हमको लडकियां नहीं देते हैं। आप यदि क्षत्रियकुल का ही नाश करना चाहते हो तो यह बात भी असंभव है। भगवान परशुरामजी ने इक्कीसवार निःक्षत्रिय पृथ्वी करदी परंतु अब भी क्षत्रिय

विद्यमान हैं। इस पर भी आपको हठ है तो भावसिंहजी को मंजूर करवादो। वह यदि आपके साथ हमारे खाने बाद हमारी पंक्ति में बैठकर भोजन करना स्वीकार करलें तो हम भी मंजूर करलेंगे। बीकानेर नरेश करणसिंहजी की कन्या का विवाह भावसिंहजी के पुत्र कृष्णसिंहजी से और भावसिंहजी की बहन का विवाह जोधपुरनरेश यशवन्तसिंहजी से हुआ है। इस कारण ये दोनों राजा उनके कथन के अनुसार हैं। और हमने भी जो कुछ हुजूर से अर्ज किया है वह भावसिंहजी की सलाह से ही।"

इस बात को सुनकर बादशाह के क्रोध का पारावार न रहा। उसने तुरंत ही आज्ञा देदी कि "जहां २ हिन्दुओं के देवालय (मन्दिर) हैं उनको तोडकर उनके ही मसाले से मसजिदें बनवा दो।"

अत्याचारी औरंगजेब के हिन्दुओं के धर्म को नष्ट करने वाली आज्ञा का पालन कर भारतवर्ष भर में कितने हजार अथवा कितने लाख मन्दिर गिरा दिये गये सो लिखने का यहां स्थान नहीं और जब यह चरित्र औरंगजेब का नहीं है तब इस बात के लिखने का यहां प्रयोजन भी नहीं किन्तु रावराजा भावसिंहजी ने बादशाह की ऐसी भयानक आज्ञा प्रकाशित होते ही युवराज कृष्णसिंहजी के नाम जरूरी में इस तरह लिखकर भेजा:—

"केशवरामजी के मन्दिर तोडने के लिये यदि हमला किया जाय तो जब तक तुम्हारे–तुम्हारे शूर सामन्तों के शरीर में प्राण रहें कोई मुसलमान मंदिर को छूने न पायं। जैसे हमें मरजाना मंजूर है किन्तु मुसलमान न होंगे वैसे ही तुम भी जान दे देना परंतु मंदिर न टूटने देना। बूंदी की जो सेना है वह तो है ही किन्तु उसके अतिरिक्त मीनों को, मेरों को और भीलों को नौकर रखकर अच्छी सेना तैयार कर लेना और इस तरह खूब ही युद्ध करना। मरना तो आगे पीछे है ही किन्तु इष्टदेवों को कोई भ्रष्ट न करने पावे।"

पिता का पत्र पाकर युवराज कृष्णसिंहजी ने मरने मारने की तैयारी की, उन्होंने राजकीय सेना के सिवाय मीने आदि को तो नौकर रखा ही परंतु

बूंदी राज्य के समस्त चोथबटिया सरदार अर्थात् वे राजपूत जो केवल इसी समय के लिये मुआफी की जमीन पाते हैं बुलवालिये।

इनकी सेना इकट्ठी होते २ बादशाही लशकर लिये हुए सरदार अस्तखान (?) आ पहुंचा। उसके साथ फौज की संख्या ९ हजार से कम न थी और इधर इन्होंने १० हजार सैनिक इकट्ठे कर लिये थे। राजकुमार कृष्णसिंहजी ने अपनी सेना के दो विभाग किये। एक दलमें मीने, मेर, भील आदि लुटेरे और दूसरे में हाडा वीरोंसहित आप। उधर लुटेरों ने शाही सेना को धावा मारकर लूटमार कर और कुछ चोरी और कुछ सीनाजोरी से तंग कर २ के विचलित कर डाला और इधर पहली ही मुठभेड में अस्तखान भागछूटा। इसतरह इनकी सेना पहुंचने पूर्व दुष्ट यवनों ने अवश्य ही मंदिर का शिखर गिरा दिया था और उसकी मरम्मत भी महाराव राजा बुधसिंहजी के समय में हुई किन्तु राजकुमार कृष्णसिंहजी ने भगवान् केशवरायजी की, श्रीजी के मन्दिर की और उनकी नगरी की रक्षा करली। शाही सेना के हाथी, घोडे, शस्त्र, अस्त्र, धन दौलत— बहुत सा इनके हाथ आया और इन्होंने भी इनाम इकराम से सब को संतुष्ट किया।

जब यह खबर बादशाह के कानों में पहुंची तो कोप के मारे वह इसी तरह उछल पडा जिस तरह ततैया लगने से अथवा बिच्छू के डंक मारने से सिंह उछल पडता है। उसे गुस्सा तो ऐसा आया था कि वह हाडाराव को मक्खी की तरह मल डालता किन्तु यह मक्खी नहीं सिंह थे। बस इसलिये वजीरों ने उसे समझाया और तब वह उस समय मन मार कर रहगया।

ऊपर जो कुछ लिखा गया है वह "वंशभास्कर" के आधार पर। टाडसाहब ने इस विषय में कुछ नहीं लिखा है और न "औरंगजेबनामे" में हिन्दूनरेशों को दबाकर उन्हें अपने साथ खाना खाने पर बाध्य करने अथवा केशवरायजी के मंदिर का कलश तोडने आदि का उल्लेख है। इन दोनों इतिहासों में से एक ने जब हाडाओं का वर्णन बहुत ही संक्षेप से

किया है तब दूसरे का उद्देश्य ही हाडाओं का चरित्र लिखने का नथा । इस कारण यदि उनमें इन बातों का कुछ उल्लेख नहीं है तो कुछ आश्चर्य नहीं किन्तु मुंशी देवीप्रसादजी के "राजपूताने में प्राचीन शोध" में लिखा है कि:—

"औरंगजेब ने इसी द्वेष से केशवरायजी का मंदिर गिराने को फौज भेजी जिसके लिये एक हजार हाडे लडने मरने को तैयार हुए । निदान बादशाही अफसर बादशाह की बात रखने के लिये कलश और थोडा सा शिखर गिरा कर चले गये । जिस की मरम्मत महाराव राजा बुधसिंहजी के समय में हुई । उनकी रानी कछवाहीजी ने सोने के कलश चढाये । इस मन्दिर में जो लेख है उससे जाना जाता है कि संवत् १७७६ की फाल्गुन शुक्ला ७ शुक्रवार को महारावराजा बुधसिंहजी की बडी रानी कछवाही जी ने शिखर और गुमटियों के ऊपर कलश चढाये थे ।"

और २ इतिहासों से जब इस बात का पक्का पता लगता है कि औरंगजेब कट्टर हिन्दूद्वेषी था, हिन्दुओं को जबर्दस्ती मुसलमान बनाना उसका एक प्रधान उद्देश्य था तब मैं इन बातों को सत्य ही समझता हूं इसलिये अवश्य हाडाराव भावसिंहजी ने उस समय अपने अदम्य साहस से हिन्दूनरेशों के धर्मकी, नरेशों के साथ ही समस्त हिन्दूजाति की धर्मरक्षा कर संसार का एक बहुत भारी उपकार किया । इतना उपकार किया जिसकी तुलना नहीं हो सकती है । यदि उनके साहस न करने से प्रायः सब ही राजा औरंगजेब के आतंक में आकर मुसलमान होजाते तो साथ ही उनके शूर सामन्त धर्मभ्रष्ट होते, उनकी देखा देखी उनकी प्रजा होती और यों सारा देश ही मुसलमान होकर हिन्दुओं का सर्वनाश होजाता । बस ऐसे ही ऐसे अनेक धर्मकार्य करने से—प्राणों की बाजी लगाकर स्वधर्म की रक्षा करने से हाडाराव भावसिंह जी प्रथम अध्याय के उल्लेख के अनुसार पूजे जाते हैं । अब तक उनके नामका गंडा बांधदेने से तिजारी, चौथैया, इकतरा—टूट जाते हैं और केवल धर्मरक्षा के लिये जान झोंकदेने ही पर आजतक उनका नाम बूंदी के प्रत्येक दूकानदार

दूकाने खोलते समय लेतेहैं। भारतवर्ष में—बूंदीराज्य में अनेक अच्छे २ राजा होगये हैं किन्तु ऐसा सौभाग्य भावसिंहजी के समान किसी को प्राप्त नहीं हुआ। धन्य हाडाराव!

अध्याय ७.

भाई का छल घात।

जिस समय "वंशभास्कर" के मत से बादशाह औरंगजेब हिन्दुओं को मुसलमान बनाकर एक दीन करदेने के उद्योग में व्यग्र हो रहा था उसके पास एकाएक खबर पहुंची कि **दक्षिण प्रान्त** का बारीगढ और चौकीगढ गौडों ने छीनलिया और इधर उधर का और भी बादशाही राज्य छीनने में वे लोग लगे हुए हैं। इस तरह गोंडवाने में जगह २ झगडे मच रहे हैं। सुनते ही बादशाह ने भावसिंहजी के भाई **भगवन्तसिंहजी** को उस ओर का उपद्रव दमन करने के लिये **उज्जैन के सूबेदार** वजीरखां के साथ नियत किया। औरंगजेब की आज्ञा माथे चढाकर वह अपनी आठ हजार सेना लिये हुए उज्जैन जाकर वजीरखां से मिले। वहां से इनके संयुक्तदल ने चढाई अवश्य की किन्तु भगवन्तसिंहजी का दर्प इनदिनों बहुत बढा चढा था। उन्होंने वजीरखां से कहदिया कि:—

"गौडों को जीतकर आधी २ विजय बांटने के लिये हम दोनों को भेजा गया है इसलिये आप **अलग होकर** लडो और हम जुदे होकर। ताकि हिस्से बांटने में आपस का झगडा खडा न हो।"

सुनकर वजीरखां ने "अच्छा!" कहदिया सही किन्तु इनके ऐसे घमंड से-ऐसे बर्ताव से उसका मन इनसे फिर गया। वह इनके साथ होकर लडा किन्तु **लडा खट्टे मन से**। वह चाहे उदास होकर लडा परंतु इनका उत्साह—इनका साहस—इनका पराक्रम उस समय: बहुत बढा हुआ था। बस इसलिये यह तोपों की मार को **फूलों की तरह** सहकर निसेनी लगा किले में घुसगये और शत्रुओं को मारकर—बांधकर इन्होंने बादशाह की दुहाई भी फेर दी। इसपर वजीरखां ने भी इनकी प्रशंसा की, परंतु की

ऊपरी मन से । बादशाह ने इस विजय की बधाई में इनको राव की पदवी देकर, पांच हजारी मनसब देकर और हाथी घोडे, वस्त्र शस्त्र देकर इनका सम्मान भी बहुत ही बढाया किन्तु इनका इतना सम्मान होना और उसकी कुछ भी पूछ तक न करना, वजीरखां को सुहाया नहीं । भगवन्तसिंहजी के इस संग्राम में एक तीर लगा था और उसका इलाज भी किया जा रहा था किन्तु वजीरखां ने वैद्य को लोभ देकर उस समय इन्हें जहर दिलवादिया । इनका उसीसे स्वर्गवास होगया । और इस कारण बादशाह ने इनके लिये जो इनाम इकराम दिया था उसकी खबर भी इनके पास जीते जी न पहुंचने पाई । इसतरह इनके पराक्रम का थोडे ही समय में अंत होगया । संवत् १७२३ की पौष कृष्णा ४ को देहान्त होगया । यद्यपि पिता सदृश भाई भावसिंहजी से अकारण यह शत्रुता रखने लगे थे किन्तु इसमें संदेह नहीं कि यह एक बहादुर हाडा थे । इनकी मृत्यु से बादशाह ने एक पराक्रमी शुभचिन्तक को और हाडाराव ने अपने सगे भाई को खोदिया । खैर ! परमेश्वर की इच्छा ही बलवती है । जो कुछ होना था सो होगया किन्तु इनके लिये आठ रानियां और खवास पातरे मिलाकर कुल ४० स्त्रियां सती हुईं ।

इस अवसर में दिल्ली से हाडाराव भावसिंहजी ने राजकुमार कृष्णसिंहजी को फिर एक पत्र लिखा । उसमें लिखा गया कि:—

"हे वत्स, तुमने अस्तखान को भगाकर भगवान केशवरायजी के मन्दिर की रक्षा करने में बहुत ही स्तुति के योग्य कार्य किया किन्तु देशकाल का विचार करके जो तुम ने शत्रु के शिविरों की सामग्री लूटी है उसे हमारे पास भेज दो । और जब तक हम वहां स्वयं न आजायं मंदिर पर कलश भी न चढाना । वहां आकर हम शास्त्रविधि से कलश चढाने का उत्सव करेंगे । बादशाह दीन एक करने का जो हठ न छोडेगा तो हम यहां मर मिटेंगे और तुम भी जब तक जियो एक अंगुल धरती पर भी शाही अधिकार न होने देना ।"

इस तरह लिखकर इन्होंने अवश्य ही युवराज को मंदिर पर कलश चढाने से रोका और तब से इन्हें उसपर कलश चढाने का शायद अवसर भी न मिला किन्तु यह हिन्दूधर्म की रक्षा में अपना अटल साहस दिखाकर अपने सुकार्यों पर **सुयश का कलश** चढागये और वह कलश भारत के इतिहास में अटल है, अमर है और सदा ही स्थायी रहैगा।

अस्तु! बादशाह ने अब भी हिन्दू नरेशों को मुसलमान बनाने का आग्रह-दुराग्रह नहीं छोडा था। वह जब २ इस बात के लिये हठ करता था तब ही तब राजा लोग भावसिंहजी को आगे करदेते थे। ऐसे ही समय में इनके पास **बीकानेर नरेश** करणसिंहजी ने पत्र भेज कर उसमें लिखा कि:—

"यदि आप मेरी सहायता पर रहने का वचन देदैं तो मैं भी बादशाह की सेवा में उपस्थित होना चाहता हूँ।"

"यदि बादशाह के हमें भ्रष्ट करदेने के भय से हम मृत्यु के ग्रास से बच-जायंगे तो मैं आपको अवश्य बुलाढूंगा। इस कारण जब तक मैं आपको न लिखूं आप आने का विचार रोक रखिये।"

हाडाराव ने करणसिंहजी को ऐसा उत्तर लिखकर रोकदिया और वह आये भी नहीं किन्तु अब औरंगजेब ने इनको **दबाकर** पाटन में शाही शिवि-रों की लूट का माल और साथ ही राजकुमार **कृष्णसिंहजी को मांगा।** इन्होंने जब अपने मित्र तीन नव्वाबों को बीच में डालकर दो लाख रुपये युवराज को देने के बदले में देने का संदेशा भेजा तब बादशाह ने कहलाया कि—"अच्छा उसको न सही। जोधपुर के यशवन्तसिंह को और बीकानेर के करणसिंह को ही बुलवा दो।" इस पर इन्होंने उत्तर दिया कि:—"हां! हम बुलवा सकते हैं किन्तु बादशाह ने हमारे पिता के ऊपर का वैर हम से निका-लने के लिये हमारा मनसब सात हजारी की जगह साढे चार हजारी कर-दिया, हमारे मऊ और वारां आदि परगने खालसे करके हमारे भाई को देने में हम से उसका दर्जा बढा दिया। अब वह एक हमारे धर्म और दूसरे हमारे कुमर को छोडकर चाहे सब कुछ लेलैं किन्तु हम को भरोसा नहीं है कि अब

दोनों के साथ किसी तरह का कपट करके उनको मरवा तो नहीं दिया जायगा। यदि हमारे द्वारा उनपर विश्वासघात किया गया तो: लोग हमारी भी निन्दा करके कहने लगें कि भावसिंह ने अपने नातेदारों को छल से मरवा दिया अथवा कैद करवा दिया।"

जिस समय दिल्ली में रहकर हाडाराव इस तरह की झंझटों में फँस रहे थे बूंदी में एक विशेष घटना होगई। पुत्रहीन भावसिंहजी ने पिता की आज्ञा से, भतीजे का स्वत्त्व समझ कर अथवा कुलाचार के विचार से राजकुमार कृष्ण-सिंहजी को अपना युवराज—अपना उत्तराधिकारी बना लिया था और इस तरह उनको युवराज पद के सब अधिकार भी प्रदान करदिये थे। उन्ही को भगवन्तसिंहजी की माता नरूकीजी ने बहंकाकर मऊ बुलवा लिया। जब यह वहां चुपचाप पहुंचे तब अपने स्वर्गवासी पुत्र का राज्य कृष्णसिंहजी को देकर उनके ललाट पर तिलक कर दिया, संकट के समय, बादशाह के कोप के समय अपनी विमाता का ऐसा बर्ताव और हाडाओं की मुख्य गादी का उत्तराधिकारी बनकर एक क्षणिक राज्य का क्षणिक स्वामी बनने के लोभ को देखकर भावसिंहजी का मन इन दोनों से कैसा दु:खित हुआ सो इतिहास में लिखा नहीं है किन्तु उससे इतना अवश्य मालूम होता है कि पुत्र की कुपूताई पर इन्हें क्रोध आगया। इन्होंने खबर पाते ही बूंदी को लिख भेजा कि:—

"जब वह कुपूत हम को छोडकर निकलगया तो अब उसे बूंदी में न घुसने देना।"

इसके अनंतर कृष्णसिंहजी की क्या दशा हुई और हाडाराव भावसिंह जी का उत्तराधिकारी कौन हुआ सो कुछ ही आगे बढने से पाठकों को विदित होजायगा किन्तु अब बूंदीनरेश ने पाटन की लूटका दूना मूल्य देकर वजीरों के साथ औरंगजेब से कहलाया कि:—"लडका अब हमारे काबू से निकलगया। यदि बादशाह उसे बुलाना ही चाहते हैं तो उसके पास फर्मान भेजकर बुलवा सकते हैं।" बादशाह इनपर: कोप करके पाटन का परगना

भी छीनना चाहता था किन्तु इन्होंने उसके बदले दो लाख रुपये जब दे दिये तब नव्वाबों ने औरंगजेब को समझाया कि:—

"भावसिंहजी ने आपकी आज्ञा का जब पालन करलिया तब अन-होनी न करना चाहिये। अब कृष्णसिंह भी इनको छोडकर चला ही गया है। यशवन्तसिंहजी को बुलाने के लिये भी इन पर दबाव डालना अच्छा नहीं है। आप चाहे तो इसके लिये भी पांच लाख जुर्माना ले सकते हैं।"

अवश्य बादशाह इसपर भी राजी न हुआ किन्तु इस अवसर में भगवन्त-सिंहजी की माता और राजकुमार कृष्णसिंहजी के आपस में मन मुटाव होगया। राज्य के अधिकारियों में से कितने ही लोगों ने दादी का साथ दिया और कई एक पौत्र की पार्टी में मिलगये। दादी तीर्थयात्रा का बहाना कर दिल्ली पधार गईं। उन्होंने समझा कि:—

"पाटन की घटना से बादशाह उधर कृष्णसिंहजी पर क्रुद्ध है और इधर मेरे पुत्र भगवन्तसिंहजी की सेवाओं से मुझ पर प्रसन्न। इस कारण मेरी सुन-वाई अवश्य होगी।"

इन दोनों दादी नाती में से अपराध किसका था सो इतिहास ने नहीं बतलाया और न वहां इस झगडे का कुछ कारण बतलाया गया है किन्तु इसमें संदेह नहीं कि इसके कारण नाती की बदनामी बहुत हुई। वहां पहुं-चने पर भावसिंहजी ने अपनी विमाता की सेवा में उपस्थित होकर बहुत नम्रता के साथ उनसे निवेदन किया कि:—

"आप के लिये जैसा भगवन्तसिंह था वैसा ही मैं विद्यमान हूँ। कृष्ण-सिंह ने कुपूती करके उसका दंड भी पा लिया क्योंकि वह हमारी संता-नों की पंक्ति से निकल गया। अब आप बादशाह से नालिशी होने के बदले मुझे अपना दास और बूंदी को अपना घर समझकर वहां पधारिये। बादशाह को ऐसी अर्जी देना उचित नहीं है इसलिये बूंदी पधार कर वहांका राज्यशासन कीजिये।"

यद्यपि इन्होंने बहुत ही नम्रता के साथ हाथ जोडकर माता से विज्ञप्ति की थी किन्तु उन्होंने इनकी प्रार्थना पर कान न दिया और बादशाह की

सेवा में लोगों को रुपयों का लोभ देकर अर्जी भेज ही तो दी। अर्जी में लिखाः—

"हजरत, मैं भगवन्तसिंह की माता हूँ। गोद का लिया हुआ कृष्णसिंह मेरा आदर नहीं करताहै। हुजूर आज्ञा देकर यदि उसे धमका दें और ऐसे मुझे वहां भेजदें तो मैं जा सकती हूँ।"

इनका प्रार्थनापत्र सुनकर बादशाह इनके ऊपर दया करने के बदले क्रुद्ध हुआ। अर्जी के उत्तर में बादशाह ने इन्हें फटकार कर कहला भेजा किः—

"बस अपने घर चली जाओ। वह हमारा अपराधी है। यह बात जानते हुए तुमने लोभ में पडकर ऐसा कुपूत गोद क्यों लिया?"

खैर! वह तो निराश होकर वहांसे चली ही गईं किन्तु पाठक समझ सकते हैं कि औरंगजेब किस ढंग का आदमी था। केवल स्वधर्मरक्षा के लिये केशवरायजी के मंदिर को बचाते हुए शाही सेना का थोडा बहुत माल लुटवालेने के अपराध में, जिसका दूना मूल्य भावसिंहजी भरचुके थे, बादशाह भगवन्तसिंहजी की असाधारण सेवाओं को भूलगया और इस बात को भी भूलगया कि उन्होंने केवल औरंगजेब को राजी करने के लिये भावसिंहजी को सताया और ऐसे अपनी कुलपरंपरा पर पानी फेर कर कलंक का टीका लगवाया।

अस्तु जो होना था सो होगया परंतु कृष्णसिंहजी का इस प्रकार का कुलद्रोह देखकर उनकी नौ कुमरानियों और चौदह खवासों में से पांच कुमरानियां जिस समय पति बूंदी छोडकर—प्रधान गद्दी को छोडकर मऊ वारां की क्षणिक गद्दी का राज्य पाने के लालच से गया उसके साथ न गईं। इसतरह न जानेवालियों में एक बीकानेरनरेश करणसिंहजी की बाई राजकुमारीजी थीं जिनके अनिरुद्धसिंहजी और कीर्तिसिंहजी ये दो पुत्र और एक कन्या थीं। बस ये ही कृष्णसिंहजी की औरस संतान समझो। जो कुमरानियां पति के साथ न गईं उन्हें भावसिंहजी ने बडे सत्कार से रक्खा और यही अनिरुद्धसिंह जी जिनका चरित्र आगे चलकर एक स्वतंत्र खंड में लिखा जायगा, हाडाराव भावसिंहजी के उत्तराधिकारी हुए।

अध्याय ८.

भगवान के विमान ।

जब स्वर्गवासी भगवन्तसिंहजी की माता की पुकार औरंगजेब ने न सुनी और इसलिये वह निराश होकर दिल्ली से लौट आईं तब बादशाह ने कृष्णसिंहजी की जागीर के मऊ वारां आदि समस्त परगने छीनकर उनकी जीविका के लिये केवल गूगैर, चाचरनी, खाताखेडी–बस ये तीन परगने रहने दिये। अब उनका केवल दो हजारी मनसब रहा। तीन हजारी मनसब वापिस ले लिया गया।

अब बादशाह ने फिर हाडाराव भावसिंहजी से कहा:–"मऊ और वारां परगने तुम्हारे तुम ले लो। और अगर हमारा दीन कुबूल करलो तो हम तुम्हें अपना वजीर बनादेंगे। सुरजन ने जितना देश पाया था सो सब ले लो, सोने से तुम्हारा घर भर जायगा, और जैसे शत्रशल्य ने जंग जीत २ कर नाम हासिल किया था वैसे ही हमारा हुक्म मान कर नाम कमाओ। अगर मुसलमान होना मंजूर न हो तो करणसिंह और यशवन्तसिंह को बुलवाकर हमारे पास हाजिर कर दो।"

सुनकर इन्होंने वही उत्तर दिया जो पहले कई बार देचुके थे। यह बोले:–"मैं तो पहले ही निवेदन करचुका हूं कि आपकी ऐसी आज्ञाओं का पालन मुझ से नहीं हो सकेगा फिर आप बारंबार: क्यों फर्माते हैं? जो काम मुझ से नहीं बनसकता उसके लिये बार २ हुक्म देकर आप मेरा पद और भी घटाना चाहते हैं। मेरी आय और व्यय आपसे छिपी नहीं। आपने मनसब घटा ही दिया। तब भी मैं आपकी यथाशक्ति सेवा कर रहा हूं। आपके लिये खजुवा विजय करदिया तब भी आपने कुछ रीझ न दी वरन परगने उतार लिये। अब आप मुझे पेच में लेकर मेरे बहनोई और समधी को बुलवादेने का दबाव डालते हैं किन्तु मैं इस तरह उन्हें फँसाकर अपना हाडाकुल का मुंह कदापि काला न करवाऊंगा।"

इस तरह कहते सुनते जब दो वर्ष निकल गये और इस अवसर में निरंतर दिल्ली में अडे रहने पर भी जब भावसिंहजी ने दुर्दान्त औरंगजेब की दारुण आज्ञाओं का तिनके के समान निरादर किया तब यदि उस जैसा पराक्रमी सम्राट् इनसे क्रुद्ध होजाय तो इसमें आश्चर्य ही क्या ! उसने अवश्य इनपर कोप किया और केवल इनपर ही क्यों समस्त हिन्दू-जाति पर क्रुद्ध होकर उसने हुक्म देदिया कि:–

"हम हिन्दुओं का कोई भी **धर्म कार्य** अब से न होने देंगे ।"

बादशाह औरंगजेब ने यह आज्ञा उस समय दी थी जब **भाद्रशुक्ला** ११ को भगवान वासुदेव के **विमान** निकल कर जलाशय पर जाने का उत्सव अति निकट आ पहुंचा था । यह बात संवत् १७२४ की है । जलयात्रा एकादशी के एक ही दिन पूर्व जब **हाडाराव को** विदित हुआ कि बादशाह ने हमारा प्यारा धर्म नष्ट भ्रष्ट करने के लिये ऐसी **भयानक आज्ञा** दे डाली है तब बूंदी नरेश ने सब राजाओं से निडर होकर, तलवार पर हाथ धरते हुए, भृकुटी चढाकर, मोंछों पर बल देते २, **कडक कर कहा**;–

"अब हमारे शिर पर मृत्यु अवश्य नाचने लगी । जब आगे पीछे मरना अवश्य है तब धर्म के लिये मरैंगे । हां आप सब से निवेदन यही है कि कट मरने में **मुझे आगे** कर दीजिये । यदि आपको बादशाह से डर लगता हो तो आप लोग स्वयं विमान के साथ न चलिये परंतु अपने २ शूर सामन्तों को साथ दे दीजिये । मेरा मतलब यही है कि कल्ह–**एकादशी का उत्सव** निर्विघ्न समाप्त होजाय । हम मरैंगे और मारैंगे किन्तु मरते दम तक **विमानों को आंच** न आने देंगे ।"

हठीले हाडा की ऐसी दृढ प्रतिज्ञा, ऐसा अदम्य साहस और ऐसा पराक्रम देखकर वास्तव में सब ही नरेश दंग होगये, कितने ही सिटपिटाये भी । सब ही ने इनसे कहा:–

"आपकी वीरता जगत् में किसी से छिपी नहीं है । हम आपके साथ अवश्य अपने चुने हुए सामन्तों को भेजैंगे ।"

दशमी की रातभर सर्वत्र इसीबात की चर्चा रही किन्तु सूर्यमल्लजी लिखते हैं कि-"कोई भी राजा इससे प्रसन्न न हुआ। सब ही ने समझ लिया कि अब हमारे धर्म का नाश है।" अस्तु हाडाराव ने भाद्रशुक्ला ११ के दिन प्रातःकाल उठते ही नित्य और नैमित्तिक कर्मों से निवृत्त होकर केसरिया जामे पहन लिये। इस तरह मरने मारने के लिये, स्वधर्म्मरक्षा के लिये और मरकर सीधे स्वर्ग को पधारने के लिये जब सज धज कर सब तरह की तैयारी करली तब इनके मित्र नव्वाबों और वजीर ने इनसे कहलाया कि:-

"क्यों दीपक में गिरकर पतंग की तरह जलमरना चाहते हो? इसबार अपनी मूर्तियों को अगर अपने २ खेमों में ही झुलालोगे तो क्या हर्ज है? बादशाह ने जो हुक्म दे दिया सो देदिया वह अब टलने वाला नहीं है।"

बूँदीनरेश ने इसके उत्तर में गुप्तरूप पर कहलवा दिया कि-"यदि हमारे मरने ही में बादशाह को प्रसन्नता है तो हम भी मरने को तैयार हैं। जिस सींप से धर्म का मोती मिलता है उसे हम नहीं छोड सकते।" शाहस्ताखां, जाफरखां, कासिमखां और वजीर साहब से इस तरह कहलवाते २ जब ठीक दुपहर का समय होगया तो सेना का समूह भी आ इकट्ठा हुआ। विमान उठाने की तैयारी होते ही इन्होंने ललकार कर कहा:-

"जो शूर सामन्त मरने के लिये-धर्म रक्षा के लिये प्राण देने को यहां आये हैं वे प्रसन्नतापूर्वक मेरे पीछे हो जायं, किंतु जिन्हें स्वधर्म से, कीर्ति से स्वर्ग से भी प्राण अधिक प्यारा है वे अभी यहां से चले जायँ। उन्हें कोई रोकैगा नहीं।"

"आज का दिन हमारे लिये बडा ही दुर्लभ है। आज धर्म की रक्षा के लिये मारैंगे और मरैंगे।"

बूँदी के सब ही सुभटों ने जब इस तरह स्वामी की आज्ञा का अनुमोदन किया तब हाडाराव ने आधी सेना विमानों के इर्द गिर्द फेरदी और आधी लेकर आप साथ रहे। केवल बूंदी की सेना के सिवाय और नरेशों का [illegible]

देखकर बादशाह ने हुक्म देदिया कि—" इसे जहां की तहां काट डालो । ये लोग अपना काम करके जब वापिस आवें तब तोपें मार २ कर इन्हें उडादो । "

नरेश ने निर्विघ्न भगवान के विमानों को कालिंदी कूल पर पहुंचाकर वहां परमेश्वर की लीला का--शास्त्रविधि से, परम धर्मोत्साह के साथ, आनंद पूर्वक संपादन किया, किन्तु जब वहांसे श्रीठाकुरजी की सवारी लौटी तो प्रलयकारिणी तोपों के गोलों का इनपर मेह बरसने लगा । इधर रण के मतवाले हाडा वीर मरने मारने को तैयार थे ही अब भावसिंहजी ने सब रजवाडों के सुभटों को अपने २ विमानों की रक्षा करने की आज्ञा देकर अपना पैर अंगद की तरह सेना की हरावल में जमा दिया । इसी अवसर में दलेलखां ने नव्वाबों और वजीरों से खुशामद करके हाथ जोड कर समझाया कि:—

" यह करते क्या हो ? क्या ऐसा करने से हिन्दू बीत जायंगे ? वे मर जायंगे किन्तु टेक न छोडेंगे । पहले राना प्रतापसिंह ने जैसे अपनी जीते जी टेक न छोडी तैसे ही इन्हें समझ रक्खो । अधिक खैंचने से झुकने के बदले टूट जाया करता है । बादशाह अकबर ने जैसे जजिया—मन्दिरों पर से कर उठा दिया था वैसी ही बात अब करना चाहिये । "

यह वात बादशाह को भी पसंद आई और तब उसने माता की आज्ञा के बहाने से सेना वापिस बुलवा कर जंग बंद करवादिया । बंद अवश्य होगया और प्रकाशित भी यही किया गया कि बादशाह की माता ने हिन्दुओं पर दया करके उनकी जान बचा दी, किन्तु सुनकर भावसिंहजी ने यही कहा कि:—

" यह बहाना बाजी है । यदि माता की आज्ञा ही मानी जाती हो तो बादशाह शाहजहां को कैद करते समय माता का हुक्म कहां गया था। "

अस्तु ! सब रजवाडों के विमान अपने २ शिविरों में आनंद मंगल के साथ पहुंच गये । और इस तरह ऐन समय पर मार काट की अनी टलगई । जब ऐसे बलपूर्वक मुसलमान बनाने का काम सफल होने में भारी २ विघ्न पडते दिखलाई दिये तब लोभ देकर हजारों कुलीन हिन्दू से मुसलमान बना

लिये गये। और केवल इतनाही नहीं किन्तु राजाओं पर कोप करके औरंगजेब ने बडी विकराल मूर्ति धारण कर ली। उसने जजिया बन्द करने के बदले और भी बढा दिया। कहते हैं कि अन्न और जल तक पर कर डाल दिया गया। करों के बोझ से लदकर तीर्थ यात्रा करना—तीर्थोंमें अन्न जल मिलना भी कठिन होगया। सूर्यमल्ल जी ने बैतालीय छंद में इसका जो दिग्दर्शन किया है वह ज्यों का त्यों यहां उद्धृत करने योग्य है। वह लिखते हैं कि:—

"पै अब दु:सह दंड परयो सु घटान लग्यो सब भूपन साह को,
मुद्रा सवाय तें वीस प्रमान समान धरयो जिजिया सबके शिर,
इक्कसमा प्रतिदंड जो अज्ज न जाय चँडाल के द्वार भरै चिर,
ऐसे अकब्बर छोरे इकीस यहां इनमें बहु ओर मिले इर,
कष्ट भो अज्ज कहाइवो व्हां तिथि धर्म की भाऊ करी सिर पैं थिर,
ऐसी सुनै जल अन्न हु पै कर अंचक लोभ बढायो भयंकर,
नीठि बचाये जो देव निकेत परयो दम दु:सह त्यों तिन ऊपर,
को चउधाम रु तित्थ करै बिनु भूपन सूपन पाय सकैं वर,
ऐसो परयो अवरंग अकाल जो सतहि ईतिन रीतिन सोदर,
जोर तैं मिच्छ बनैबो रुक्यो जिम ए ए अनीति मची चहुं ओरतैं,
ओर तैं छुट्टत टेक अहेय सबै रहि हड्डन के सिर मौर तैं,
मौर तैं श्री जमुना तैं बिमान दब्यों न जो सम्मह गोलन दोर तैं,
द्वार तैं डेरन लेगो स्वदेव जथा लघु दिग्ध विमानन जोर तैं,
भाऊ नरेश विचारि भन्यो दृढचित्त अहो सहि हैं सब दंड तो,
तोहू तो मिच्छ करैं बल तैं अटकी वह साह की टेक अखंड तो,
मंडतो जो यह टेक अमोघ तो मैं परिबो तत्काल हि मंड तो,
दंड तो जो न रुकैं तनु दंड तो चंड तो है पै तथा न प्रचंड तो,
मानि बिमान निकासन मंतु लये दम दम्भ छलाख इलेस तैं.
" × × × × × × × × "

यद्यपि टाड साहब के इतिहास से इस जल यात्रा एकादशी की घटना का उल्लेख नहीं है, और न मुंशी देवी प्रसादजी के औरंगजेबनामे में, किन्तु

जब इसे लग भग ढाई सो वर्ष हो जाने पर भी परंपरा से पीढी दर पीढी राजपूतानावासियों की जिह्वापर—उनके हृदय पर निवास करती चली आई है, जब बूँदी के विश्वस्त इतिहासों में इसका उल्लेख होने के अतिरिक्त प्रत्येक मनुष्य के हृदय पटल पर अंकित है और जब हिन्दुओं को बलपूर्वक मुसलमान बनाने और मंदिर तोड कर मसजिदें बनाने तथा जजिया बढादेने की अनेक कथायें अनेक इतिहासों में वर्णित हैं तब कौन कहने का साहस कर सकता है कि ये बातें केवल कवि की कपोल कल्पना हैं।

इससे सिद्ध होता है कि बादशाह औरंगजेब के भाँति २ के अत्याचार सहने पर भी जिस तरह स्वयं मुसलमान न होकर तथा और २ नरेशों को बचाकर भावसिंहजी नाम कर गये उसी तरह उन्होंने भाद्रपद शुक्ला ११ के दिन प्राण की बाजी लगाकर भगवान इष्टदेव के विमानों की रक्षा करने में मानो हिन्दू धर्म के डूबते हुए जहाज को बचाकर अपना नाम अमर कर दिया। उन्होंने स्वधर्म रक्षा में अपना मनसब खोया, अपने राज्य-वैभव को, अपने शरीर को तिनके के समान समझ लिया, छः लाख रुपये दंड तक दे डाला किन्तु धर्म रक्षा का जो बीडा उठाया था उसे जन्म भर निर्वाह किया। इस तरह भाद्रशुक्ला ११ का दिन यद्यपि अनादि काल से पूजनीय है किन्तु इस घटना ने उसको और भी अधिक पूजनीय बना डाला। उस-दिन भगवान श्रीकृष्णचंद्र की पूजा अर्चा करने के अनंतर यदि समस्त हिन्दू—कम से कम समस्त हाडा रावभाव का नाम स्मरण न करें तो उनकी कृतघ्नता है। इसीलिये ढाई सो वर्ष बीत जाने पर भी भावसिंह जी का प्रातःस्मरणीय नाम दूकानें खोलते समय प्रत्येक दूकानदार के मुख पर आ विराजता है। इसीलिये उनके नाम के गंडे डोरे से तेजरे टूट जाते हैं और इसी लिये उनकी दुहाई बूँदी के राजा और रंक समान रूप पर शिर पर धारण करते हैं। इसी लिये बूंदी का न्यायासन भावसिंहजी की गद्दी माना जाता है। समझे पाठक! स्वधर्म रक्षा का माहात्म्य!!

अध्याय ९.

मित्र की रक्षा।

अवश्य ही बादशाह औरंगजेब का भावसिंहजी पर जो कोप था उसकी मात्रा घटी नहीं किन्तु गत अध्याय में लिखित ६ लाख रुपये दे देने से हाडा राव का उसके पास जाना आना बंद नहीं हुआ। स्वामी सेवक के समक्ष वार्तालाप से इनको जब बादशाह का थोडा बहुत भरोसा होगया तब इन्होंने बीकानेर नरेश करणसिंहजी को पत्र लिखकर उन्हें दिल्ली बुलवाया। बीकानेर नरेश को दृढ निश्चय था कि हाडाराव के वाक्य लोहे की लीक है। वह अच्छी तरह जानते और मानते थे कि भावसिंह जी जो कह देंगे सो करके भी दिखा देंगे। उन्हें निश्चय था कि "भाऊ का भरोसा ज्यों भरोसा दीनानाथ का"। बस इसलिये संग्राम से कभी विमुख न होने वाले, दृढप्रतिज्ञ और स्वधर्म में पर्वत के समान अचल भावसिंहजी के लेख का भरोसा करके करणसिंहजी परमेश्वर को मनाते हुए दिल्ली पहुंचे। बीकानेर वालों की हवेली दिल्ली नगरी के बाहर थी इसलिये उन्हें शहर में आने की तो आवश्यकता थी ही नहीं। वह आकर जब अपनी हवेली पर ठहर गये तब अपना संतोष करने के लिये हाडाराव से स्वयं मिलने के लिये गये। मालूम होता है कि उस समय राजा लोग बादशाह की आज्ञा बिना परस्पर मिल नहीं सकते थे। अस्तु। ये इस बात की रंचक पर्वाह न कर आपस में मिले मिलाये और तब भावसिंह जी ने इनको भरोसा भी दिला दिया कि—"आपस की अधिक मिला भेटी में यों तो बादशाह पर असर अच्छा नहीं पडता है। काम बनने के बदले अधिक २ उलझैगा किन्तु आप पर विपत्ति पडने पर मैं बादशाह की प्रबल से भी प्रबल सेना की रंचक पर्वाह न कर काई की तरह उसे चीरता हुआ आपके पास पहुंच जाऊंगा। इसमें तिल मात्र भी संदेह न समझिये।"

करणसिंह जी बोले:—"जब मुझ पर विपत्ति पडैगी तब मैं स्वयं आप से आ मिलूंगा। किन्तु अभी आपके शिबिरों में आने से भी मंगल नहीं है।

छट्टी का दूध ही न निकाल डाला—यदि उनके दांत ही खट्टे न कर डाले तो वीर होकर क्या किया ? बस आज ऐसा संग्राम करें जिससे बादशाह को भी लेने के देने पड जाय "

इस तरह की अटल प्रतिज्ञा, से जब दोनों नरेश भिड पडने के लिये तैयार होगये और साथ ही सामने से भी जब गोले बाजी करने के लिये तोपों पर बत्ती पडने का समय आ पहुंचा तब अवसर साध कर शाही वजीर और नव्वाबों ने एक बार फिर बादशाह से इस तरह प्रार्थना की किः—

" आपकी सबको एक दीन करदेने की जिद ही हिन्दुओंका दिल तोड रही है । इसी सबब से ये लोग भी कट मरने को तैयार हुए हैं । इन्हें मार देना या जीत लेना कोई मामूली काम न जानिये । अगर ये मारे भी गये तो हमें यह जंग बहुत भारी पडैगा और इस पर भी जो कहीं जोधपुर वाले यशवन्तसिंहजी इनमें—शामिल आ हुए तो बडी मुश्किल बीतैगी । और अगर जयपुर वाले और दीगर रईसों ने भी मदद में इनका साथ दे दिय तो फिर लेने के देने पड जायंगे । ऐसे अगर सब राजाओं को आपने अपने खिलाफ कर लिया तो इसका नतीजा हमारे लिये बहुत ही बुरा होगा ।"

वास्तव में हठीले औरंगजेब ने होनहार में समय पाकर इन दोनों के साथ और २ भी हिन्दू राजाओं के विरोधी हो जाने का भय कर—लेने के देने पड जाने के डर से इनकी सलाह मानली । सेना तुरंत ही वापिस लौटा ली गई और तब करणसिंहजी मित्र भावसिंहजी के पैरों पड गये । इन्होंने उठाकर उन्हें छाती से लगा लिया । दोनों के आपस में खूब प्रेम संभाषण: हुआ, खूब धन्यवाद का तांता लगा और खूब ही दोनों ने जब हर्ष प्रकट कर लिया तब हाडाराव बोले:—

"मुझे दिल्ली में निवास करते २ तीन वर्ष हो गये । अब शीघ्र ही छुट्टी ले कर मैं बूंदी जाना चाहता हूं क्योंकि बादशाह का हठ भी अब मिट ही गया । अब आप भी शहर में जा कर निवास कीजिये ।"

इसके अनंतर संवत् १७२४ में कुछ कम तीन वर्ष तक दिल्ली में निवास कर हाडाराव भावसिंहजी बूंदी पधारे । इस अध्याय में जो घटनायें

लिखी गई हैं उनका वर्णन "वंश भास्कर" में विस्तार से है। "औरंग जेब नामे" में इस बात का बिलकुल उल्लेख नहीं। "टाड राजस्थान" में थोडा बहुत भेद अवश्य हैं किन्तु उसमें लिखा है:—

"बीकानेर के राजा करण के प्राण नाश करने के लिये इस स्थान पर जो षड्यंत्र (जाल का) विस्तार हुआ था, राव भावसिंह ने ही अपने असीम साहस से उस षड्यंत्र जाल को नष्ट कर बीकानेर के महाराज के जीवन की रक्षा की।"

इसमें "वंश भास्कर" के लेख की छाया है। और केवल इतने से ही शब्द पढने से इस कथा की सत्यता सिद्ध हो जाती है। हां अंतर अवश्य है और वह यह है कि कवि राजा सूर्यमल्ल जी ने यह घटना दिल्ली में होना वर्णन किया है तब टाड साहब ने औरंगाबाद में और सो भी उस समय जब भावसिंहजी वहां के सूबेदार शाहजादा की अधीनता में मुखिया होकर शासन करते थे।

ये घटनायें उस समय की हैं जब भारत वर्ष में अंगरेजों का दौर-दौरा आरंभ हो गया था।

उनके राज्य का बीज चाहे जहांगीर के समय पडा हो किन्तु अब उसमें से पौधा निकल कर दिन २ बढने लगा था। "वंशभास्कर" के अनुसार इसी संवत् में इंग्लैड के राजा द्वितीय चार्लेस ने पोर्च्युगीज लोगों से दहेज में बंबई पाकर "ईस्टइंडिया कंपनी" को उसका प्रबंध सौंप दिया और उसने उसके द्वारा व्यापार की खूब ही वृद्धि की थी। इस ग्रंथ के मत से बंबई नगर का प्रबंध चार्लेस राजा ने चार वर्ष तक अपने हाथ में रख कर तब कंपनी को दे दिया था। इतिहास प्रेमी भारत वर्ष के अथवा इग्लैंड के इति-वृत्त से मिला कर देख लैं।

यद्यपि नीचे लिखी घटना का संबंध भावसिंहजी के चरित्र से नहीं है परंतु उदयपुर के इतिहास पर एक नवीन प्रकार का प्रकाश पडता है इस कारण संक्षेप से यहां उसका भी उल्लेख करदेना मैं अनुचित नहीं समझता और वह भी केवल इस लिये कि इतिहास प्रेमियों को शायद कुछ काम की

बात इससे मालूम होजाय। "वंशभास्कर" में लिखा है कि उदयपुर के राना राजसिंहजी का प्रधान अमात्य **हीराचंद** अथवा हीरालाल बडा जोरदार मंत्री था। उसने वहांके बडे २ सरदार उमरावों को अपने आतंक से-अपने प्रभाव से जब मुट्ठी में ले लिया तब उसकी **नियत में फितूर** आया। उसने तब राज कुमार सरदार सिंह जी को अपने में मिलाकर राजसिंहजी के **विनाश का षड्यंत्र** रचा। इन्ही राजकुमार को भावसिंहजी की भतीजी अर्थात् भगवन्त सिंहजी की बाई विवाही थी। उसने इन राजकुमार की माता को अपने जाल का शस्त्र बनाकर राजसिंहजी को मरवा डालने और सरदारसिंहजी को गद्दी दिलादेने के लिये ललचाया। इस अमात्य का एक विश्वसनीय सेवक दयालुदास वैश्य था। दीपावली के दिन दयालु जब अपनी ससुराल जाने लगा तब उसकी रक्षा के लिये अमात्य ने अपनी **कटारी देदी**, जब उसने कटारी संभाली तो उसके नयाम में कागज का एक टुकडा मिला जिस में लिखा था कि—"कल्ह ही **राजा को मारकर** राजकुमार को गद्दी देना होगा और राज्य के शासन का कुल भार कुमार की माता के हाथ में।" वह इसे पढ कर ससुराल न गया किन्तु सीधा राना जी के पास पहुंचा। पत्र को पढकर उन्होंने **रानी को मारा,** उस अमात्य को मारा और अपराध न होने पर भी पुत्र ने कभी अपने पिता को मुख न दिखलाया। उन्होंने भी किसी प्रकार शरीर छोड दिया। "वंशभास्कर" की टिप्पणी में बारहट कृष्णसिंहजी इस घटना का मेवाड के इतिहास में इसका पता देते हैं। यह घटना संवत् १७२९ की बतलाई जाती है। कहते हैं रानाजी ने इसी का **प्रायश्चित्त** करने के लिये कांकरोली में राज समुद्र वा **राय समुद्र** नामक एक बहुत बडा सरोवर बनवाया था।

भावसिंह जी ने बूंदी आकर "वंश भास्कर" के मत से **केशवरायजी** के मंदिर का टूटा हुआ **कलश** शास्त्रविधि से फिर चढाया और इसका बहुत भारी उत्सव किया किन्तु मुंशी देवी प्रसाद जी ने "राजपूताने की प्राचीन शोध" में एक शिला लेख के आधार पर महाराव राजा बुध-

सिंह जी के रानी कछवाही जी का कलश चढाना लिखा है और उसीसे लेकर गत पृष्टों में इशारा किया गया है । इन्होंने यहां आने के अनंतर दूसरा काम यह किया कि अपनी **बहन का विवाह** उदयपुर नरेश राना राजसिंह जी के जीवित पुत्र जयसिंहजी से कर दिया । यह उस समय की बात है जब दक्षिण में मराठा **वीर शिवाजी** का खूब दौर दौरा हो चला था । बस **बादशाह ने** उनसे लडने के लिये ही इनको बुलाया और एक तरह, हजार इनसे क्रुद्ध होने पर भी इन पर भरोसा करके—इनको **रणवांका** समझ कर याद किया ।

अध्याय १०

बहन की वीर गति ।

गत अध्याय में लिखा हुआ अपनी भगिनी का विवाह कर हाडाराव **भावसिंहजी** बादशाह औरंगजेब की आज्ञा से कूच दर कूच चलकर **औरंगाबाद** पहुंचे और वहां पर **भावपुरा** नामक नगर बसाकर निवास किया । इन्होंने वहां जाकर क्या किया और कबतक वहां निवास कर किस तरह परलोक को प्रयाग किया सो प्रकाशित करने पूर्व **कृष्णसिंहजी** की कथा लिख देना आवश्यक है ।

भगवन्त सिंहजी की मृत्यु के अनंतर कृष्णसिंहजी का लोभवश अपनी मुख्य गादी छोड कर चाचा के क्षणिक राज्य का स्वामी होना, दादी, और नाती के परस्पर मनमुटाव होना, केशव रायजी के मंदिर की रक्षा कर शाही सेना लूटलेने से बादशाह का कृष्णसिंहजी पर कोप, उनका नव प्राप्त राज्य छीन कर निर्वाह के लिये केवल तीन परगने देदेना, दादी की पुकार को बादशाह का न सुनना—इत्यादि बातें पाठकों ने गत अध्यायों में पढलीं । जब बादशाह के कोपानल से जल मरने की पारी आ पहुंची तब कृष्णसिंहजी रूठे हुए स्वामी को मनाने के लिये **दिल्ली** गये । यदि गये तो क्या हुआ किन्तु औरंगजेब के आतंक से घबडा कर उसके सामने जाने का इनका साहस न हुआ और इसलिये जैसे गये थे वैसे ही वापिस गूगोर चले आये ।

इस अपमान ने बादशाह के कोपानल में घी की आहुति डालदी । मऊ और बारां आदि परगने खालसे तो वह पहले ही कर चुका था। अब उसने ये परगने कोटा नरेश जगत्सिंहजी को तीन लाख रुपये वार्षिक आय में इजारे दे दिये। बस इस तरह कृष्णसिंहजी की रही सही आशा भी जाती रही। इसी अवसर में भगवन्तसिंहजी की दूसरी कन्या का विवाह रामपुरा के अधीश मुहकमसिंहजी के पुत्र गोपालसिंहजी से संवत् १७३१ में हुआ।

इस जगह कविराजा सूर्यमल्लजी ने उदय पुर की एक और घटना का उल्लेख किया है जिसका संबंध भावसिंहजी के चरित्र से न होने पर भी यहां प्रकाशित करदेने से कदाचित् मेवाड के इतिहास पर एक नवीन प्रकाश पड सकता है। उससे विदित होता है कि राना राजसिंहजी औरंगजेब के आतंक से घबडा कर उसकी सेवा में उपस्थित होने के लिये उदयपुर से चल भी दिये थे किन्तु मार्ग में कमा नामक एक नाई कवि ने उनको मरुभाषा में एक छप्पय बना कर सुनाई जिसका आशय यह था कि—"हैं! हैं!! आप दिल्ली पधारते हैं? अपने पितामह प्रतापी प्रतापसिंहजी के प्रणों को भूल कर?" इस बात को सुन कर रानाजी पर इतना असर हुआ कि वह तुरंत ही लौट गये। इसी तरह एक घटना प्रतापी प्रतापसिंहजी के लिये भी कही जाती है किन्तु मेवाड के इतिहास इन बातोंको सच्ची नहीं मानते। मुझे भी इस समय इन्हें खंडन मंडन करने से कुछ प्रयोजन नहीं, हां इतना कह सकता हूँ कि महाराना प्रतापसिंहजी के अनंतर उदयपुर की गद्दी पर राजसिंह जी जैसा वीर शायद नहीं हुआ। इन दोनों के चरित्र पढने योग्य हैं। प्रतापसिंहजी के चरित्र लिखकर कितने ही महाशयों ने अपनी लेखनी को पवित्र भी किया है। यदि कोई राजसिंहजी का भी चरित्र लिखे तो लिखने योग्य है।

अस्तु! बादशाह औरंगजेब ने कृष्णसिंहजी पर क्रुद्ध होकर जिस समय अपने पुत्र शाहआलम को उज्जैन की सूबेदारी पर भेजा तो उसे हुक्म दे दिया कि "किसी बहाने से कृष्ण सिंह को भी मरवा देना।" उससे पहले वहां का सूबेदार भगवन्तसिंहजी को जहर देकर मरवा डालने

वाला वजीर खां था। उसीकी जगह शाहजादा नियत किया गया था। इधर छलघात से कृष्ण सिंहजी का वध करवा देने की उसने आज्ञा दी और उधर उनको लिखवाया कि "तुम शाहजादे की सेवा करो।" औरंगजेब की आज्ञा के अनुसार गूगोर से चलकर यह उसके साथ होगये। शाहजादे ने इनकी नौकरी जनानी सवारी के साथ बोल दी और तब आप इस ताक में लगा रहा कि किसी तरह संग्राम बिना ही यह मार लिया जाय। कृष्ण सिंहजी को साथ लिये हुए शाहजादे की सेना जब ताजपुर होती हुई ज्येष्ठ शुक्ला १९ को संवत् १७३४ में पुष्प करंडिनी पुर (?) पहुंची तो शाहजादा इनको बडा ही मित्रभाव दिखला कर, हंसते २ इनका हाथ पकडे हुए अपने शिविर में ले गया। बस वहां ही छल से इनको काट डाला। यह मरे अवश्य, किन्तु शाहजादा के तीन सामन्तों को मार कर मरे। इनके साथ जो सरदार थे वे शत्रुओं के कई एक शूर सामन्तों को मार कर खेत रहे और इस तरह कृष्ण सिंहजी की जीवन लीला समाप्त होगई। वह जब धोके में आकर मारे जाने पर भी तीन को मार कर मरे तब अवश्य वीर गति पाई और इनके साथ जो पुरोहित भवानी दास जी थे उन्होंने शाहजादे से इनकी लाशें लेकर क्षिप्रा नदी के तट पर पिशाच मोचन तीर्थ में इनकी अंत्येष्टि क्रिया की। इनकी कुमरानियां और खवासिनें—यों १८ रमणियां इनके नाम पर चिता में भस्म होकर पति लोक को चली गईं। इनका जन्म संवत् १७०० में हुआ था।

जिस समय इनका स्वर्ग वास हुआ इनके केवल एक ही पुत्र अनिरुद्ध सिंहजी विद्यमान थे। उनकी भी उमर ११ वर्ष की थी। यद्यपि हाडाराव भावसिंह जी भतीजे अथवा युवराज कृष्णसिंह जी के वर्ताव से प्रसन्न नहीं थे तथापि इनके मृत्यु का अशुभ संवाद जब उनके पास औरंगाबाद में पहुंचा तो सुनकर वह बहुत दुःखित हुए और तब उन्होंने इनके इकलौते पुत्र अनिरुद्ध सिंहजी को अपना उत्तराधिकारी बनाया। राव राजा शत्रुशल्यजी के पांच पुत्रों में केवल बचे बचाये नाती यह एक ही थे। बस इसकारण यही बूंदी राज्य के स्वामी हों तो इसमें विशेषता ही क्या ?

जिनदिनों भावसिंहजी बादशाह की आज्ञा से औरंगाबाद नहीं गये थे इनको पत्र लिखकर यशवन्त सिंहजी ने चाहा कि-"जैसे आपने करण सिंहजी का झगडा मिटा दिया वैसे हमारी भी बादशाह के साथ सफाई करा दीजिये ।" इन्होंने करणसिंहजी की तरह बादशाह की शरण में आजाने की सलाह दी। "वंशभास्कर" से जाना जाता है कि ये उन दिनों दिल्ली में ही थे। और बादशाह ने यशवन्त सिंहजी का राज्य भी छीन लिया था। इनके साथ एक तो इनकी रानी कर्मवती जी और दूसरी सीसोदनीजी थीं। भावसिंहजी के प्रयत्न और वजीर तथा नव्वाबों के समझाने बुझाने से औरंगजेब ने इनका अपराध क्षमा कर इन्हें सिंधु नदी के पार काबुल की ओर के किसी सूबे पर भेजदिया। इनकी दो रानियों में दूसरी गर्भवती थीं। उन्हींके औरस से राज कुमार अजित सिंहजी का संवत् १७३९ में जन्म हुआ। बादशाह ने लडका होने की खबर पाकर रानियों से कहलाया कि-"अगर जोधपुर लेना है तो लडका हमें दे दो। नहीं तो समझ लेना कि जोधपुर से सदाके लिये हाथ धो बैठोगी।" कर्मवती जी ने राठोर कुल की रक्षा के लिये लडका न दिया और कहा यह कि-"अभी बालक पैदा ही नहीं हुआ है।" बादशाह ने इस बात को सत्य न मान कर अपनी सेना से जोधपुरी शिविरों का घेरा दिलवा दिया। इस तरह घिर जाने पर भी कर्मवती जी ने लडका देने के बदले गोविंद दास भाटी को संपेरा बनाकर उसकी कावड के एक पलडे में बालक और दूसरे में रुपया रखकर जोधपुर को भिजवा दिया। औरंगजेब को जब इस बात की खबर हुई तब उसने इनके शिविरों की तलाशी ली किन्तु वहां बालक मिला नहीं। इस पर बादशाह ने उसी अफसर को जो पहले केशवरावजी का मंदिर तोडने के लिये जाकर कृष्ण सिंहजी से हार भागा था भेजा और ऐसे उम अस्तखां (? को आज्ञा देदी कि:-" रानियों को पकडकर हमारे पास हाजिर करदो और जो उनकी मदद करें उन्हें गाजर मूली की तरह काट डालो।" इधर रानियों के साथ जो राठोड सामन्त थे उन्होंने अपने मन में पक्की ठान ली थी

कि पहले अंत:पुर की समस्त रमणियों को काट कर फिर बादशाही सेना से लड मरैंगे।"–

इस परामर्श के अनुसार अवश्य ही उन्होंने जनाने में जाकर अपनी २ नारियों को काट डाला किन्तु जब कर्मवती जी की पारी आई तो उन्होंने डपटकर इनसे कह दिया:–

"नहीं २! मैं ऐसे कायरों की तरह मरने वाली नहीं हूं। मैं मरूंगी अवश्य। आज मर मिटने ही में अपने धर्म की–अपनी लज्जा की रक्षा है किन्तु तुम जानते हो मैंने किस कुल में जन्म लिया है? मैं मरूंगी और बहुतों को मार कर मरूंगी। मैं आज दिखला दूंगी कि महाराजाधिराज पृथ्वीराज की अर्द्धांगिनी संयोगिता के बाद जोधपुर नरेश की हाडी रानी लडाई में तलवार के हाथ दिखला कर वीर पुरुषों के समान मारी गई थी।"

रानी ने जैसा कहा था वैसा ही कर भी दिखाया। उन्होंने पुरुष वेश धारण कर हाथी पर शस्त्रों से सजे हुए आरोहण किया और पति के साथ जैसे छत्र चामर रहते थे वैसे ही रखकर एक कोमल अबला ने सच्ची सबला होने का खूब ही जौहर दिखलाया। एक पहर तक घोर संग्राम होने के अनंतर कर्मवतीजी ने अपने नाम को सार्थक: कर संसार के इतिहास में बूंदी और जोधपुर–हाडा और राठोड दोनों कुलों का मस्तक सदा के लिये ऊंचा कर दिया। इस तरह उन्होंने वीरगति पाई और उनके साथ के सब ही सामन्त खेत रहे।

इसके अनंतर क्या हुआ सो यहां लिखने की आवश्यकता नहीं। गत अध्यायों में "वंशभास्कर" से लेकर यशवन्त सिंहजी के चरित्र की जो दो चार बातें लिखी गई हैं वे अवश्य आईने की दूसरी पृष्ठ हैं किन्तु इतिहास इसकी साक्षी देते हैं कि वह बडे नामी, बडे बहादुर और बडे अच्छे नरेश थे। उनका चरित्र विस्तार से लिखना मेरी इस पोथी का विषय नहीं है।

इस अध्याय में मुख्य तीन घटनाओं का उल्लेख है। एक भावसिंहजी के भतीजे कृष्णसिंहजी का वध। इस विषय की चर्चा "टाडराजस्थान" में बिलकुल नहीं है किन्तु "औरंगजेबनामे" से जाना जाता है कि वह किसी के षडयंत्र से नहीं मारे गये किन्तु संवत् १७२४ की आषाढ कृ० ३ के बाद खबर मिली कि "किशनसिंह हाडा जो शाहजादे मुहम्मद अकबर की नौकरी में आया था उसकी खिलअत पहनने में शाहजादे के नौकरों से तकरार होगई। जिससे पेट में जमधर मार कर वह मर गया। उसके ४ खिद-मतगार १९ आदमियों को मार कर मारे गये।" दोनों ग्रंथ से उनका मरना तो निश्चय है ही किन्तु एक में छल से मारा जाना और दूसरे में आत्मघात करना लिखा है। दोनों में सच्चा कौन था सो मैं नहीं कह सकता परन्तु अनुमान यह होता है कि जब उनको मार डालने की ही बादशाह ने आज्ञा देदी थी तब निरपराध मारे जाने के कलंक से बचाने के लिये असली बात उस समय प्रकाशित नहीं की गई।

दूसरी घटना उदयपुर नरेश राना राजसिंहजी के विषय में है। यह बात केवल प्रसंग आ पडने पर मेवाड के इतिहास पर एक नया प्रकाश डालने की इच्छा से लिखीं गई है। यदि कोई इतिहास प्रेमी महाशय चाहें तो अन्य इतिहासों से इसका मिलान कर सारासार का विचार कर सकते हैं।

तीसरी बात राव भावसिंहजी की भगिनी कर्मवतीजी की वीरता से संबंध रखती है। यद्यपि "टाडराजस्थान" में इसका न तो बूंदी के इतिहास में उल्लेख है और न जोधपुर के में, परन्तु "औरंगजेबनामे" से मालूम होता है कि यह घटना लगभग उसी तरह से हुई थी जैसे "वंशभा-स्कर" में लिखी गई है। मात्र दो बातों का अंतर है और सो भी दिन रात का सा। एक उससे मालूम होता है कि रानियां दोनों गर्भवती थीं और दोनों के पुत्र उत्पन्न हुए और दूसरे इनमें कर्मवतीजी का नाम तक नहीं लिखा है। और चाहे इनका मारा जाना लिखा गया है और युद्ध में जाना भी, किन्तु इनकी विशेष वीरता का परिचय नहीं दिया गया। इनमें

से जब "यशवन्तसिंह चरित्र" में उस समय एक ही राजकुमार अजित सिंहजी का जन्म होना बतलाया गया है तब पहली बात तो मिथ्या मानने योग्य है ही और दोनों के बालक होने की घटना इसलिये भी मिथ्या है कि सद्यः प्रसूता रानी रणभूमि में नहीं जासकती इसलिये एकही गई होंगी। दूसरी के विषय में इतना ही वक्तव्य है कि जब सूर्यमल्लजी एक प्रामाणिक लेखक थे और "औरंगजेबनामा" केवल संक्षिप्त सूची तब संदेह नहीं कि "वंशभास्कर" का लेख अक्षरशः सच्चा है।

और जिस हालत में कर्मवती जी बावन समरों में विजय पाकर बावन वीर कहाने वाले और समर भूमि में आत्मविसर्जन करने वाले शत्रुशल्यजी की पुत्री, धर्मध्वज भावसिंहजी की भगिनी और पराक्रमी यशवन्त सिंहजी की पत्नी होकर पति को भी संग्राम में से भाग आने पर ताना देने वाली थीं तब वही अवश्य पुरुषवेश धारण कर वीरगति पाने में अग्रसर हुई इसमें संदेह नहीं। इसलिये कहना चाहिये कि एक जनाने में रहने वाली रमणी ने दुनियां के इतिहास में वह काम कर दिखाया जो बड़े २ वीर सुभटों के नसीब में नहीं। अवश्य ही उन जैसी वीर नारी संसार में इनीगिनी पैदा हुई होंगी। उनका चरित्र सचमुच सोने के अक्षरों में लिखे जाने योग्य है। यदि कोई महाशय विशेष खोज करके उनके वंदनीय चरित्र लिखे तो बडा उपकार हो सकता है। धन्य आदर्श रमणी! तुम को हजार बार धन्य है!!

अध्याय ११.

भावसिंहजी का साहित्यप्रेम ।

पंडित गणेशबिहारी मिश्र, पंडित श्यामविहारी मिश्र एम्. ए. और पंडित शुकदेवविहारी मिश्र बी. ए.—इन तीनो मिश्र बंधुओं ने अपने बनाये "हिन्दी नवरत्न" में हिन्दी भाषा के नामी २ नो कवियों के चारित्र और साथ ही उनके ग्रंथरत्नों की समालोचना की है। इनमें सातवां आसन कवि शिरोमणि मतिराम को दिया है। इस पुस्तक के मत से यह तिकवांपुर जिला कानपुर निवासी रत्नाकर त्रिवारी के पुत्र और सुप्रसिद्ध भूषण कवि मुकुट के मध्यम बंधु थे। इनका जन्म संवत् १६९६ के लग भग हुआ था। यह हाडाराव भावसिंहजी के यहां निवास करते थे। उसी समय "ललित ललाम" नामक ग्रंथ इन्होंने बूंदी नरेश के लिये बनाया। इस पुस्तक में उदाहरण के तौर पर भावसिंहजी की प्रशंसा के सौ छंद के लग भग हैं। यों यह ग्रंथ अलंकारों का है।

कविराजा सूर्यमल्लजी इनके बूंदी आगमन और "ललित ललाम" के निर्माण की कथा संक्षेप से इस तरह लिखते हैं कि बुंदेलों की भूमि में भूषण, मतिराम और चिंतामणि—ये तीनों ब्राह्मण, बंधु और कवि थे।: कहते हैं कि भूषण की भामिनी को एक बार अपने घर हाथी बांधने की इच्छा हुई किन्तु घर की दरिद्रता देख निसासें डाल कर यों ही रह गई। यह बात जब इन्होंने सुनी तब भूषण तो मरहटा वीरपुंगव शिवाजी की सेवा में गये जिनके विषय में "शत्रुशल्य चरित्र" के अंत में कुछ लिखा गया है। मतिराम हाडाराव भावसिंहजी की सेवा में उपस्थित हुए। माळूम होता है कि रावभाव केवल तलवार बहादुर ही नहीं थे। वह साहित्य शास्त्र के भी अच्छे पंडित थे और दानी भी अपने समय के एक ही थे। यदि साहित्य के विद्वान् न होते तो शायद ऐसा अनुपम ग्रंथ निर्माण करने का उत्साह ही मतिराम को न होता। इन्होंने कविराज को इस ग्रंथ की रीझ में समस्त वस्त्र दिये, आभूषण दिये, चार हजार रुपये दिये, ३२ हाथी दिये और पाटन परगने के रिडी और चिडी-दो गांव दिये।

इस "ललित ललाम" में अलंकारों के उदाहरण रूप भाव सिंहजी की प्रशंसा के जो सौ के लगभग छंद हैं उन सबको उद्धृत करना नहीं बन सकता है। यह पुस्तक वर्तमान बूंदी नरेश महाराव राजा श्री रघुवीर सिंह जी के निदेश से यहां के सुप्रसिद्ध कविराज गुलाब सिंहजी की भाषाटीका सहित छपगया है। हां! उदाहरण के लिये इसमें से थोडे से छंद मैं यहां लिखे देता हूँ जिन्हें पढने से पाठकों को विदित हो जाय कि गत पृष्ठों में राव राजा भावसिंहजी के चारित्र में उनकी अप्रतिम वीरता, उनकी असाधारण स्वधर्म-रक्षा और उनकी अनुपमेय दृढता का जो खाका खैंचा गया है उसमें सत्यता कहां तक है। और साथ ही उनकी **दानशूरता** भी मालूम हो जाय। इन छंदों को उद्धृत करने का मुख्य हेतु यही है कि और २ इतिहास लेखकों ने जब औरों की लिखी हुई—दूसरों की कही हुई घटनाओं का उल्लेख किया है तब मतिरामजी इन हाडाराव के **सम सामयिक** थे और बहुत वर्षों तक इनके निकट निवास किया था। इस कारण इन्होंने जो कुछ लिखा आंखों देखा लिखा है। अस्तु! वे छन्द ये हैं:—

"दोहा—शत्रु शाल सुत सत्य में, भावसिंह भूपाल,
एक जगत में जगत है, सब हिन्दुन की ढाल १

सवैया—भौजन सों मतिराम कहे कवि लोगन को जिमि भोज बढावे,
रोस किये रण मंडल में खल देह की खालनि भूमि मढावे,
रीझ हू खीज में राव सेता सुत कीरति में अति ज्योति चढावे,
भाऊ दिवान गुरू सब भूँपन भूपन दान कृपाण पढावे २

मनोहर—एक रजपूत है दिवान भावसिंह जंगजुरे चौगुनो चढत चित चाव में,
शत्रुशाल नंद को सुयस मतिराम यातें फैलत महीपति समाज समुदाय में,
दिल्ली के दिनेश के प्रचंड तेज आंच लगे पानिय रह्यो न काहू भूपति तलाव में,
ऐसे सब खलक तें सकल सकिलि रही राव में सरम जैसे सलिल दरयाव में ३

---

१ शत्रुशल्यजी २ बूंदी नरेशों की पदवी

सत्ता को सपूत भावसिंह भूमिपाल जाकी किति जौन करत जगत चित चाव है,
कविन को मतिराम कामतरु ऐसे कर अंगद को ऐसे रण में अडोल पांव है,
चंद की सी ज्योति चंडकर को सो तेज पुरुहूत को सो पुहुमी में प्रकट प्रभाव है,
अर्जुन पन, मुनि मन, धनपति धन, जगपति तन, मृगपति रन राव है ४

सवैया—जंगमें अंग कठोर महा मद नीर झरैं झरना सर से हैं,
झूलनि रंग घने मतिराम महीरुह फूल प्रभा निकसे हैं,
सुन्दर सिंधुर मंडित कुंभनि गैरिक शृंग उतंग लसे हैं,
भाऊ दिवान उदार अपार सजीव पहार करी बकसे हैं ५

कवित—बाजत नगारे जहां गाजत गयंद तहां सिंह सम कीन्हों वीर संगर विहार हैं,
कहे मतिराम कवि लोगन कों रीझि कारि दीन्हें ते दुरद जे चुवत मद धार हैं,
शत्रुशाल नंदन राव भावसिंह तेग त्योग तोसे और औनितल आजु न उदार हैं,
हाथिनि विदारवे को हाथ हैं हथ्यार तेरे दारिद विदारवे को हाथिये हथ्यार हैं६
सूबनि कों मेटि दिल्ली दलिबे को चमू सुभट समूह निशि वाकी उमहति है,
कहे मतिराम ताहि रोकिवे कों संगर में काहू के न हिम्मति हिये में उलहति है,
शत्रुशाल नन्दके प्रताप की लपट सब गरबी गनीम बरगीन कों दहति है,
पति पातसाह की इज्जत उमरावन की राखी रैया राव भावसिंह की रहति है७

सवैया—भोजे[1] बली रतनेश[2] भये मतिराम सदा जस चाडन ही में,
नाथ सता समरत्थ दुहूनि दले अरि तेज सो ताडन ही में,
भाऊ[4] नरिन्द के धाक धुके अरि जाय गिरे गिरि गाडन ही में,
जीति महीपति हाडनि ही महं ज्योति दधीचि के हाडन ही में ८

क०—महावीर राव भावसिंह को प्रताप साथ जस के पहूंच्यो छोर दसहूं दिशानि के,
दबके चढत फन मंडल फनीपति को फूटि फाट जात साथ शैल की शिलानि के,
दुजन के गन कल्प द्रुम के बागनि में करत विहार साथ सुरप्रमदानि के,
संपति के साथ कपि सौधनि बसत वन दारिद बसत साथ वैरी बनितान में ९

---

१ दान २ रावभोजजी ३ राव रत्नसिंहजी ४ भावसिंहजी।

छप्पय—मन प्रकटित हरि प्रीति प्रीति तिहिं तेज प्रकाशिय,
प्रबल तेज तिहिं जगत जीव रक्षा उल्लासिय,
तिहिं रक्षा बढि धर्म धर्म तिहिं संचित सम्पति,
तिहिं सम्पति किय दान दान तिहिं सुजस विमल अति,
मतिराम सुजस दिन प्रति बढत सुनत दुर्वन उर फट्टियउ,
भुव भावसिंह शत्रु शाल सुत इहिं विधि चरित प्रकट्टियउ १०

कवित्त—विपिन सरन के चरन तकौ राव ही के चढो गिरि परकें तुरंग परवर में,
राखो परिवार को के आपनोये हठ राजसम्पति दे के नगारे दे समर में,
कहै मतिराम रिपुरानी निज नाहन सो बोलैं यों डरानी भावसिंहजीके डर में,
बैर तो बढायो कह्यो काहू को न मान्यो अब दांतन तिनूका के कृपान गहो करमें
जानत जहान ऐंड करि सुलताननि सों कीन्हों कछवाह काम धुन को बचावहै,
देत मतिराम भाट चारन कविन जात कौन पै गनायो गज समुदाव है,
तेग त्याग सालिम सपूत शत्रु शालजू की खीझें रनरुद्र रीझें मौज दरियावहै,
साहनि सो अकसिबो हाथिनको बकसिबो रावभाव सिंहजू को सहजसुभावहै १२
देखि महिपालनि कंपति है छाती ऐसी सम्पति सहित देत जाचकनि दानहै,
देत सरनागत नरेसनि अभय दानि महावीर वैरिन को देत भय दान है,
कहै मति राम दिल्ली पति कों बड़ाई देत शत्रुशाल नंद बलेबंध सुलतान है,
राव भावसिंहजू को सुजस बखानियत लीबे को जहान सब दीबे को दिवानहै १३

उक्त तेरह छंदों में से जो २ पद्य भावसिंहजी के गत पृष्टों में लिखे हुए जिस २ चरित्र का अनुमोदन करता है सो लिखना उन बातों का दुबारा उल्लेख कर मानो पिसे को पीसना अथवा व्यर्थ ही इस पोथी को बढाकर पोथा कर देना है। हां! इनके पढने से इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं है कि वह अपने समय के एक ही वीर थे, एक ही दानी थे और उन्होंने

---

१ शत्रुओंका। २ आडा वला। यह पहाडी सिलसिला जो बूंदी के राज्य में ओर से छोर तक निकल गया है।

अपनी अप्रतिम प्रतिभासे, अपने असाधारण पराक्रम से हिन्दू धर्म के कट्टर विरोधी औरंगजेब के आतंक की रंचक भी पर्वाह न कर धर्म को बचाया, मान मर्यादा को बचाया और शरणागत नरेशों को बचाया। कविराजा सूर्यमल्लजी ने केवल बीकानेर नरेश करणसिंहजी की सहायता करना और भावसिंहजी का जी झोंक कर उनकी प्राण रक्षा करना लिखा है किन्तु ऊपर उद्धृत किये हुए बारहवें पद्य के पहले चरण से जाना जाता है कि इन्होंने बादशाह से ऐड करके किसी कछवाहे कामध्वज की भी प्राण-रक्षा की थी। यह कौन कछवाहा था और कहां का नरेश था सो बूंदी के इतिहास में लिखा नहीं है किन्तु नाम से मालूम होताहै मतिराम ने किसी मदन सिंह के नाम का अपने छन्द में ठीक समावेश करने के लिये काम-ध्वज लिख दिया है। अथवा कामध्वज–कबंधज से बनगया हो और कबंधज राठोडों को कहते हैं। कवियों के लिये इस तरह नाम बदलौवल कोई नई बात नहीं है। सूर्य मल्लजी ने भी इसी प्रयोजन से रत्नसिंहजी को रता, शत्रुशल्यजी को सता और भावसिंहजी को भाऊ लिख कर "वंश-भास्कर" में अपना काम निकाला है।

अध्याय १२.

चरित्र का अंत।

हाडाराव भावसिंहजी के इसी चरित्र के चौथे अध्याय में "टाडराजस्थान" से लेकर इन पर बादशाह औरंगजेब के कोप की और इसलिये आत्माराम जी गौड को भेज कर बूंदी छिनवा लेने की जो घटना लिखी गई है उस से आगे साहब बहादुर इस तरह लिख कर इनका चरित्र समाप्त करते हैं। उन्होंने लिखा है कि:—

"अत्याचारी (औरंगजेब) ने हाडा की ऐसी हिम्मत से प्रसन्न होकर राव भाव के पास फर्मान भेजा और उसमें अपनी कृपा का उल्लेख कर अपराधों

के लिये मुआफी बख्शी। और अपनी सेवा में उपस्थित होने की आज्ञा दी। पहली बार राव ने जाना स्वीकार न किया किन्तु जब बादशाह ने बारंवार अपने शुभ विचार का वचन दिया तब वह गये और उनको मुअज्जम शाहजादे के अधीन औरंगाबाद की सूबेदारी दी। बीकानेर के राजा करण का प्राण नाश करने के लिये यहां पर जो षड्यंत्र रचा गया था उससे उनके प्राणों की रक्षा कर इन्होंने अपनी स्वतंत्रता का परिचय दिया। अपने राजपूत भाइयों के साथ, ओरछा और दतिया के बहादुर बुन्देलों के साथ इन्होंने अनेक काम ऐसे किये जो वीरता के द्योतक हैं। इन्होंने औरंगाबाद में कितने ही अच्छे २ महल या मकान बनवाये। यहां इन्होंने अपनी दान शीलता और पवित्रता के अनेक गुणों में और अपनी बहादुरी से इतना नाम प्राप्त कर लिया कि रोगनिवृत्ति के लिये भी इनका नाम जादूका सा असर रखने वाला कहाजाता है। इनका देहान्त संवत् १७३८ (सन १६८२ ईसवी) में औरंगाबाद में हुआ। इनके कोई सन्तान नहीं थी इस कारण इनके भाई भीमसिंहजी के पौत्र अनिरुद्ध सिंहजी इनके उत्तराधिकारी हुए।"

टाड साहब ने इन वाक्यों की टिप्पणी में दो बातें और लिखी हैं जो भी यहां उद्धृत करने योग्य हैं। एक यह कि—"यह बात यहां प्रकाशित कर देने योग्य है कि इन राजपूत राजसी सवारों की सत्यता बडी दृढ प्रतिज्ञा का कारण थी।" और दूसरे—"भीमसिंह (जी) जिन्हें गूगोर जागीर में मिली थी उनके कृष्णसिंह नामक एक पुत्र थे यही भीमसिंह जी की मृत्यु के बाद गद्दी पर बैठे थे। किन्तु औरंगजेब ने इनको मरवा डाला। अनिरुद्ध सिंह (जी) इन कृष्ण सिंह (जी) के पुत्र थे।"

अवश्य टाडसाहब ने इसतरह लिखने में कुछ भूल की है। कृष्ण सिंह जी यद्यपि पुत्र भीमसिंह जी के ही थे किन्तु भीमसिंह जी को गूगोर जागीर में नहीं मिली थी। भगवन्त सिंह जी को बादशाह से मिली थी

और कृष्ण सिंहजी भाव सिंहजी को छोड कर चाचा भगवन्त सिंह जी की गोद जा बैठे थे । अस्तु ! बूंदी के इतिहास से और भी दो एक बातों में इसका अंतर है । करणसिंहजी की घटना का अंतर गत अध्यायों में दिखलाया जा चुका है । औरंगाबाद के विषय में कविराजा सूर्यमल्लजी ने अपने ग्रंथ "वंशभास्कर" में जो कुछ लिखा है उसका सार नीचे लिखा जाता है ।

किन्तु इस घटना का उल्लेख करने पूर्व दो एक बातें जो इसके पूर्व की हैं यहां प्रसंगोपात्त लिख देना भी आवश्यक है । वे बातें ये ही हैं कि संवत् १७३३ में नरहरि बारहटने एक लाख मुद्रा इकट्ठी कर पंडितों की सहायता से "अवतार चरित्र" नामक ग्रंथ की भाषा काव्य में रचना की । इसकी श्लोक संख्या २४८६१ है । दूसरे इसी संवत् में आमेर नरेश रामसिंहजी ने माथुर ब्राह्मण कुलपति कवि से महाभारत के द्रोणपर्व की भाषा कविता में रचना करवाई । इसका नाम "संग्राम सार" है ।

"वंशभास्कर" में लिखा है कि दक्षिण देश में औरंगाबाद के निकट भावपुरा नामक नगर में १० वर्ष तक निवास कर हाडाराव भावसिंहजी का संवत् १७३८ की वैशाख कृष्णा ८ को स्वर्गवास होगया । इनके कुल ११ विवाह हुए थे जिनमें से औरों का तो इनकी विद्यमानता ही में देहान्त हो चुका था किन्तु छः रानी सती हुई । तीन औरंगाबाद में और तीन ही इनके शरीर छूटने की खबर पाकर बूंदी में । इनके अतिरिक्त ३२ खवासिनें और यों कुल मिलाकर ३८ रमणियों ने इनका सहगमन किया । भावसिंहजी के इस समय कोई सन्तान न होना ही पहले लिखा जा चुका है और वास्तव में था भी ऐसा ही, क्योंकि खवास का पुत्र जब पिछले कामों के लिये— राज्याधिकार के लिये कुछ काम का नहीं माना जाता तब वह गिनती में लाने योग्य भी क्यों कर कहा जासकता है परंतु एक पुत्री ऐसी ही इनके

अवश्य थी। इसका विवाह इन्होंने सीसोदिया वीरमसिंहजी के पुत्र रघुनाथ सिंहजी से करके उन्हें बूंदी में ही रख लिया था। और उन्हें उनके स्वरूप के अनुसार जागीर भी अच्छी देदी थी।

जिस तरह सूर्यमल्लजी ने हाडाराव भावसिंहजी के दक्षिण में दश वर्ष रहने के समय का कोई हाल नहीं लिखा है उसी तरह "औरंगजेबनामे" में भी इस विषय का कुछ उल्लेख नहींहै। इसलिये नहीं कहा जा सकता कि वहां रह कर उन्होंने किस २ से युद्ध किया और किस २ को जीता परंतु जब टाड साहब अपनी ऐतिहासिक शोध के सहारे से अपने लेख में इनके द्वारा दक्षिण में शांति स्थापित होने और इनकी वीरता का इशारा करते हैं और जब गत अध्याय में उद्धृत मतिराम कविराज के सातवें छन्द में भी इस बात का संकेत है तब मान लेने की इच्छा होती है कि भावसिंह जी का दक्षिण में मरहटे वीर शिवाजी से भी संग्राम हुआ होगा। और संभव है कि जो घटनायें "औरंगजेबनामे" में दक्षिणी उपद्रवों की दर्ज हैं वे भावसिंहजी की मृत्यु के बाद की। इस पुस्तक से औरंगजेब का मरहटे वीरों से जन्म भर विकल रहने का जैसे पता लगता है वैसे ही और २ इतिहास भी इसकी गवाही देते हैं; परंतु यह विषय एक अलग ग्रन्थ में लिखने योग्य है। भावसिंहजी के चरित्र से न तो इन बातों का कोई स्पष्ट रूप पर संबंध माल्म होता है और न संबंध का निश्चय करने की इस समय कोई सामग्री प्रस्तुत है।

हाडाराव भावसिंहजी का जन्म विक्रमीय संवत् १६८० में हुआ था। यह संवत् १७१९ में बूंदी के राजसिंहासन पर विराजे और अट्ठावन वर्ष की आयु में २२ वर्ष तक राज्य करके संवत् १७३८ में इन्होंने शरीर छोड दिया। इन्होंने इनके पिता शत्रुशल्य के बनाये हुए मुकुट मंदिर महल के ऊपर एक महल बनवाया। मोती महल इनके कुँवरपदेमें इन्हींके लिये बनाया गया था। बूंदी में रत्नबाग के निकट एक बाग इन्हों ने बनवाया और फूलसागर तालाब पर महल कुंड, चादर फंवारे आदि स्थान इनकी खवास

फुल्लुलता ने बनवाये। अध्यात्म दासजी की प्रेरणासे यात्रियों के लिये एक धर्मशाला, मन्दिर और बावडी बनवाई और इसको निर्माण कराने के लिये लूणकरण कायस्थ नियत कियाँ गया था उसी के नाम से यह स्थान **लूणावाय** कहलाता है। यह कविराजा सूर्यमल्लजी का मत है किन्तु मुंशी देवीप्रसादजी ने इन स्थानों के बनवाने का जो इतिहास लिखा है वह इससे कुछ भिन्न प्रकार का है। उससे मालूम होता है कि ये राव रत्नसिंहजी के बनवाये हुए हैं। इनका वर्णन इसी लिये "रत्नसिंह चरित्र" के चौदहवें अध्याय में किया गया है।

हाडाराव भावसिंहजी के चरित्र की समाप्ति करने पूर्व मुंशी देवी प्रसादजी कृत "राजपूताने की प्राचीन शोध अंक १" में लिखी हुई एक घटना यहां अवश्य उल्लेख करने योग्य है। उनके लेख का सारांश यह है कि हींडोली का हाडा श्यामदास राव शत्रुशल्यजी का खजानची था। यह बादशाही सेवा में परदेश रहते थे। एकबार इन्होंने खर्च मंगाया तो लूट मार के डर से श्याम-दास ने मेखें ठोकने के **मेखचों** को पोला करवाकर उन में **रुपये भर** कर गाडी में लाद कर भेज दिया। उसका कामदार गाडी लेकर दिल्ली गया। इसका नाम डूंगर था। वहां पहुंचने पर यह तो खाना खाने चला गया और पीछे से रावराजा ने पूंछा कि ये मेखचे कहां से आये हैं और क्यों आये हैं? किसीने कह दिया कि श्यामदास ने रुपये के बदले हमारे शिर फोडने के लिये भेज दिये हैं। राव ने क्रोध में आकर भावसिंहजी को **श्यामदास का बध** करदेने के लिये लिख दिया और पुत्र ने खबर पाते ही उसे **तोप से** उडवा भी दिया। शत्रुशल्यजी को दूसरे दिन जब इसका असली भेद मालूम हुआ तब उन्होंने श्यामदास को न मारने के लिये पुत्र के नाम लिखा भी किन्तु इस आज्ञा के पहुंचने से पहले ही पहले हुक्म की तामील हो चुकी थी।

अब इसमें देखना है कि इस दन्तकथा में सत्यता कहां तक है। सो मुंशी जी ने इसका उल्लेख करते हुए जब किसी शिला लेख का हवाला नहीं दिया है तब यह केवल सुनी सुनाई बात है, दूसरे यदि यह घटना सत्य होती तो

न इसे कभी टाड़ साहब छोडते और न कविराजा सूर्यमल्लजी जैसे बे लाग लेखक । किन्तु दोनों इतिहासों में इस बात का कहीं नाम तक नहीं । हां ! श्यामसिंहजी अवश्य मारेगये थे परंतु वह इस कारण नहीं । वह हींडोली के हाडा नहीं थे । वह शत्रुशल्यजी के हुक्म से नहीं मारे गये । राव रत्नसिंहजी के शायद भाई के नाती थे और बादशाह की आज्ञा से मारे गये थे । हां ! इस तरह की दंत कथायें बूंदी में भी प्रसिद्ध हैं किन्तु उनका कोई शिर पैर नहीं ।

खैर ! इसमें संदेह नहीं कि हाडाराव भावसिंहजीने आजीवन हिन्दू धर्म की रक्षा करने में कभी आना कानी नहीं की । यद्यपि उनको अपने पिता की तरह बावन समरों में तलवार बजाकर बावन वीर कहाने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ और न वह संग्राम भूमि में मरने मारने बाद कट मरने का अवसर पा सके किन्तु जब तक उनके शरीर में प्राण रहा उन्होंने अपनी धाक से—अपने खड्ग के बल विक्रम से बादशाह औरंगजेब जैसे हिन्दू द्वेषी सम्राट् को अपने शिर साटे की खेल कर हिन्दुओं के धर्म पर कुठार न चलाने दिया । उनके ये गुण इसी चरित्र के एक २ अक्षर से टपके पडते हैं । उन्हें उपसंहार में दुहराने की आवश्यकता नहीं । बादशाह के शामिल बैठ कर न खाना, केशवरायजी के मन्दिर की रक्षा और जलयात्रा एकादशी के विमान—ये तीनों घटनायें इन बातों को देदीप्यमान उदाहरण हैं । और इन्हीं कारणों ने दो सो वर्ष से ऊपर हो जाने पर भी उनकी दुहाई चलती है, उनका नाम लेकर लोग दूकानें खोलते हैं, न्यायालयों में उनकी गादी का पूजन होता है, उनके नाम के गंडे से तिजारी छूट जाती है, और जिसका इस संसार में यश है वह सीधा स्वर्ग को जाता है इस सिद्धान्त से वह स्वर्ग सिधार जाने पर भी जब इन गुणों के कारण " हाजिर नाजिर " समझे जाते हैं तब वह मरे नहीं जीते हैं और अनेक शताब्दियों तक जीवित रहेंगे । सच पूंछो तो चाहे सबही बूंदी नरेश स्वधर्म रक्षक हुए किन्तु रावभाव के

बराबर बूंदी के इतिहास में नहीं, राजपूताने में नहीं और भारत वर्ष के इतिहास में भी विरले ही निकलैंगे। भावसिंहजी की प्रशंसा में एक प्राचीन कवित्त फिर प्राप्त हुआ है। वह इस तरह है:—

ओरंगजेब तिन: दिननि फरेब रचि, नृपति बुलाये सब दूत भिजवाय के।
तिनतैं सुनाय उग्र वचननि हुक्म दीनो, कन्यका दै भिन्न ही रहो हो तुम आयके।
या तै मम संग खान पान अवलेहु सब, नाहीं प्राण लैंहों अब तुरत ही धायके।
भावसिंह धर्मधारि मरनो बिचारि नटे, और सब भूपति रहे हैं मौन पायके।

चौथा खंड।

अनिरुद्धसिंहचरित्र।
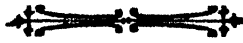
अध्याय १

वीरता की बानगी।

हाडाराव भावसिंहजी का औरंगाबाद के निकट मावपुर में शरीरान्त होजाने की खबर पाकर बूंदी राज्य के अंतर्गत बलवन के जागीरदार गोपाल सिंहजी के पुत्र दुर्जन शल्यजी को एक दुर्जनता सूझी। राज्यके असली मालिक राव्रराजा अनिरुद्ध सिंहजी को केवल पंदरह वर्ष के बालक समझ कर बूंदी का राज्य छीन लेने के लिये उनके मुंह में पानी भर आया और सो भी ऐसे समय में उनकी नीयत में फितूर आ गया जब धर्मध्वज भावसिंहजी की धर्मपत्नियां पति के परलोक गमन का संवाद पाकर प्राण-नाथ के साथ सीधी स्वर्ग में जाने के लिये धधकती हुई चिता में चढकर पतिलोक में चढजाने को क्षारबाग के लिये अपना ऐहिक सर्वस्व छोडती, लुटाती हुई जीवन सर्वस्व के समीप जा रही थीं। बलवन बूंदी की एक जागीर के स्वामी ने जब बूंदी पर मन ललचाया तो मानो उसने अपनी माता पर हाथ डालना चाहा।

जिस समय रानियां चिता पर चढ जाने के लिये महलों को, धनदौलत को, राजवैभव को, शरीर को और सर्वसुख को तिलांजलि देकर विदा हो-चुकी थीं मार्ग में ही उन्हें विदित हुआ कि दुर्जनशल्यजी इस अवसर में रक्षकों से नगर शून्य पाकर अपना दलबल लिये राज्य लोलुपता से, अपनी पाप वासना तृप्त करने की खोटी इच्छासे बूंदी के समीप आ पहुंचे हैं। शुचि सेवकों ने इस समय इन देवियों से विनय किया:—

"माता, आपका पति के सहगमन का व्रत अवश्य अमिट है। अवश्य ही आपके लिये इस समय स्वर्ग का द्वार खुला हुआ है किन्तु जब हम लोग

आपके अंतिम कार्य में दिल जान से लगे हुए हैं तब अवसर साध कर शत्रु के नगर में घुस बैठने से राज्य का, प्रजा का और परिजनों तथा परिवार का अमंगल है। इसलिये शत्रु का दमन करने के लिये केवल थोडी देर अपने पुनीत संकल्प को रोक कर हमें यदि आप अवसर देदें तो हम शीघ्र ही इन नृशंसों को मार भगाने के अनंतर आपकी सेवा में आ उपस्थित होंगे।"

"नहीं! अब हमारे कार्य में देरी होने का समय नहीं। बस, इस बालक को (अनिरुद्धसिंहजी को पास बुला कर उनकी ओर संकेत करते हुए) अपना स्वामी समझ कर काम करो।" इतना उन्हें उपदेश देकर तब पौत्र को समझाया– "बेटे, तू इन अपने जनों को सत्कार से रखियो। हमारे पास तेरे रहने की अब कोई आवश्यकता नहीं। हमने जो प्राणव्रत धारण किया है उसका निर्वाह हमारे सतीत्व की रक्षा के लिये स्वयं मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् करदेगा। तू अभी, यहांसे अपने शूर सामन्तों को लेकर उस दुरात्मा का दमन करने के लिये जा और अपने किशोर हाथों से—कोमल करों से खड्ग बजा कर संसार को दिखलादे कि बालक होने पर भी तू एक हाडा कुमार है, वीर संतान है और तुझ में कहां तक पानी है।"

जब एक साधारण से साधारण, सती की अंतिम वाणी को वेद वाक्य समझ कर उस प्रत्येक आज्ञा का पालन करने के लिये राजा से लेकर रंक तक शिर के बल तैयार रहते हैं तब इनके हुक्म की तामील होने में संशय ही क्या? दादी का वचन हृदय में अंकित कर पौत्र ने १ हजार सुभटों सहित दुर्जन शल्यजी की दुर्जनता छुडाने के लिये उसी श्मशान भूमि में से प्रयाण किया और उधर जिस समय दो पहर तक घमसान मचने के बाद लडाई से भाग कर शत्रु ने अपना जी चुराया तब इधर भावसिंहजी की तीन रानियोंने खवासों समेत आकाश का चुंबन करने वाली ज्वालाओं को छोडती हुई चिता में बैठ कर हँसते २ पति लोक को प्रयाण किया। दो पहर के संग्राम में अवश्य दोनों ओर के सैंकडों ही सुभट मारे गये किन्तु इधर का जब साहस पर साहस बढा तब शत्रु की हिम्मत ने अनीबनी के समय जवाब देदिया।

इस तरह भाव सिंहजी के अनंतर संवत् १७३८ की वैशाख शुक्ला ३ को अनिरुद्धसिंहजी बूंदी के राजसिंहासनपर विराजमान हुए। इनका पहला विवाह करौलीनरेश रत्नपालजी की बाई श्याम कुमारिजी से हुआ। दूसरा नमाना के सोलंकी सरदार यशवन्त सिंहजी की दुहिता लाडकुमरिजी से। इनकी बनवाई दो बावडियां और एक बाग आज भी विद्यमान हैं। इनमें एक बावडी जो शहर के बाहर चौगान में रानीजी की बावडी के नाम से प्रसिद्ध है बहुत बढिया बनी है। दूसरी बावडी और बाग नगर के निकट देवपुरा ग्राम में है। पहली बावडी के बनवाने में उस समय के भाव से केवल २१ हजार रुपये लगे थे जब हरएक चीज सस्ती बिका करती थी। तीसरा विवाह दक्षिण के भवानीदासजी भाटी की बेटी चंद्रकुमरिजी से, चौथा ककोड के नरूका फतहसिंहजी की पुत्री बख्त कुंवरिजी से, पांचवां झलाय के राजा बलराज सिंहजी की कुमारी राम कुमारि जी से और छठा दुबलाना के दुर्जन शल्यजी की लडकी लाडकुमरिजी से—यों छः विवाह हुए। इनमें दूसरी रानी से बुधसिंह जी और जोधसिंहजी दो महाराज कुमार और पांचवीं रानी से कुशल कुमारि तथा कल्याण कुमारि दो बाई और अमरसिंहजी, विजय सिंहजी दो महाराज कुमार हुए।

अनिरुद्ध सिंहजी ने गादी पर विराज कर अपनी अपक्ववय में ही प्रथम अपना राज्य संभाला और तब बादशाही फर्मान लाने के लिये बेणीदत्त व्यास के साथ जगभानुजी हाडा और प्रताप नागर को दिल्ली बिदा किया। बादशाह ने बूंदी का राज्य बहाल रखकर यद्यपि इन पर कृपा दिखाई किन्तु औरंगजेब ने खैराबाद और बडोद—ये दो परगने इनसे ले भी लिये। खैर! बादशाह ने जो कुछ दिया सो ही इन्होंने माथे चढाया। किन्तु भावसिंहजी के स्वर्ग को सिधार जाने से दक्षिण के मरहटे वीरों ने जब मैदान सूना पाया तब उस ओर फिर गदर मचा दिया। अपने २ दल सजकर भागनेर, बीजापुर और सतारा के अधीशों ने बादशाही राज्य छीनना आरंभ कर दिया और ऐसे ही अवसर में औरंगजेब का चौथा पुत्र अकबर अपने पिता से विद्रोह ठान शत्रुओं से जा मिला।

उस समय केवल मरहटों ने ही शिर उठाया हो सो नहीं मारवाड नरेश यशवन्तसिंहजी के मरजाने और उनकी रानी कर्मवतीजी के समर भूमि में वीरता के जौहर दिखाने बाद बालक अजित सिंहजी की रक्षा का भार जिन वीरों पर था उनमें दुर्गदासजी भाटी आदि ने भी औरंगजेब का नाक में दम कर डाला। यहां तक कि दिल्ली के निकट इनके डर से दिया जलना तक कठिन होगया। केवल इतना क्यों औरंग जेब ने जब अपने दूसरे पुत्र शाह आलम को दक्षिण की सूबेदारी पर भेजा तब बाप की घवडाहट का पता पाकर चौथे शाहजादे अकबर ने अपने बडे भाई के नाम इस प्रकार लिखा कि:—

"हमारे वालिद ने अपने वालिद बुजुर्गवार के साथ बुढापे के आलम में जैसा सुलूक किया था—सो तो आपसे छिपा है ही नहीं। मेंने इस तर्फ के राजाओं को मिला कर अपने काबू में कर लिया है। बस इनको थोडी बहुत तमा देकर आप खुद बादशाही का ताज अपने शिर पर रखिये और मुझे अपना वजीर बना लीजिये। यह सलतनत किसीके पट्टे में नहीं है। मालिक वही जिसमें ताकत हो"।

चिट्ठी पाकर शाहआलम को लालच ने आ घेरा। उसने छोटे भाई की बात पसंदकर उत्तर में बडा स्नेह दर्शाया। यह उत्तर यद्यपि शाहजादे के बडे विश्वास पात्र सेवकों के हाथ भेजा गया था किन्तु पाप का घडा शीघ्र ही फूट गया। किसी तरह शाही जासूसों को इस भेद का पता लग गया और उन्होंने तुरंत ही जाकर दिल्ली में औरंगजेब के कानों में जहर का प्याला पिला दिया। क्रोधी बादशाह वही औरंगजेब था जिसने बाप को कैद करने में और भाई भतीजों का विनाश करने में पाप की बिलकुल भी पर्वाह नहीं की थी। बस अब भी वह अपने कोप को न संभाल सका। उसने सुनते ही कूच का नकारा बजवा दिया। वह वहांसे चलकर जिस समय अजमेर पहुंचा तो उसने उदयपुर नरेश राना राजसिंहजी के पुत्र राना जयसिंहजी से कहला दिया कि—"अगर अकबर तुम्हारे राज में आजाय तो उसे रोका

देकर किसी तरह रोक लेना" रानाजी ने जब इस बात को स्वीकार कर-लिया तब बादशाह औरंगाबाद को रवाना हो गया ।

मार्ग में टोडा और राज महल के समीप बादशाह की सेवा में हाडाराव अनिरुद्धसिंहजी आकर उपस्थित हुए । पितामह भावसिंहजी की मृत्यु के समय जो उनका सामान आदि भावपुरे में था उसे जजावर के जागीरदार रूप सिंहजी इस बीच स्वामि भक्ति दिखला कर बूंदी ले आये थे । इनमें ९० हाथी, ६२० घोडे, ३०० छकडे, १५० रथ, १९० बहलियां, २७ तोपें और ९०० करांचियां थीं । बस राव राजा अनिरुद्धसिंहजी बूंदी में शुकदेवजी पुरोहित को कुलदेवी की सेवा, राज्य का प्रबंध सोलंकी किशोर सिंहजी को, कर्मचन्द बनिया को कामदारी, उदयसिंह कायस्थ को हिसाबी दफ्तर देकर और इस तरह सब काम काज का प्रबंध कर बादशाह से जा मिले । बादशाह ने इनको उसी भावपुरे में जिसमें इनके दादा रहते थे रहने की आज्ञा दी । इन्होंने औरंगजेब को हाथी घोडे इत्यादि भेट किये और वह इनपर प्रसन्न भी कम न हुआ ।

औरंगजेब के पहुंचते ही उसके आतंक से उस प्रान्त में खलमली मच गई । बादशाह ने जब अपने पुत्र शाह आलम को पकडवा कर औरंगाबाद में कैद करवा दिया तब शिवाजी के पुत्र संभाजी ने अकबर को निकाल दिया और ऐसे वह भागकर जब तक ईरान न पहुंच गया उसे कोई भी शरण देकर टिकाने वाला तक न मिला । यों दो भाइयों के नसीब का ऐसा फैसला होता देख औरंगजेब के तीसरे पुत्र आजम के मुंह में दिल्ली की बादशाहत पाने के लिये पानी भर आया । इस तरह दक्षिण का दमन बिना प्रयास के होजाने पर बादशाह ने खानदेश की सूबेदारी का चार्ज अनिरुद्धसिंहजी और नव्वाब मुनव्वरखां को देकर आजम की निगरानी का भार भी इन्हीं पर डाल दिया ।

इन्होंने वहां रहकर क्या २ बहादुरी दिखाई सो ऊपरकी घटनाओं के सिलसिले में "वंश भास्कर" से लिखने पूर्व " टाड राजस्थान" से [illegible]

अनिरुद्धसिंहजी के चरित्र का कुछ दिग्दर्शन करा देना अच्छा होगा। कर्नल टाड साहब लिखते हैं कि:—

"अनिरुद्ध का गद्दी पर बैठना बादशाह ने भी स्वीकार किया। उसके पूर्व पुरुष की प्रतिष्ठा का द्योतन करने के लिये उसने अपना हाथी गजगौर और राज्य सिंहासन देने के उपलक्ष्य में राजा के पास खिलअत भेजा। अनिरुद्ध औरंगजेब के साथ दक्षिणके युद्धों में संयुक्त हुआ। एक अवसर पर उसने शत्रुओं के हाथ से जनाने की बेगमों की रक्षा कर बहुत ही बडा काम किया। बादशाह ने उसकी वीरता की सनद में उससे कहा कि—"तुम ही अपनी इनाम मांग लो।" इस पर राजा ने केवल यही मांगा कि मुझ को संग्राम के समय सेना के पिछले भाग में रहने के बदले हरावल में लडने की आज्ञा दी जाय। फिर बीजापुर के घेरे और विजय करने में उसने बहुत नाम पाया।"

जब "औरंगजेब नामा" बादशाह के चरित्र की संक्षिप्त सूची होने से उसमें इस चढाई के साथ रावराजा अनिरुद्ध सिंहजी के नाम का उल्लेख नहीं है तब इस विषय की, और २ घटनाओं का मिलान करने से मुझे कुछ मतलब नहीं है। हां टाड साहब का लेख बहुत ही संक्षिप्त होने पर भी जब उससे भली प्रकार से बूंदी के इतिहास का अनुमोदन होता है तब यहां ऊपर की घटनाओं का थोडा विस्तार कर देना आवश्यक है। इसके लिये "वंशभास्कर" में जो कुछ लिखा गया है उसका मतलब यह है।

औरंगजेब ने दक्षिण में जाकर स्वयं सिकंदर को पकड कर बीजापुर का विजय किया, तानाशाह को पकड भागनेर लिया, और तीसरे युद्ध में संभाजी को पकड लिया। सूर्यमल्लजी ने सुना है कि बादशाह ने संभाजी की आंखें निकलवा ली थीं। परंतु जब तक इस बात का निर्णय मराठी इतिहासों से न कर लिया जाय इसे सत्य मानने की इच्छा नहीं होती। अस्तु! उन तीनों को दौलताबाद में कैद कर उनकी निगरानी पर मुरव्वत खां को नियत कर दिया। बादशाह का पांचवां पुत्र खानबख्श किसी रंडी के पेट से पैदा हुआ था—उसे दक्षिण प्रदेश का अधिकार दे

दिया तब वह भी दिल्ली का सिंहासन पाने के स्वप्न देखने लगा। इस अवसर में औरंगजेब को खबर मिली कि संभाजी के सामंत आनंदराव बारह हजार सेना सज कर सितारा की ओर शाही सीमा को दबा रहे हैं तब उसने हाडाराव अनिरुद्ध सिंहजी और मुनव्वर खां नव्वाब—इन दोनों को सेना सहित उससे लडने के लिये भेजा। उस समय बूंदी नरेश की उमर केवल १६ वर्ष की थी। इन्होंने बुरहानपुर लूट कर कुमारी गांव तक शाही झंडा जा फहराया। इन्होंने सितारा की सेना का दमन कर खूब ही तलवार बजाई। विजय इनकी हुई। मराठी सेना भाग गई। इस संग्राम में रावराजा ने जितना पराक्रम दिखलाया उतना यवन सेना ने नहीं। दूसरा युद्ध शिवापुर, कालोचा के समीप हुआ और तीसरा बीजापुर के पास। इन तीनों में विजय प्राप्त करने पर बादशाह अनिरुद्ध सिंहजी की वीरता से बहुत प्रसन्न हुआ। और इस लिये उसने चौथी बार शाहजादे आजम के साथ इनको फिर आनंद राव से लडने के लिये भेजा। इस समय इन्होंने लडाई के मैदान में जो वीरता दिखाई सो तो दिखाई ही किन्तु एक घटना ऐसी होगई जिससे हाडाराव ने औरंगजेब को, उसके पुत्र आजम को और पुत्र वधू को अपने अहसान के बोझे से दबा लिया। घटना इस तरह हुई कि औरंगजेब के बडे भाई दारा शिकोह की लडकी बादशाह के इसी पुत्र आजम को विवाही थी। यह बेगम इस लडाई के समय सेना में शाहजादा के साथ थी। अवसर पाकर मरहटे वीर इस बेगम को पकड लेगये। शाहजादे ने रावराजा पर विश्वास करके बेगम को छुडा लाने के लिये इन्हीं को भेजा। इन्होंने मरहटों को युद्ध के घमसान में हरा कर बेगम को छुडा लिया। इस समर में एक तीर और दो तलवारें इनके लगीं भी किन्तु घायल सिंह जिस तरह दूना पराक्रम दिखाता है उसी तरह घबराने के बदले इनका रणोत्साह अधिक २ बढा। युद्ध में अवश्य दोनों ओर के अनेक सुभट मारे गये किन्तु विजयश्री अनिरुद्धसिंह-जी के चरणों में जा लेटी। इस उपकार से प्रसन्न होकर शाहजादे ने इनको

छाती से लगा लिया । बेगम ने भी इनकी बहुत ही प्रशंसा की। और कहा कि—" यदि यह न जाते तो आज मेरी इज्जत और मेरी जान जाने में शुबह नहीं था।"

शाहजादे ने इनकी इस तरह प्रशंसा लिख कर बादशाह के पास भेजी और उसमें इनका असाधारण सत्कार कर उत्साह बढाने की शिफारिश की। औरंगजेब भी इनकी इस सेवा से बहुत प्रसन्न हुआ और इनको मऊ, बारां, खैराबाद, चाचुरनी, खेडी, और बडोद के परगने उपहार में देने के अतिरिक्त वस्त्र, शस्त्र, आभूषण, हाथी, घोडे और वैभव दिया । और इनके नाम फर्मान भेज कर इनके गुणों का कीर्तन करते हुए भाव सिंहजी का गया हुआ मनसब फिर देदेने का प्रण किया । यह घटना उस समय की है जब इनकी उमर केवल १६ वर्ष की थी । ऐसी कच्ची उमर में आज कल के लडके अच्छी तरह धोती भी नहीं संभाल सकते हैं किन्तु यह एक राजा के कुमार थे, इनके बाप, दादे, परदादे और पूर्व पुरुष बडे २ पराक्रम दिखा २ कर वीर गति को प्राप्त हो चुके थे । इस कारण कहना चाहिये कि इस घटना ने उस समय के लोगों के मन पर यह अवश्य अंकित कर दिया होगा कि यह बालक होने पर भी बडा होनहार है, लडका होने पर भी सिंह शावक है, खल शालक है।

अस्तु ! दक्षिण में इन्होंने जो बहादुरियां की उनका जिस तरह दिग्दर्शन टाड साहब के "राजस्थान" से होगया उसी तरह बूंदी के इतिहास से होगया । दोनों का आशय एक ही है । संक्षेप विस्तार का अन्तर अवश्य है । है तो हो किन्तु जिस समय यह अपनी कच्ची उमर में वीरता की बानगी दिखाने में उस ओर लगे हुए थे बूंदी में इनके शत्रुओं ने फिर जोर पकडा । जोर भी साधारण नहीं । यहां के प्रधान कर्मचारियों को फोड कर दुर्जन शल्यजी ने फिर बूंदी छीन लेने का उद्योग किया । उद्योग क्या किया इस बार उन्हें सफलता भी हुई । इसबार दुर्जन दुर्जन शल्यजी को भजनेरी के शासक विश्वनाथ कायस्थ और सांदडी के जागीरदार फतेचंद के पुत्र ने भी

साथ देकर अपने स्वामिद्रोह—नमक हरामी करने की बानगी दिखाई । इनके पत्र मरहटों के नाम और मरहटों के उनके नाम जिनमें स्पष्ट रूप पर इनकी पाप वासना झलक—नहीं उबल २ कर गिर रही थी, पकडे गये और इसलिये दोनों की जागीरें छीन लेने की आज्ञा जब अनिरुद्धसिंहजी ने दक्षिण से भेजी तब ये दोनो यहां से भाग गये ।

इसके अनंतर क्या हुआ सो आगामि अध्याय में पाठक महाशय पढने की कृपा करें । उसीसे माळूम होगा कि किस तरह अनिरुद्ध सिंहजी का फिर बूंदी पर अधिकार हुआ ।

अध्याय २.

बूंदी पर अधिकार ।

कर्नेल टाड साहब ने अपनी किताब "राजस्थान" में लिखा है कि— "बूंदी के मुख्य जागीरदार दुर्जनसिंह से दुर्भाग्य वश एक झगडा खडा होगया जिससे राव (अनिरुद्धसिंहजी) को कष्ट उठाना पडा । कुछ खोटी बातों के इजहार के साथ राव ने उत्तर दिया कि—"हां ! मैं जानता हूं कि तुम हमारे साथ कैसा सुलूक करोगे ।" जिससे दुर्जनसिंह ने समझ लिया कि हमारा परस्परका संबन्ध कुत्तों के डाल दिया गया । बस इसलिये वह इनकी सेना को छोड कर अपनी जागीर में आ गया । यहां आकर उसने अपने भाई बेटों को इकट्ठा किया और छलबात से बूंदी पर अपना अधिकार कर लिया । खबर पाकर बादशाह ने सेना सहित अनिरुद्ध को बूंदी पर फिर स्थापित किया और तब दुर्जनसिंह को निकाल कर उसकी जागीर भी छीन ली गई । दुर्जन ने बूंदी लेकर अपने भाई को बलवन का टीका कर दिया था ।"

इस विषयमें "औरंगजेबनामे" में जो कुछ लिखा गया है उसका आशय यह है कि "वैशाख सु. ६ को बादशाह की हुजूर में अर्ज हुई कि दुर्जन-सिंह हाडा ने बूंदी घेर ली और ले ली । मुगलखां ने दुर्जनसिंह के निकालने की कमर बांधी । माधसिंह हाडा के पोते अनिरुद्धसिंह को बूंदी जाने

की रुखसत हुई । खिलअत, घोडा, हाथी, नक्कारा और नौबत मिली। भादों सुदी १ को मुगलखां की अर्जी पहुंची कि हमने बूंदी पर धावा करके तीन पहर तक तीर और बंदूकों के गोले बरसाये । दुर्जनसिंह रात को भाग गया । अनिरुद्ध अपनी जमइयत और बादशाही बंदों के साथ बूंदी में दाख़िल हुआ । ”

अब देखना चाहिये कि इस घटना का उल्लेख "वंशभास्कर" में किस तरह किया गया है । उसका सार यह है कि संवत् १७४० में इन दुर्जन-सिंहजी ने विश्वनाथ को मिलाकर विष्णुसिंहजी के नाती बलभद्रसिंहजी को भी फोड लिया । फोडा अवश्य किन्तु जब दक्षिण से अनिरुद्धसिंहजी का इनपर कोप होने की खबर मिली तब यह बलभद्रसिंहजी तो भाग कर उदय-पुर चले गये और औरों को यहां से निकाल दिया गया । निकाल देने का दंड पडने पर भी इन लोगों के मन से बूंदी लेनेकी अभिलाषा निकली नहीं । और अवसर देखकर दुर्जनसिंह ने १०० सवारों और १ हजार सैनिकों से वैशाख कृष्ण ४ को केवल दो दिन के संग्राम में नाथावत किशोरसिंहजी को हराकर बूंदी में प्रवेश किया । पहर भर तक इन्होंने शहर में खूब लूट मार करके तब राजसिंहासन पर बैठने की साद भी मेट ली । इस तरह सिंहासन पर बैठ कर अपने शिर पर छत्र, चामर डुलाकर इन्होंने जन्मपत्री की विधि अवश्य पूरी करली किन्तु कुलपति से, देशपति से और राज्यपति से "हरामखोरी" कर अपने ललाट पर कलंक का काला टीका भी लगा लिया । यदि राज्य ही लेने का लालच था तो यह तलवार बजा कर और जगह अपना राज्य स्थापित कर सकते थे क्योंकि इसके लिये वह समय अनुकूल था किन्तु बूंदी राज्य के कर्मसिंह क्षत्रिय, उदयसिंह कायस्थ, व्यास विश्वनाथ और हरिवल्लभ को जेलमें डाल कर इन्होंने महलों में से उस जनाने को निकाल देने की आज्ञा दी जिसमें इनकी कोई दादी, कोई मा और कोई बहन थी तब अवश्य इन्होंने केवल कलंक का टीका ही न लगवाया बरन सच पूछो तो इन्होंने वह काम किया जो एक नीचातिनीच से, नृशंस से होने के योग्य था । पुरोहित

शुकदेव ने इनको इस काम से बहुत रोका किन्तु शायद इन्हें ऐसा नीच काम करके उसी तरह भय होगया था जिसतरह एक खून करने वाले को हो जाया करता है। बस इसीलिये बूंदी के राजमहल से निकाल कर इन्होंने समस्त राज माताओं को, रानियों को केशवराय की पाटन भेज दिया।

जब इस बात की खबर दक्षिग में अनिरुद्धसिंहजी के पास पहुंची तब उन्होंने शाहजादा आजम से कह कर बादशाह को लिखवाया, स्वयं भी प्रार्थना पत्र भेजा और बेगम ने भी श्वसुर के नाम लिखवाया। औरंगजेब इनकी सेवाओं से बहुत प्रसन्न था इसलिये तुरंत ही उसने आज्ञा देदी कि दुर्जनसिंह पर चढाई की जाय। इनको बंदी जाने की छुट्टी दी गई और साथ में इनकी सहायता के लिये वनहडा (उदयपुर) के अधीश भीमसिंह जी एक गौड सरदार, और मुगलखां-ये तीन सरदार भेजे। आजम की बेगम भी इनके उपकारों को अभीतक भूली नहीं थी इसलिये इसने पति पर दबाव डाल कर दक्षिण से भी कितनीक सेना भिजवाई।

जब इनका संयुक्त दल दक्षिग से चल कर कोटे पहुंचा तो यहां पर एक भयंकर घटना होगई। बात यह कि सूबादार के साथियों ने एक मोर इस जगह मार डाला। गाय और मोर का बध अब भी हाडाओं के राज्यों में वर्जित है। अब भी गवर्नमेंट ने आज्ञा दे रक्खी है कि इन राज्यों में कोई ऐसा काम न करने पावे। मोर के मारे जाने से छत्रसिंह जी हाडा को जो हृदय नारायणजी के परपोते थे जोश आगया। उनके नौकरने उसी क्षण उस मयूर घातक को काट कर टुकडे २ कर डाले। सूबेदार ने इसपर हुक्म दे दिया कि उस हाडा के डेरे घेर कर तोपों से उडा दो। तुरंत ही इस की तामील हुई। सुनते ही अनिरुद्धसिंहजी ने सोचा। काम बनते २ बिगडनेका अवसर आगया। बस यह खड्ग उठाये युद्ध के बीच जा खडे हुए। इन्होंने बीच में पहुंचकर बीच बचाव किया। इस तरह झगडा रोक कर इन्होंने तब सूबेदार से कहा:-

"दुरजनजी और भोजजी की कराई हुई शर्तों का पालन अभी तक बादशाह करते आये हैं। यह बात आपसे छिपी नहीं है। यदि आप इसे

मार डालने में ही अपना हित समझते हों तो यहां लोथों पर लोथों के ढेर के ढेर लग जायंगे । इसलिये आप मुसलमानों को लडनेसे रोक दीजिये । यदि आप चाहेंगे तो हम घातक को पकड कर हाजिर कर देंगे ।"

इस पर मुगलखां राजी होगया । तब हाडाराव ने छत्रसिंहजी को अपने साथ लाकर उससे मिला दिया और कह दिया कि--"मोर के मारने वाले का घातक अपने प्राण लेकर भाग गया है । जब कभी वह हाडौती में आवेगा तब ही पकड कर पेश कर दिया जायगा ।" बस इस प्रकार झगडे की अनी टल गई और दूसरे ही दिन इन्होंने कोटे से चलकर बूंदी घेर ली । मुगलखां की मुगल सेना में मिल कर इन्होंने एक तोप पूर्व के पहाड पर चढाकर किले पर मारना आरम्भ किया, दूसरी से चोबुर्जा तोडा और तब डोबरे के मार्ग से किले को तोडकर यह भीतर पैठ गये । इस तरह अनिरुद्धसिंहजी का राज्य फिर स्थापित होगया और भाद्र कृष्ण ४ को दुर्जन सिंहजी भाग छूटे ।

अवश्य ही बूंदी के किले पर तोपें दागना अपने ही शरीर पर शस्त्रों का आघात करना था क्योंकि बूंदी इनकी और यह बूंदी के किन्तु जब शरीर का फोडा चिराने के लिये शस्त्र का प्रयोग करना पडता है तब नृशंस दुर्जनसिंहजी फोडे से किसी तरह कम नहीं थे । अस्तु ! इन्होंने यहां शांति स्थापित कर अच्छी पहुनई के बाद अपनी सहायता के लिये आये हुए सरदारों को और सेना को बिदा कर दिया और तब यह राजकाज में लग गये । परंतु जो फोडा चीरने से एक जगह का विकार निकल आरोग्य हो गया उसीने रोग का समूल नाश न होने से दूसरी जगह फिर जोर बांधा । दुर्जन दुर्जनसिंह जी बूंदी से निकाले जाने पर मऊ परगने के कितने ही गांव लूटते हुए डकैत भीमाभील से जा मिले । दोनों ने छः पहर की लडाई के बाद चाचुरनी पर अपना अधिकार कर लिया ।

इस बातकी खबर पाकर इन्होंने संवत् १७४१ की चैत्रशुक्ला १० को राजधानी से कूच किया । मालाणी जुझारसिंहजी के पुत्र जयसिंहजी ने

बडौद परगने का बहुतसा धन लूट कर कोटरे में अपना अड्डा जमा लिया था। बूंदी से निकल कर पहला काम इन्होंने यह किया कि युद्ध में उनको भगा कर उनका गांव छीन लिया। और तब धावा मार कर एक ही दिन में चाचुरनी पर अपना झंडा जा गाडा। भीमा भील और दुर्जन सिंहजी वहां से भाग छुटे। ऐसे अपने राज्यके इस विभाग को निष्कंटक कर यह उज्जैन में अपने मित्र मालवे के सूबेदार मुगलखां और बहादुरखां से जा मिले। परंतु दुर्जन सिंहजी को अब भी कल न पडी। उधर से भाग कर वह लाखेरी के दरे में आ निकले । यहां आकर नगर के रक्षक कोतवाल को उन्होंने रात्रि के समय धोके से मार डाला । और तब इन्हें कुशल सिंहजी के साथ ३०० सुभट भेज कर फिर चढाई करानी पडी। सिलहदार ने उनका इस तरह पीछा पकडा कि दम भर भी कहीं दम न लेने दिया। जैसे दिन रात के चौबीस घंटों में छाया आदमी का पीछा नहीं छोडती है। जहां जाइये वहीं साथ। वैसे ही वह उनके पीछे लगा रहा। और इस भाग दौड में उनके धाभाई के हाथ की भूल से गोली लगकर दुर्जनसिंहजी की दुर्जनता का वहां ही अंत होगया। वह इसतरह मरगये और तब से इनका नाम भी किसीने न लिया।

अवश्य उनकी जीवन लीला इसप्रकार से समाप्त हुई और मालिक की नमक हरामी करने का बदला भी उन्हें मिला ही किन्तु दयार्द्रचित्त अनिरुद्ध सिंहजी ने दुर्जनसिंहजी की दुष्टता पर बिलकुल लक्ष्य न देकर उनके शरणागत भाइयों का उपकार किया। जब उनके दो भाइयों ने इनकी सेवा में उपस्थित होकर क्षमा मांगी तब इन्होंने सूबेदार से उनकी शिफारिश की और तब वह बोला--

"बेशक, जिस शख्श ने अपने खानदान को भुला कर आपका नमक लजाया था वह हराम खोर दुर्जन मर चुका। अब ये दोनों आपकी शरण में आगये तो इन्हें खाने पहनने को जरूर देना वाजिब हैं।"

इसपर इन्होंने उन दोनों को साथ लिया और बूंगेर में भगवन्तसिंहजी तथा कृष्णसिंहजी के चौरों का पूजन कर लाखेरी में उस कोतवाल के पुत्र

को पिता के अधिकार दे, दुर्जनसिंहजी के भाइयों को समीवी के निकट टोडा, रायधर का खेडा और लाखेरी के निकट दोलाडा गांव दिया और ऐसे संवत् १७४२ की चैत्र शुक्ल १ को राजधानी में प्रवेश किया। और इस तरह एक कांटा उखडने के साथ ही राज्य निष्कंटक होगया। दुर्जनसिंहजी के साथी और २ कांटों का क्या हुआ सो इतिहास से पता नहीं लगता और न ऐसी छोटी मोटी बातों को लिखने की कुछ आवश्यकता है।

हां ! यहां इतना जतला देना आवश्यक है कि इनके चार कुमार और दो बाईयों में से केवल दो महाराज कुमार बुधसिंहजी और जोधसिंहजी जीवित रहे।

अध्याय ३.

चरित्र की समाप्ति।

कथा का सिलसिला आगे चलाने पूर्व यहां एक बात ऐसी भी लिखदेने योग्य है जिसका संबंध भारतवर्ष के वर्तमान इतिहास से है। "वंशभास्कर" में लिखा है कि संवत् १७४४ में अथवा कितने ही लोगों के मतसे संवत् १७५६ में नीतिनिपुण अंगरेजों ने औरंगजेब की आज्ञा लेकर बंगाल के मुसलमान सूबेदार से मिलमिलाकर कलकत्ता, गोविन्दपुर और छोटानटी-- ये तीन गांव खरीद कर लिये। इन्हींसे मिलकर आजकल्ह का कलकत्ता आबाद हुआ है। उस समय कलकत्ते में केवल ७० झोपडियां थीं। उन्होंने नगर बसाकर दुनियां भरके व्यापार का, भारत के साम्राज्य का उसे केन्द्र बनाया और अपनी रक्षा के लिये फोर्ट विलियम किला भी बनवा लिया।

अस्तु! संवत् १७४५ में जब रावराजा अनिरुद्धसिंहजी केशवरायजी की पाटन में निवास करते थे सिनसिनी और शिवगिरी के जाटों ने लूटमार मचाकर प्रजा को, शाहीकर्मचारियों को और सैनिकों को तंग करडाला। इसकी पुकार जब बादशाह के कानों पर पडी तो उसने अपने पुत्र आजम को आज्ञा देकर अपने पौत्र को जाटों का दमन करने के लिये नियत किया। आजम एकबार अपनी बेगम की इज्जत बचाने में इनकी वीरता की

खानगी अच्छी तरह देख चुकाथा। इस कारण इनको भी इस अवसर पर याद किया गया। बादशाह के नाती ने रावराजा को संग्राम में संयुक्त होने के लिये संदेशा भेजा। खबर पाते ही अनिरुद्धसिंहजी पाटन से उसका साथ देने के लिये बिदा भी हुए किन्तु तब गणगौरी के त्यौहार में केवल दो दिन शेष रहगये थे। यह त्यौहार राजपूताने में, राजपूत जाति में और राजपूत नरेशों में बहुत बडा त्यौहार माना जाता है। अनेक पति अपनी २ पत्नियों की विरहाग्नि शान्त करने के लिये—भगवान पंचशायक कामदेव की आराधना करने के लिये परदेश से दौड २कर—हजार काम छोडकर आते हैं तब बूंदी के सुभट सामन्तों ने दो दिन की देरी होजाने से कुछ हर्ज न समझकर ही इनको इस उत्सव पर बूंदी पधारजाने की सलाह दी तो कुछ अनुचित नहीं किया। बूंदी में उत्सव के दो दिन बिताकर यह चैत्र शुक्ला ५ संवत् १७४६ में यहांसे बिदा हुए और इन दो दिनों की कसर निकाल कर शीघ्र पहुंचजाने में भी इन्होंने कुछ कसर नहीं की किन्तु होनहार प्रबल है। इनके पहुंचने पहले ही जग का रंग बिगड चुका था। शाहजादे की हार पर हार होती जाती थी। इन्होंने समझ लिया कि अब हमारे ठहरने से भी मरमिटने के सिवाय कोई लाभ नहीं है। इस कारण यह वहां ठहरना उचित न समझकर वापिस चले आये। अच्छा इसमें ही था कि यह वहां रहते और युद्ध में संयुक्त भी होते किन्तु राजा एक मतवाले हाथी के समान है। उसे महावत जिस सांचे में ढालना चाहता है उसीमें डाल देता है। बस इसी तरह इनके अनेक साथियों ने इनको जैसी सलाह दी उसीके अनुसार इन्होंने कार्य किया।

कुछ भी हो परंतु फल इसका बिलकुल विपरीत हुआ। शाहजादा की माता की इन्होंने एक समय इज्जत बचाई थी, प्राणों की रक्षा की थी और उसे दीन दुनियां में अपना मुंह उजला रखने के लिये योग्य रक्खा था। गाढी भीड के समय बेगम इनके ऐसे भारी २ उपकारों को भूलगई, उसका बेटा भूलगया और उसने अपनी माता की लाज रखने वाले अनिरुद्धसिंहजी की दादा औरंगजेब की सेवा में शिकायत लिखी। बादशाह ने इनपर

कोप करके इनसे पाटन का परगना ले लिया और इतने पर भी जब उसे संतोष न हुआ तब इन पर दबाव डालकर-पूरा जोर देकर इन्हें काबुल की ओर अटक नदी के पार भेजकर इनके पूर्वपुरुषों की प्रतिज्ञा का भंग करवाया। वहां ही इनका स्वर्गवास हुआ।

ऊपर जो कुछ लिखा गया है वह "वंशभास्कर" के लेख का सारांश है। "वंशप्रकाश" में भी इसी तरह की घटना का उल्लेख है किन्तु जब इस विषय को "टाड राजस्थान" में देखा जाय तो यह बिलकुल मिथ्या मालूम होती है। यद्यपि बूंदी के इतिहास से जाना जाता है कि रावराजा अनिरुद्ध-सिंहजी के चले आने बाद कोटावालों की सहायता से शाहजादे की जीत हुई और इसीके उपलक्ष्य में औरंगजेब ने पाटन का परगना इनसे लेकर उनको देदिया किन्तु टाड साहब के मत से ये सब बातें कपोलकल्पना सी झलकती हैं। उसमें लिखा है किः-

"बूंदी में अमन होजाने के अनंतर राव (अनिरुद्ध सिंहजी) और आमेरनरेश विष्णुसिंहजी उत्तर भारत के शाहीराज्य में शान्ति स्थापन करने के लिये नियुक्त किये गये। यह सूबा शाहजादा शाह आलम के अधिकार में था। इसकी राजधानी लाहोर थी। इस तरह कर्तव्य पालन करते हुए राव का देहान्त हुआ।"

पाठकों ने देख लिया कि न तो इसमें जाटों की लडाई में से अनिरुद्धसिंहजी के चले आने का उल्लेख है और न अपने पूर्वपुरुषों की प्रतिज्ञा के भंग कर काबुल चलेजाने की चर्चा है। टाड साहब अपने इतिहास में जब कई वार राव सुरजनजी की प्रतिज्ञाओं पर जोर देचुके हैं तब यह कभी संभव नहीं कि वह ऐसी बातें मालूम होने पर भी न लिखते अथवा जान बूझकर छोड जाते। ऐसी दशा में यदि कोई "वंशभास्कर" की घटनाओं पर संदेह करना चाहे तो कर सकता है परंतु इधर सूर्यमलजी भी ऐसे व्यक्ति नहीं थे जो बिना किसी बात का पूरा पता पाये यों ही लिख मारें। हां यह एक विचारणीय बात अवश्य है।

"वंशभास्कर" के मत से इनका देहान्त संवत् १७९२ में आषाढ कृष्ण २ को पांच वर्ष तक काबुल में निवास करनेके अनंतर होगया। इनका दाहादिकर्म वहां कर इनकी रानी और खवासिनें जो इनके साथ थीं बूंदी लाई गईं। बूँदी आनेके अनंतर इनकी पांच रानियां और तीस खवासिनें सती हुईं।

इनका स्वर्गवास होने के बाद इनके दो महाराजकुमार बुधसिंहजी और जोधसिंहजी में से बडे बुधसिंहजी गद्दीपर विराजे। इनके शासन में बूंदी कैसे बढी और क्यों कर इसका ह्रास हुआ। इन्होंने कैसे २ पराक्रम दिखाकर नाम और इनाम पाया और दुर्भाग्य वश कैसे इनके हाथ से बूंदी छूटगई। फिर छूटी हुई बूंदी किस उद्योग से, किस साहस से और किस पराक्रम से इनके पुत्र उम्मेदसिंहजी ने प्राप्त की। सो सब बातें मेरे ही बनाये "उम्मेदसिंहचरित्र" में अथ से लेकर इति तक लिखी हुई है। यह ग्रंथ मेरी इस पोथी का मानो आगामि भाग है। पहले इसे पढकर फिर उसे पढने से रावरत्नसिंहजी से लेकर महाराव राजा विष्णुसिंहजी तक का पूरा इतिहास मिल जायगा।

अध्याय ४.

औरंगजेब का परिणाम।

इस पुस्तक के प्रथम खंड में रावरत्नसिंहजी का, दूसरे में रावराजा शत्रुशल्यजी का, तीसरे में रावराजा भावसिंहजी का और चौथे के तीसरे अध्याय तक रावराजा अनिरुद्धसिंहजी का चरित्र लिखकर एक तरह पोथी ही समाप्त कर दी गई। इन चारों बूंदी नरेशों का चरित्र अवश्य संपूर्ण हो गया परंतु जब इस ग्रंथ में प्रसंगोपात्त इनके सम सामयिक बादशाह जहांगीर और शाहजहां के जीवनचरित्र का दिग्दर्शन कराया गया है और जब समय २ पर बादशाह औरंगजेब की जीवनी का भी उल्लेख किया गया है तब उसके चरित्र की मोटी २ बातें लिखे बिना यदि पाठक महाशय इस पुस्तक को अधूरी समझ लें तो उनकी समझ अनुचित नहीं कही जा सकती।

इस विषय में बूंदी का इतिहास लिखते समय टाड साहब ने जो कुछ शत्रुशल्यजी, भावसिंहजी और अनिरुद्धसिंहजी के चरित्र में प्रसंग आ पडने पर लिखा है उसका उल्लेख गत अध्यायों में कर दिया गया। वह अपने बनाये "टाडराजस्थान" में महाराव राजा बुधसिंहजी का चरित्र आरंभ करते हुए लिखते हैं कि:—

"अनिरुद्ध (सिंहजी) दो पुत्र बुधसिंह (जी) और जोधसिंह (जी) को छोड कर चल बसे। पिता की प्रतिष्ठा और सेवा बुधसिंहजी को प्राप्त हुई। शीघ्र ही औरंगजेब जो अब औरंगाबाद में निवास करता था, बीमार होगया। उसकी मृत्यु निकट आजाना समझ कर बादशाहत के अफसरों और उमरावों ने उससे निवेदन किया कि—"आपके उत्तराधिकारी का भी अब नाम प्रकाशित कर दीजिये" मृत्यु शय्या पर पडे हुए औरंगजेब ने उत्तर दिया—"यह बात परमेश्वर के हाथ में है। उसीकी इच्छा से और उसीकी आज्ञा का अनुवर्ती होकर मैं चाहता हूँ कि मेरा उत्तराधिकारी बहादुर शाह शाहआलम हो किन्तु खयाल मेरा यह है कि शाहजादा अजीम अपने दलबल की शक्ति से स्वयं सिंहासन पर आरूढ होने का उद्योग करेगा।" घटना वैसी ही हुई जैसा बादशाह ने कह दिया था। दक्षिण की सेना अजीम की सहायक हुई और धौलपुर के मैदान में इन दोनों भाइयों का जंग हुआ।"

इसके अनंतर क्या हुआ सो मेरे बनाये "उम्मेद सिंह चरित्र" के दूसरे खंड में सविस्तर लिखा गया है। जब औरंगजेब मरही चुका तब उन बातों से न तो उसके चारित्र का कुछ संबंध रहा और न इस ग्रंथ का। हां! इस बादशाह के विषय में कविराजा सूर्यमलजी ने अपने बनाये "वंशभास्कर" के बुधसिंह चारित्र में जो कुछ लिखा है उसका संक्षेप इस तरह पर है।

दिल्ली का स्वामी बादशाह औरंगजेब भारतवर्ष के पूर्व, उत्तर और पश्चिम इन तीनों भागों में एक छत्र राज्य करता था। अब दक्षिण देश का दमन करने के लिये उसने औरंगाबाद में निवास किया। वहां कितने ही वर्ष रहकर कितने ही शत्रुओं का राज्य छीना और—

"हाजरि समस्त हिन्दुन तुरक जोन, अवर दिस मुकल्यो।
तुरकान तहर जालम जहर लोपि लहर काहुन झल्यो।"

इस पद्य का अर्थ अवश्य ही स्पष्ट है किन्तु इससे अथवा जिस जगह पर यह लिखा गया है वहांके कथा प्रसंग से यह नहीं विदित होता कि हिन्दुओं और मुसलमानों की हाजिरी में किस शत्रु को अन्य दिशा में भेजा गया। हाँ! इतना स्पष्ट है कि उस समय औरंगजेब का आतंक अप्रतिम था। अथवा उसके तहर (आतंक) के जालिम जहर को कोई लोपकर--न मानकर उस जहर की लहर को नहीं झेल सकता था--सहन नहीं कर सकता था। उसके आतंक का स्वरूप दिखाने के लिये ही मैंने इस जगह यह पद्य उद्धृत किया है।

अस्तु! बादशाह के पांच पुत्र थे। सुलतान मुहम्मद, शाह आलम, आजम (तिसे टाड-साहबने अजीम लिखा है) अकबर और कामबख्श। उसने इनमें से पहले दोनों को कैद कर दिया था। सुलतान महम्मद जेल की भीषण यातना भोगते २ वहीं मर गया। शाहआलम को प्राण धारण कर बहादुर शाह के नाम से भारतवर्ष की बादशाहत करना था इसलिये घोर संकट सहने पर भी उसकी जान न निकली किन्तु पापी बाप ने प्यारे बेटों को कष्ट पहुंचाने में किसी प्रकार की कमी नहीं रक्खी। कैद ही कैद में उनके बाल पक गये। दीन दुःखियाओं से बढकर इनका अपमान किया गया। साल भर के तीनसौ साठ दिनों में पहनने के लिये इन शाहजादों को जो जन्म से अमीरी में पले थे, जिनके खाने पहनने के लिये लाखों रुपये खर्च होते थे उन्हीं को केवल एक दगला दिया जाया करताथा। एक बार इन्होंने वह दगला फट जानेसे, मैला होकर उसमें दुर्गंधि आने से अथवा जुएँ पडजाने से घोर कष्ट पाकर दूसरा दगला पाने के लिये अर्जी भेजकर कृपा की भिक्षा मांगी किन्तु क्रूर पिता को किंचित् भी दया न आई। उसने अपने पाषाण--नहीं २ वज्र हृदय से कह दिया कि--"नहीं! दगला दूसरा नहीं मिलेगा। उसी एक को उलट कर पहन लो।" किसी समय इन्हें खाने के लिये न मालूम किस प्रकार से सरदा मिल

गया । इस फल को तराशने के लिये इन्होंने चाकू मांगा परंतु छुरी के बदले इन्हें उत्तर मिला—"छुरी नहीं मिल सकती । शिर में देकर फोड लो ।"

ऐसे ज्येष्ठ कुमार के बंदीगृह में मरजाने और द्वितीय कुमार के कैद में पडे २ सडने के अनंतर निष्ठुर पिता को न मालूम क्यों दया आई । दया क्या आई मानों पत्थर भी पसीजा । अब इसके कोप ने अपना रुख बदला । शाह आलम को अपने पास बुला कर प्यार के साथ उसे छाती से लगा लिया । बादशाह की आंखों में से आंसू निकल पडे । पुत्र को स्नान करा अच्छे २ वस्त्र और आभूषण दिये, बारह हजार का मनसब देकर आगरे की सूबेदारी दी और अपना उत्तराधिकारी बनाकर राज्य देने का भरोसा दिया । इसके अनंतर वह क्योंकर महाराव राजा बुधसिंहजी को लेकर काबुल गया और वहाँ क्या २ पराक्रम किया सो इस ग्रंथ का विषय नहीं । उसके लिये पाठकों को " उम्मेदसिंह चरित्र " का अवलोकन करना चाहिये ।

इस जगह जयपुर नरेश जयसिंह जी के चरित्र की एक घटना उल्लेख करने योग्य है । जिस समय उनके पिता विष्णुसिंहजी का देहान्त हुआ उनका वय केवल बारह वर्ष का था । मंत्रियों की सलाह से यह औरंगाबाद जाकर संवत् १७५९में औरंगजेब की सेवा में उपस्थित हुए । बादशाह इन्हें पास बुलाकर इनके दोनों हाथ, अपने हाथ से पकडते हुए कुछ क्रोध सा दिखला कर कहा—"अब तू हमारा कैदी है । बोल अब क्या करेगा ?" जयसिंहजी ने तुरंत ही उत्तर दिया—"आज हमारा भाग्य उदय होगया । बादशाह जिसका एक हाथ पकडतेहैं वही जब सबके ऊपर हो जाताहै तब हमारे तो हुजूर ने दोनों पकड लिये ।" इसपर बादशाह इनपर बहुत प्रसन्न हुआ । उसने कहाः—"मानसिंह के कुल में यह भी दूसरा मानसिंह होगा । इसकी उमर बालक होने पर भी वाणी में मानसिंह से सवाया है इसलिये अब से यह सवाई जयसिंह कहलावे ।" तब ही से जयपुर नरेश के नाम के साथ सवाई शब्द जोड दिया गया है और जयपुर नगर भी सवाई जयपुर कहलाने लगा ।

अपने ज्येष्ठ बंधु दारा शिकोह को मार कर **औरंगजेब** संवत् १७१९में तख्त पर बैठा और ४८ वर्ष राज्य का शासन करने के अनंतर जब संवत् १७६३में उसका शरीर थक गया तब एक दिन उसने अपने पुत्र आजम को एकान्त में बुलाकर उससे कहाः—"जिस वक्त मैं **नमाज** पढने में मशगूल होऊं **तलवार** से मेरा शिर काट डालो।" ऐसा कहने में उसने समझा कि— "अब मौत तो नजदीक आही पहुंची इसवास्ते अगर नमाज के वक्त मरूंगा तो हमेशा मेरा **दिल खुदा में** लगा रहेगा।" आजम इतना सुनते ही बबडाया। उसने समझा कि "कहना और और करना और" यही **पिताकी प्रकृति** है। जैसे एक दीनातिदीन भारतवासी पिता पुत्र के **परस्पर प्रेम** होता है, एक का दूसरे पर भरोसा होता है और एक दूसरे के हित के लिये जान माल तथा सर्वस्व न्योछावर करने को तत्पर रहता है—सो बात इनमें कहां--इन लोगों को वह **स्वर्गीय सुख** स्वप्न में भी नसीब नहीं। इसलिये उसने उत्तर दियाः--"ऐसा मुझ से हरगिज नहीं होसकता। अगर हुजूर मुझ को आराम ही बख्शना चाहते हैं तो मय **दिल्ली के आगरे** का सूबा मुझे इनायत कीजिये।" बादशाह ने पुत्र की प्रार्थना पसंद कर उसे मनवांछित कार्य सौंप दिया। वह सेना सजकर बडे ठाट के साथ मनमोदक बनाता वहां से दिल्ली को रवाना हुआ। उसने मनही मन कहा भीः--

"बाप की अब **हमेशा** के वास्ते **कबर** में सोने की तैयारी है। तब मैं चालबाजी से **दिल्ली के तख्त** पर चढ बैठूंगा। शाही लगाम हाथ में लेकर भाई बहादुर शाह और उसके लडके **अजीम को कतल** कर डालूंगा। **काम बख्श** को मारलेना कोई बडी बात ही नहीं। बस इस वास्ते अब **मैं ही मैं हूं**। दिल्ली के तख्त पर बैठ कर बस मैं इकडंकी बजाऊंगा। एक छत्र तपूं तो मेरा नाम आजम।"

बादशाह के पुत्रों में **काम बख्श रंडी के पेटसे** था। पांचवां शाहजादा अकबर जवानी के जोश में आकर बडे २ अनर्थ करने लगा था और इसलिये बादशाह ने उससे चिढ कर उसे मार डालने की भी आज्ञा देदी थी। अपनी मृत्यु इस तरह निकट आती देखकर पहले उसने जोधपुर की शरण की फिर

भयभीत होकर वहांसे भी भाग निकला। भागते २ वह इस्पहान में जाकर मर गया। बादशाह का बडा शाहजादा पहले कैद में मर ही चुका था इसलिये अब उसके तीन बेटे शेष रहे। तीनों में बडे को काबुल, आजम को दिल्ली और "कामबख्श को दक्षिण का सूबा दिया गया। अस्तु इसके आगे क्या हुवा सो प्रथम तो थोडे बहुत के सिवाय "वंशभास्कर" में मिलता नहीं और जितना सा मिलता है उसका इस ग्रंथ से विशेष संबंध नहीं क्यों कि कविराजा सूर्यमलजी के मत से संवत् १७६३ के फाल्गुन कृष्ण में अपने ही वसाये औरंगाबाद में दिल्ली के बादशाह औरंगजेब ने इस दुनियां से कूच करके दक्षिणी वीरों के लिये मैदान खाली कर दिया अवश्य उसने ४८ वर्ष तक एक ही छत्र राज्य शासन किया किन्तु जैसे जहांगीर को दक्षिण ने चैन नहीं लेने दी, जैसे शाहजहां मरहटे वीरों के मारे कभी सुख की नींद न सोया उसी तरह औरंगजेब जैसा दुर्दान्त यवन भी सदा उधरकी ओर से कभी भीत, कभी चकित और कभी कंपित बना रहा और इसीमें उसने सच पूछो तो अपनी जान खपा डाली।

• मुंशी देवीप्रसादजी कृत "औरंगजेबनामे" की अभी पूरी पोथी छपी नहीं है। वह मृत्यु को संवत् १७६३ में प्राप्त हुआ और इस पुस्तकके ग्यारह खंड जो अभी तक मुद्रित हुए हैं उनमें संवत् १७४० तक का हाल है। ऐसे २३ वर्ष का चारित्र जो अवशिष्ट है वह उस पुस्तक के शेषखण्ड प्रकाशित होने पर पाठकों को अवलोकन करने का अवसर मिल ही जायगा और जो भाग अब तक छप चुके हैं उनके आशय को इस पोथीमें ठूंसने की यों भी आवश्यकता नहीं। हां! इससे इतना अवश्य मालूम होता है कि वह अपने बाप दादों की अपेक्षा हिन्दूधर्म का विनाश करने में सब से बढ निकला। भारतवर्ष के नामी २ मंदिरों को तोड कर उनके मसाले से मसजिदें बनवाना और नर्मी और गर्मी दिखाकर मुसलमान बनाना तो उसका जग जाहिर है और मरहटों की ओर से आजीवन उसके अंतःकरण में घुन लगा रहने में भी संदेह नहीं किन्तु इतना अवश्य कहदेना चाहिये कि वह बडा ही [illegible] था।

अवश्य रावराजा भावसिंहजी और जोधपुरनरेश यशवन्तसिंहजी जैसे विरले नरेश उसीके होकर रहने पर भी उससे दबे नहीं किन्तु इसमें संदेह नहीं कि वह एक बलवान् बादशाह था। सचमुच केवल राज्यशासन के सिवाय वह किसीका सगा न निकला। उसने बाप को कैद करके भाई को मार कर दूसरे भाई, भतीजे और बेटों तक को कैद करके राज्य किया और सो भी अपना शरीर सुख भोगने के लिये नहीं। अपने कट्टर से कट्टर विचार के साथ तलवार के बल से अपने धर्मका प्रचार करने के लिये और इसीलिये वह असाधारण अत्याचारी कहला गया। अकबर, जहांगीर और शाहजहां. जैसे स्वभावका, उसके से वर्ताव करने वाला यदि कोई और व्यक्ति--दाराशिकोह ही शाहजहां के बाद तख्त पर बैठता तो शायद मुगलों की बादशाहत फिर भी कई पीढियां तक चलती किन्तु औरंगजेब के हिन्दूधर्म द्वेष ने हिन्दुओंका दिल खट्टा कर दिया, उसके कुटुंब कलहने मुगल खानदान को नष्ट भ्रष्ट कर डाला और इसमें संदेह नहीं कि भारत वर्ष से मुगलों की-नहीं २ मुसलमानों की सलतनत उखाड डालने का सूत्रपात कर दिया। यद्यपि अंगरेजों के भारत वर्ष में राज्य शासन करने का बीज जहांगीर के समय से पडा किन्तु उससे शाहजहां के समय में कल्ले निकल कर औरंगजेब के शासन में पौदे कहलाने का अवसर मिला और फिर मुसलमान साम्राज्य-रूपी चंद्रमा के अस्त होते होते कुछ काल तक मरहटे शुक्र का प्रकाश दिखलाई देकर देश के सौभाग्य से भारत वर्ष में फिर शांति स्थापित करने के लिये अंगरेजों के प्रताप रवि का उदय हुआ। बहुत हिस्से ये बातें "उम्मेदसिंह चरित्र" से मालूम होती हैं।

औरंगजेब बादशाह के समय एक यूरोपियन यात्री ने भारतवर्ष में आकर "बर्नियर्स ट्रेवल" नाम की अपनी यात्रापुस्तक में औरंगजेब के विषय में कितनी ही ऐसी बातें लिखी हैं जिनका उल्लेख करदेना मुझे यहां आवश्यक जान पडता है। बर्नियर साहब एक फरांसीसी यात्री थे और औरंगजेब के शासनकाल में भारतवर्ष में आये थे। उनके लेख का बहुत सा अंश उनका आंखों देखा है। उन्होंने बादशाह औरंगजेब के विषय में जो

कुछ लिखा है उसका सारांश ही यहां लिखदेना बहुत होगा। वह लिखते हैं कि उसका जन्म सन् १६१९ ईसवी में हुआ । वह सन् १६५८ में दिल्ली सिंहासन पर आलमगीर के नाम से बैठा।और सन् १७०७ में मर गया।वह बादशाह शाहजहां का तीसरा शाहजादा था। उसके विचार सुदृढ होते थे।उसे योग्य और अपने वफादार विश्वासनीय वीर चुनलेने का अच्छा मलका था। उसने इनाम, पारितोषिक अथवा पुरस्कार बडी उदारता के साथ दिये किन्तु दिये उन ही लोगों को जिनकी खैरख्वाही रक्षित रखना अथवा संपादन करना उसने आवश्यक और अपने लिये उपयोगी समझा और इस लिये उसने पारितोषिक वितरण करने में बडी सावधानी से काम लिया । उसका हृदय संकुचित था। वह फरेबी था और दगाबाजी करने में वह उस्ताद था। जिस समय पिता ने उसे दक्षिण की सूबेदारी पर नियत किया तो उसने औरों के मन पर यह ठसा देने का प्रयत्न किया कि इसके बदले यदि मुझे फकीर होने दिया जाय तो मुझे अधिक संतोष हो । क्योंकि मुझे राजकीय झगडों को छोड छाड कर परमेश्वर की बंदगी करने अथवा धार्मिक कार्यों के संपादन करने की हार्दिक लालसा है किन्तु उसका जीवन सुदृढ प्रपंचों और उद्योगों का जीवन था। उसने इनका ऐसी प्रशंसनीय चालाकी के साथ निर्वाह किया कि शाही दर्बार में से उसके भाई एक दारा को छोड कर सब ही ने उसके चरित्रों का अनुमान करने में धोखा खाया।

अपने चारों पुत्रों के लडाई झगडों से जब शाहजहां तंग आगया और जब उसे खटका होगया कि ये या तो अलग २ रहकर स्वतंत्र बादशाह बन बैठेंगे अथवा विजय की लालसा में समरभूमि को खून से लाल कर डालेंगे तब उसने इस घोर और आगंतुक विपत्ति से बचने के लिये सुलतान शुजाअ को बंगाल, औरंगजेब को दक्षिण, मुरादबख्श को गुजरात और दारा को काबुल तथा मुलतान का सूबा दे दिया। पहले तीनों ने तुरंत ही अपने २ सूबों में पहुंच कर वहांकी आय अपने कामों में लगाई और शाही सेवा में काम आने और अपना आतंक स्थापित करने के बहाने से सेना इतनी बढा ली

कि जिससे बादशाह ने उनको शत्रु समझ लिया । दारा शाहजहां का बडा पुत्र था और समझता था कि मैं ही उत्तराधिकारी हूँ इस लिये दरबार छोडकर न गया । शाहजहां ने उसे अपना हुक्म चलाने का अधिकार देकर और अपने नीचे बैठने के लिये सिंहासन देकर दिखला दिया कि मानो पिता पुत्र दोनों अथवा दो बादशाह शासन करते हैं । दारा पिता के साथ बहुत प्रेम और प्रतिष्ठा के साथ वर्ताव करता था किन्तु पिता का उसके प्रति प्रेम हार्दिक नहीं था। इस बूढे बादशाह को सदा ही यह खटका बना रहता था कि कहीं किसी दिन मुझे ही जहर देकर न मार डाला जाय । औरंगजेब की बुद्धि के लिये पिता के विचार बहुत ऊंचे थे और लोग कहते हैं कि इन बाप बेटों का परस्पर गुप्त रीति से पत्राचार भी था ।

औरंगजेब दक्षिण में पहुंचा तो गोलकुंडे के बादशाह का धनवान्, प्रभावशाली वजीर अमीर जुमला इसमें आ मिला और इसके कारण गोलकुंडे के राज्य का सर्वनाश होकर मानो यह सिद्ध होगया कि—"जो नरेश अपनी बुद्धि के बदले औरों की अकल पर काम करते हैं उनका इसी तरह सत्यानाश होताहै । वजीर के बताये हुए षडयंत्र के अनुसार चलकर शाहजहां का एलची बना हुआ जब औरंगजेब पहुंचा तब गोलकुंडे के बादशाह को केवल अपनी जान लेकर भागना पडा । कहते हैं कि इसी मुहिम में औरंगजेब ने जगजाहिर "कोहनूर" हीरा प्राप्त करके पिता के अर्पण किया था किन्तु वर्नियर के मत से यह भेंट अमीर जुमला की ओर से हुई थी । अमीर जुमला की सहायता से उसने बीडर लिया और उसीके द्वारा औरंगजेब की इतनी उन्नति—इतना आतंक हुआ । शाहजहां के वारंवार बुलाने से जुमला दिल्ली गया और उसने औरंगजेब की सहायता के लिये बादशाह को फिर बलवती सेना भेजने की सलाह दी।

दारा नहीं चाहता था कि इस तरह औरंगजेब जैसे दुर्दमनीय शाहजादे की शक्ति द्विगुणित करदीजाय किन्तु इन दिनों पिता दारा से रूठ गया था। क्रुद्ध होने का मुख्य कारण यही था कि उसने वजीर सादुल्लाखां को जिससे बादशाह की गाढी मित्रता थी और जिस पर उसका अधिक भरोसा था मरवा डाला । दारा ने इस प्रकार सेना भेजने में रखने भी कसर न

डाले किन्तु शाहजहाँ ने सेना भेजी सो भेजी ही । हां ! दारा के बहुत कहने सुनने से उसने इतना अवश्य करदिया कि सेना का चार्ज औरंगजेब को देने के बदले अमीर जुमला को दिया और औरंगजेब के कुटुंब को भी दक्षिण न जाने दिया । किन्तु साथ ही उसको लिख भी दिया कि मैंने यह कार्य केवल दारा को संतुष्ट रखने के लिये किया है । नहीं तो मैं तेरे बाल बच्चों को शीघ्र ही भेजदूंगा ।

उस समय शाहजहां सत्तर वर्ष की उमर में पहुंच चुका था । भारतवर्ष में सर्वत्र अराजकता फैलगई थी । अब उसकी बीमारी ने देश में और भी हल्ला और हलचल मचाई । दारा ने दिल्ली और आगरे में, मुलतान शुजा-अने बंगाल में, औरंगजेब ने दक्षिण में और मुरादबख्श ने गुजरात में परस्पर भिड कर, दूसरों को मारकर दिल्ली का सिंहासन पाने के लिये सेना सजाई । दारा ने पिता को और भाइयों पर नाराज करने के लिये तीनों भाइयों के पत्र पकडकर पिता को दिखलाये और इस तरह प्रकाशित किया कि तीनों ही पृथक् राज्य के लालच से सेना इकट्ठी कर रहे हैं । किन्तु शाहजहां का दारा पर विश्वास बिलकुल जाता रहा था । उसे दिन रात यही खटका बना रहता था कि कहीं मुझे जहर न दे दियां जाय । इसी डर से यह खाना भी बहुत देख भाल के बाद खाया करता था । शाहजहां का औरंगजेब से पत्राचार जान कर दारा ने पिता को मार डालने तक की धमकी दी थी ।

इस अवसर में यह गप्प उडगई कि बादशाह मरगया । बस इसी पर चारों लडकों ने तख्त का दावीदार बनने के लिये लडने को अथवा कट-मरने के लिये सेना सजाई । सौदा मौतका था । या तो राज्य ही करना अथवा मर मिटना । शाहजहां भी जब भारत के साम्राज्य सिंहासन पर आसीन हुआ तब अपने भाइयों के रक्त से अपने हाथ लाल करके ।

अब औरंगजेब ने भी अपना ढिंढोरा पीट दिया । उसने युद्ध की घोषणा देने के लिये अपनी सेना सजधज कर चढाई की । जिस समय वह

कूच दर कूच आगरे की ओर बढा चला जा रहा था तब **शुजाअ** ने भी दिल्ली की ओर अपनी वीर वाहिनी चढाई। बादशाह और दारा के धमकी देने से शुजाअ चाहे रुकगया किन्तु औरंगजेब ऐसी **बंदर घुडकी** में आनेवाली आसामी नहीं था। उसने एक और ही चाल खेली। उसने गुजरात के सूबेदार अपने भाई मुराद बख्श को एक **चिट्ठी में** लिखा कि:—

"प्यारे भाई, तुम जानते ही हो कि **राजकाज** की झंझटों से मुझे कितनी **घृणा** है। दारा और शुजाअ जब राज्य लोलुपता से अपनी **जान खपा** रहे हैं तब मैं **फकीरी** के लिये मरता हूं। मुझे बादशाहत से कुछ प्रयोजन नहीं किन्तु मेरे मित्र मैं तुम पर सदा ही प्यार करता हूं और इसलिये **तुम्हारी भलाई** के लिये ही मैं तैयार हूं। **दारा** राज्य शासन के लिये बिलकुल अयोग्य और **काफिर,** बुतपरस्त (मूर्तिपूजक) है और सब ही अमीर उमरा उससे नाराज हैं। सुलतान **शुजाअ** भी वैसा ही **अयोग्य** है। वह राफजी है और भारत वर्ष का **शत्रु है**। तब मैं कह सकता हूं कि तुम—केवल **आप ही** भारतवर्ष के इस बलाढय साम्राज्य के लिये **योग्य** पाये जाते हो। यह राय केवल मेरी ही राय नहीं है मेरी तरह समस्त सरदारों का **यही खयाल** है। वे तुम्हारी अप्रतिम वीरता देखकर तुम्हारा आदर करते हैं। और चाहते हैं कि तुम शीघ्र ही **राजधानी में प्रवेश** करो। मैं केवल तुमसे एक ही सच्चा प्रण करवालेना चाहता हूं कि जब **तुम्हारे शिर पर राजमुकुट** रक्खा जावे तब तुम मुझे अपने साम्राज्य के किसी एकान्त कोने में निवास करके शान्ति पूर्वक परमेश्वर की **इबादत** करने देना जहां कि मैं सताया न जाऊँ और इस तरह मेरा वियोग यदि तुम को सहन करना स्वीकार हो तो मैं अपने मंत्रियों को, अपने मित्रों को और अपनी समस्त सेना को **तुम्हें अर्पण** कर केवल तुम्हारे लिये, तुम्हारे साथ होकर लडाई के मैदान में **तलवार के हाथ** दिखाना चाहता हूं। मैं **एक लाख** रुपये आपकी सेवा में भेजता हूं। यह मेरी शुभचिन्तकता की सच्ची भेट है। इसे स्वीकार करना। यह मेरा निवेदन है। समय बडा दुस्तर है। सूरत का किला ले लेने में एक क्षण की भी विलंब न करना। वहां राज्य का असंख्य धन रक्खाहुआहै।"

ऐसे औरंगजेब ने छल करके जैसे मुराद को अपने चंगुल में फंसा लिया उसी तरह अमीर जुमला को भी पत्र लिखकर पिघला लिया। मुराद के सूरत का विजय करलेने के अनंतर और अमीर जुमला की पूर्ण सहायता पाकर दोनों भाइयों की सेनायें जब दिल्ली जाते हुए मार्ग में मिलीं तो दोनों दलों में बडी २ खुशियां मनाईं गईं। जब से दोनों भाइयों का मिलाप हुआ दोनों का परस्पर वियोग असह्य था। औरंगजेब सदा ही अपने लिये निःस्वार्थता और भाई के लिये अप्रतिम–अडिग प्रेम दिखलाया करता था। वह वारंवार यही कहा करताथा और विश्वास दिलाया करताथा कि मुझे राज्य से कुछ सरोकार नहीं ! मैं केवल इस बृहत् सेना को लिये हुए केवल दो ही प्रयोजनों से लडने को चलता हूँ कि एक तो दारा मेरा कट्टर शत्रु है उसका मुझे दमन करना है और दूसरे दिल्ली के सूने सिंहासन पर भाई मुराद को बिठलाना चाहता हूं। रास्ते भर वह भाई से इसी तरह कहता गया और जब दर्बार में अथवा एकान्त में जब २ अवसर मिलता सदा औरंगजेब मुराद से "हजरत" या जहांपनाह अथवा "बादशाह सलामत" कहकर संबोधन किया करता था। आश्चर्य यह है कि मुराद को औरंगजेब की चालाकी पर बिलकुल संदेह न हुआ। उसने यह न सोचा कि जो एक बादशाहत छीनने का उद्योग करके बदनाम हो चुका है फकीर बनकर क्यों कर मरना पसंद करैगा।

दोनों भाइयों की संयुक्त सेना के चढ़ने का क्या परिणाम हुआ सो यहां दुहराने की आवश्यकता नहीं है। हां ! वर्नियेर ने धौलपुर के जंग का जो खाका खैंचा है उससे मालूम होता है कि हाडाराव शत्रुशल्यजी के मारेजाने से दारा का दिल टूट गया। खैर कुछ भी हो यों जब औरंगजेब के मैदान हाथ आया तब वह मुराद को लिये हुए आगरे गया। नगर के बाहर एक बाग में डेरे डालकर दोनों बंधुओं ने औरंगजेब के किसी कृपापात्र ख्वाजासरा के साथ पिता से कहलाया कि जो कुछ हुआ दारा की चालबाजी का परिणाम है। उन्होंने पिता के आरोग्य होने पर बधाई दी और निवेदन कराया कि हम आपकी आज्ञापालन के लिये ही आगरे आये हैं। शाहजहां से बेटे की चालें

छिपी नहीं थीं इसलिये उसने भी औरंगजेब की मीठी२बातों के लिये मीठा ही सत्कार किया किन्तु पुत्र के लिये पिता ने जो जाल बिछाया था उसमें बेटे के बदले बाप ही फँसगया। औरंगजेब जानता था कि बेगम साहबा से मेरी कट्टर दुश्मनी है, बाप बेटी की मुट्ठी में फंसा हुआ है और जनाने की तातारी स्त्रियों के हाथ से मेरी जान बचना कठिन है। इस कारण पिता के अनेक बार बुलाने पर झूंठे प्रण करने के सिवाय वह न गया। इस अवसर में उसने शाही दर्बार के उमरावों को मिला कर तब अपने पुत्र सुलतान मुहम्मद को भेजा। उसने एकाएक हमला करके आगरे के किले पर अधिकार कर लिया और यों शाहजहां जो औरंगजेब को जाल में फँसाना चाहता था वही उसके पोते और औरंगजेब के बेटे के हाथ से कैद होगया। कहते हैं कि शाहजहां ने अपने नाती अर्थात् औरंगजेब के पुत्र सुलतान मुहम्मद को शाही ताज देने का लालच देकर फुसलाया भी था किन्तु वह उसके झांसे में न आया।

तब औरंगजेब ने एतबारखां को आगरे का किलेदार नियत किया। इसने बादशाह को कैद किया, उसकी बेटी जो उसके पास कर्ता धर्ता विधाता थी कैद किया और इन लोगों के पास इनके मित्रों की आवजाव, पत्राचार तक बंद कर दिया। यहां तक कि एतबारखां की आज्ञा बिना शाहजहां अपने कमरे के बाहर भी कदम नहीं रख सकता था। जब इस तरह औरंगजेब ने पूज्यपाद पिता को बंदी बना लिया तब उसके नाम लिखा:—

"आपने जिस समय मेरे साथ इतना प्रेम दिखलाया और दारा पर इतना कोप उसी समय आपने दो हाथियों पर लाद कर दारा के पास अशर्फियां भेजीं। इस से वह फिर फौज जमा करके संग्राम करेगा। इसलिये दारा ही आपके कैद होने का कारण है। मुझ जैसे प्यारे पुत्र को आपके चरणों में लोट कर अपना कर्तव्य पालन न करने देना केवल दारा की बदौलत। आपको इस समय मेरे बर्ताव में जो कुछ विचित्रता विदित होती है और जितनी कुछ आपकी अभी स्वतंत्रता नष्ट हुई है उसके लिये मुझे क्षमा कीजिये। विश्वास रखिये कि ज्यों ही हमें निश्चय होगया कि अब दारा

के सब उद्योग बेकार होगये त्योंही मैं आपकी कैद के दर्वाजे तोडकर मैं चला जाऊंगा।''

इस तरह बाप की गद्दी छीन कर उसे कैद करने के बाद दोनों भाइयों ने शाइस्ताखां को आगरे का सूबादार बनाकर शाही खजाने की मदद से दारा पर चढाई की। मुराद के मित्रों ने उसे बहुत समझाया कि आगरा या दिल्ली छोड कर मत जाओ किन्तु औरंगजेब पर विश्वास करके, उसके कुरान की शपथ पर भरोसा करके मुराद उसके साथ होगया। जब इनका मुकाम मथुरा में हुआ तब रात्रि के खाने के समय आमोद प्रमोद की बात चीत के साथ औरंगजेब ने स्वयं कम लिया और मुराद को शिराज और काबुल का बढिया से बढिया शराब पिलाया। अवसर पाकर औरंगजेब वहां से सटक गया और जब वह शराब में खूब मस्त होगया तब नौकर चाकर वहां से हटा दिये गये और मुराद की तलवार और खंजर भी छीन लिया गया। ऐसे जब वह बिलकुल बेहोश होगया तब औरंगजेब ने फिर आकर उसके एक लात मारी। धक्का खाने पर जब उसने आंखें खोली तब औरंगजेब बोला--''अफसोस! शर्म!! तुम में मुल्क का बादशाह होकर ऐसी अकल! दुनियां तेरे और मुझ तक के लिये क्या कहैगी! इस शराबी कमीने के हाथ पैर बांधकर इसे -इस बे हया को पडा २ सोने दो।'' बस उसी समय मुराद बेडी और हथकडी से जकड दिया गया! उसकी सेना को--सेनापतियों को रिशवत देकर मिला लिया गया और इस तरह कैद होजाने पर जब उसने औरंगजेब को गालियां देना आरंभ किया तब बंद पालकी में बिठला कर दिल्ली के किले सलीमगढ में कैद रखने के लिये भेज दिया।

इसके अनंतर क्या हुआ सो लिखने की आवश्यकता नहीं। मुराद-बख्श को सलीमगढ से हटाकर ग्वालियरके किले में किस मतलब से रक्खा गया सो प्रकाशित करके विस्तार करना भी मुझे इष्ट नहीं। हां! एक घटना यहां उल्लेख करने योग्य है। वह यहां कि औरंगजेब जब मुलतान से लौटकर लाहोर को जारहा था तब मार्ग में

आमेर नरेश राजा जयसिंहजी को चार पांच हजार राजपूत वीरों के साथ उसपर चढकर आते हुए देखा । जयसिंहजी जैसे बहादुर थे वैसे ही शाहजहां के भक्त भी थे। बस इसलिये औरंगजेब उन से डर गया। औरंगजेब डरा अवश्य किन्तु उसने अपनी घबडाहट अपनी मुखमुद्रा से प्रकट न होने दी। मार्ग में मिलते ही उसने पास जाकर कहा:—"सलामत बाशद राजा जी! सलामत बाशद बाबा जी! मेरे प्रभु ! मेरे पिता ! आपके दर्शन करने की मुझे असाधारण उत्कंठा थी। संग्राम की समाप्ति होगई। दारा बरबाद होगया । अब अकेला भटकता फिरता है। उसके पीछे मीर बाबा भेजा गया है। अब उसका बचना संभव नहीं।" तब उसने अपने गले में से मोतियों की माला उतार कर राजा को पहना दी। और इस तरह उस को मिलाकर दारा पर चढवाया।

फिर दारा क्यों कर पकडा गया सो यहां लिखकर दुहराना निष्प्रयोजन है किन्तु उसे कैद कर के जैसा अमानुषी व्यवहार उसके साथ—अपने बाप के साथ किया गया सो ही बर्नियर साहब ने बडे ही चित्त को छेद देने वाले शब्दों में लिखा है। इस बात को प्रकाशित करने पूर्व यहां यह भी लिख-देना चाहिये कि बर्नियर साहब के मत से जब दारा की प्यारी बीबी धूप और प्यास से घबडा कर मरगई तब से दारा का दिल टूट गया था। खैर दारा का खच्चरों पर लदा हुआ सोना, उसकी बेगमों का जेवर लूट कर पठानों ने दारा की—उसके शाहजादे सिपह शिकोह की मुश्कें कसकर हाथी पर डाल दिया। उनका शिर काटने के लिये फांसीगर उनकी खवासी में थे। इस तरह वह सरदार मीर बाबा को सौंपा गया। वह पहले लाहोर और तब दिल्ली को लाया गया।

जब अभागा दारा इस तरह दिल्ली के दर्वाजे पर पहुंचा तब औरंग-जेब ने उसे ग्वालियर के किले में पहुंचाने के बदले नगर में घुमाने की आज्ञा दी। अब दारा और उसका पुत्र जिस हाथी पर बिठलाया गया

वह एक बहुत ही हेच और बूढा जानवर था । जरी किनारी की झूल, टाट-बाफी की सिरी और सोने चांदी के आभूषण की जगह वह हाथी कीच-डमें सना हुआ था । इन दोनों को कपडे मैले कुचैले, मोटे मोटे और फटे टूटे पहनाये गये थे । दारा के शिर की शाल भी ऐसी हलकी थी जिसे बहुत हलके दर्जे के आदमी पहना करते हैं । इस तरह दारा और उसका बेटा दोनों दिल्ली के बाजारमें—उसके गली कूंचों में घुमाये गये । पिता और पुत्र को कैद करने से, मुराद का बुरा हाल करने से दिल्ली की प्रजा पहले ही डरी हुई थी किन्तु ऐसे दारा की दुर्दशा देखकर वह एकदम कांप उठी । बार्नियर साहब अपनी आंखों देखा लिखते हैं कि इस अवसर पर मैं जहां २ गया वहीं मैंने सर्वसाधारण को रोते, चिल्लाते और दारा की दुर्दशा पर बडे २ ही हृदय विदारक शब्दों में आहें भरते देखा । नगर के एक मुख्य स्थान पर घोडे पर चढकर मैंने आंखों से देखा कि सर्वत्र कुहराम ! सब जगह हाहा-कार ! ! मचकर कान के पर्दे फटे जा रहे थे । जीवन खां जो इनके पीछे बैठा हुआ था उस पर लोगों ने पत्थर भी फेंके किन्तु किसी की तलवार खैंच कर सामना करने की अपने प्यारे शाहजादे को छुडालेने की हिम्मत न हुई । जब वह इस बेदर्दी के साथ बे इज्जतीके साथ, और निर्दयता के साथ सारे शहर में घुमाये जा चुके तब खिजराबाद के किले में कैद किये गये।

कैद करने के बाद दारा के नसीब का फैसला करने के लिये कौंसिल हुई । सभा में हकीम दाऊद की यह राय हुई कि—"दारा का जीना अब अच्छा नहीं उसे मारडालने ही में दिल्ली की बादशाहत का मंगल है । वह अब मुसलमान नहीं रहा । वह काफिर हो गया इसलिये मैं उसका वध करने की सलाह देते हुए किंचित् भी आना कानी नहीं कर सकता । यदि ऐसे आदमी के खून करने का पाप लगता हो तो मैं उस गुनाह को अपने शिर पर ओढता हूँ ।" बस इसी परामर्श के अनुसार दारा का शिर उडा देने का काम नजीर नामक गुलाम को दिया गया । इसे शाहजहां ने पढाया था किन्तु यह दारा के बुरे वर्ताव से जलता था । जब अभागा दारा इस खयाल से कि मुझे जहर देकर मेरी जीवनलीला समाप्त करदी जायगी अपने

पुत्र सिपह शिकोह के साथ खाना गर्म कर रहा था उसके कमरे में एकाएक **चार बदमाशों** को लिये हुए नजीर धसमसाता हुआ चला आया और इन को ज्यों ही उसने देखा दारा चिल्ला उठा—"प्यारे बेटे, ये ही **हमारा खून** करने के लिये आपहुंचे।" एक ने बेटे को पकड लिया और चारों **दारा पर टूट पडे**। चारों ने उसको जकड कर एक ने उसका **शिर उडालिया**। दारा के खून से इस तरह अपने हाथ लाल करने का काम उस नीच नजीर ने ही किया। **माथा** काटकर उसी समय **औरंगजेब की भेट** किया गया। उसको तश्तरी में रखवा कर उसका रक्त धुलवाया और तब दारा को पहचान कर औरंगजेब जार जार रो उठा। वह एक ठंढी आह भरकर कहने लगा—"आह! बदबख्त! ए अभागे! इस भयानक दृश्य को मेरे सामने से हटाओ! इस शिर को ले जाओ। इसकी लाश हुमायूं के मकबरे में दफनाओ!" **दारा की लडकी** पहले जनाने में लेकर फिर शाहजहां और बेगम साहबा के मांगने पर उन्हें सौंप दी गई। **दारा की बेगम** होनहार विपत्ति का विचार कर पहले ही से जहर खाकर लाहोर में मर चुकी थी। और **सिपह शिकोह** ग्वालियर के किले में कैद कर दिया गया। अब दारा के कुटुंब में एक **सुलेमान शिकोह** बचा था उसे भी जयसिंह जी ने पकड कर पेश किया और तब वह भी सलीमगढ के किलेमें कैद किया गया। जीवनखां जिसका असली नाम **मलिक जीवन** था यही दारा को पकड कर औरंगजेब के पास पेश करने वाला था। यह भी जंगलियों के हाथ से बहुत बुरी तरह से **मारा गया**। मारा क्या गया भगवान ने दिखला दिया कि "यह खूब सौदा नकद है। इस हाथ दे इस हाथ ले।"

सुलेमान शिकोह की दशा भी बडी ही भयानक थी। जिस समय वह औरंगजेब के पास पहुंचा उसने सब दर्बारियों के समक्ष उसे बुलाया। इस समय का हृदयद्रावक दृश्य देखने में बर्नियर साहब भी उपस्थित थे। जिस समय दर्बारियों ने देखा उनकी **आंखों में से आंसू** निकल पडे।

औरंगजेब ने सबके देखते २ उसकी बेडियां तुडवाईं । इस लीला को देखने में अंतःपुर की महिलायें भी थीं । उसने कहा—" सब्र रक्खो । तुम्हें कुछ कष्ट न पहुंचाया जायगा । दारा काफिर था इसलिये उसे मौत की सजा दी गई । " इस पर सुलेमान शिकोह ने झुक २ कर सलाम किया । और सलाम करके कहा कि—" मुझे जहर देकर मार डालो । " किन्तु औरंगजेब ने दारा की अशर्फियों का पता पूछ कर तब उसे सलीमगढ के किले में भेज दिया ।

अवश्य उसने सुलेमान शिकोह के ऐसे प्राण बचा दिये किन्तु दारा के नसीब का फैसला हो जाने पर भी अभी उसकी दुर्दशा का अंत नहीं हुआ था । इस अभागे के शिर के लिये बर्नियर साहब ने कुछ नहीं लिखा है किन्तु इस स्थल पर इस पोथी का प्रकाशक टिप्पणी देकर लिखता है कि कार्टोमेनौकी जो दारा के पास यूरोपियन डाक्टर था उसने लिखा है कि " जब दारा का शिर औरंगजेब के पास लाया गया तब उसने बडे संतोष के साथ उसे घूर कर देखा । उसने पहले तलवार की नोक लगाकर जांचा और फिर उसकी आंखें फाड कर पहँचाना और तब रोशन आरा बेगम की सलाह से उसे संदूक में बंद करके शाहजहां के पास औरंगजेब की ओर से नजर भेज दिया गया । संदूक खोलने से पहले उसने कहा कि—" बडे संतोष की बात है कि मेरा राज्य छीन लेने वाला फर्जंद इस अभागे बाप को भूल नहीं गया । " किन्तु जब बक्स खोल कर देखा गया तो उसमें अपने प्यारे बेटे का शिर पाकर वह एक दम मूर्च्छित होगया । "

यही डाक्टर साहब लिखते हैं कि दारा ईसाई हो गया था उसने मरने से पहले कहा था कि " मुहम्मद ने मुझे नष्ट कर डाला । परमेश्वर का पुत्र ईसामसीह ही मेरी रक्षा करेगा " कुछ भी हो किन्तु दारा का अंत बहुत बुरा हुआ और यदि डाक्टर साहब का लेख सत्य हो तो औरंगजेब ने पिता के पास प्यारे पुत्र का शिर भेजकर जले पर नमक लगाने में बडा [illegible] किया ।

बर्नियर ने लिखा है कि बादशाह जिनको ग्वालियर के किले में कैद किया करते हैं उन्हें पोस्त पिला २ कर मार दिया करते हैं। इस नशे का बड़ा प्याला उनके सामने भोर ही लाया जाता है और जब तक यह पच न जाय उन्हें भोजन नहीं दिया जाता। बस ऐसे वे कैदी भूखों मरते २ किसी दिन मर रहते हैं। सिपह शिकोह और सुलेमान शिकोह की मौत इसी तरह हुई परन्तु मुराद बख्श बहुत कठोरता के साथ और खुलाखुली मारा गया। वह कैद होने पर भी सर्वप्रिय था। उसकी हिम्मत और नेक चलनी के लिये कबि लोग कसीदे बनाया करते थे। औरंगजेब को पोस्त पिलाकर गुप्त रीति से उसका वध करने में खटका था किन्तु शीघ्र ही उसको ऐसा कुकर्मकरने का बहाना हाथ आगया। बात यह हुई कि जिन दिनों मुराद गुजरात का सूबा था उसने धन के लालच से किसी सैयद को मरवा दिया था। अब अवसर साध कर उसीके लड़के औरंगजेब के पास फर्यादी हुए। उन्होंने अपने बाप के शिर का बदला मांगा और यों मुराद की जीवन लीला समाप्त होगई।

इस तरह अपने पिताके कुनबे भर की इतिश्री होजाने के बाद केवल सुलतान शुजाअ बच रहा था। उसके नसीब का क्योंकर फैसला हुआ सो लिखकर इस पोथी के पन्ने रंगने की आवश्यकता नहीं क्योंकि वह जंग के मैदान में औरंगजेब से हार खाने बाद योंही मारा २ फिरता रहा किन्तु अब देखना चाहिये कि औरंगजेब ने अपने उस्ताद के साथ कैसा सलूक किया। मुल्ला सालेह शाहजहां से जागीर पाकर कई वर्षों से काबुल में रहता था। जब उसने सुना कि उसका शागिर्द आजकल्ह हिन्दूस्थान का बादशाह है तो वह मिलने के लिये दौड आया। जब वह बादशाह के पास उपस्थित हुआ तब औरंगजेब ने कहा:—

"मुल्लासाहब, क्या आप चाहते हैं कि मैं आपको शाही दर्बार का कोई ऊंचा दर्जा दूं। हां यदि आप मेरा दिमाग योग्य शिक्षाओं से भर देते तो आपका दर्जा पाने का स्वत्व था। किन्तु आपने मुझे सिखलाया कि फरंगिस्तान एक

छोटा सा टापू है। और यूरोप के सब ही बादशाह हमारे छोटे मोटे राजा-ओं के बराबर हैं। क्या दुनिया के भूगोल का सच्चा चित्र मुझे दिखलाना आपका कर्तव्य नहीं था किन्तु आपने मुझको बिलकुल अंधेरे में डाल रक्खा। बादशाह को पडौसी देशों की भाषायें सीखनी चाहिये परंतु दश बारह बर्ष तक आपने मुझे केवल अरबीं ही अरबीं में उलझा रक्खा। आप इस बात को भूल गये कि एक शाहजादे को कौन २ आवश्यक बातें सिखलाना चाहिये परन्तु आपने वर्षों तक मुझसे व्याकरण रटवाया, इस तरह आपने मेरा समय व्यर्थ ही नष्ट कर डाला। .... बस इसलिये अपने गांव को लौट जाइये और किसी से न कहिये कि आप कौन हैं।"

औरंगजेब ने अपने शाहजादे अकबर से निकाह करादेने के लिये शाह-जहां से दारा की लडकी मांगी क्योंकि वह इसी लडके को अपना उत्तरा-धिकारी बनाना चाहता था और उसने समझ लिया था कि इस संबंध से अकबर निरापद होजायगा किन्तु शाहजादी को अपने बाप का खून करने-वाले के लडके से निकाह करने में घृणा थी। ऐसे संबंध से उसने कुंवारी ही मर जाना पसंद किया।

बस बर्नियर साहब ने औरंगजेब के चरित्र का आखों देखा जो चित्र खैंचा है उसमें दो चार बातोंका यह दिग्दर्शन है। उसके विस्तृत चरित्र के लिये हिन्दी में एक नहीं अनेक ग्रंथ हैं और होंगे। उनका अवलोकन करने से पाठकों को उसके चरित्र की समालोचना करने का अच्छा अवसर मिलैगा। केवल नमूने ही से नतीजा नहीं निकाल लेना चाहिये।

अध्याय ९.

पुस्तक का सिंहावलोकन।

बर्नियर साहब की किताब से विदित होता है कि औरंगजेब के आतंक से केवल भारतवर्ष के रजवाडे ही कांपते हों सो नहीं--उसका दबदबा इस देश की सीमाओं का उल्लंघन कर विलायतों तक जा पहुंचा था। उसके

पास तातार,डच,मक्का,यमन,बसरा,एबीसीनिया,ईरान और तिब्बत से एलची आया करते थे। वह अवश्य ही असाधारण प्रतिभाशाली था। उसने अपने कुटुंब का सर्वनाश कर डाला—सो तो पाठक गत अध्यायों के अवलोकन करने से जान ही चुके किन्तु वह दबने के नाम पर अपने पिता क्या—पिता के पिता से भी **न दबा**। इसलिये उसका **शासन अदम्य** था। यदि **मरहटे** उस जमाने में जोर न पकड बैठते तो कहाजा सकता था कि उसने भारत जैसे विशाल साम्राज्यका **एक छत्र** राज्य किया—एकडंकी बजाई।

उसके शासन में—केवल उसीकी बदौलत बूंदी राज्यकी **चार पीढियां** खप गईं। यों हाडाराव **रत्नसिंह** जी के समय में हीं औरंगजेब जोर पकड बैठा था। यहां तक कि बादशाह जहांगीर के अपने प्यारे पुत्र शाहजहां से **मन मुटाव** होने के "जहांगीर नामे" के मतसे जितने कारण माने जाते हैं उनमें एक औरंगजेब की **उच्छृंखलता** भी है। किन्तु जब रत्नसिंह जी के शासन में उनका किसी तरह इससे बुरा या भला संपर्क होना इतिहासों में नहीं पाया जाता तब उनकी बात जाने दीजिये परंतु बावन समरों में विजय-प्राप्त करने वाले राव राजा **शत्रुशल्य** जी अवश्य ही उसका विरोध करने में **मरमिटे** और मरे क्या इतिहास गवाही दे रहे हैं कि औरंगजेब के हृदय पटल पर तलवार की लेखनी और **रक्त की स्याही** से सदा के लिये लिख मरे कि बहादुर ऐसे होते हैं ! औरंगजेब चाहे जैसा प्रतापी था, कैसा भी साहसी क्यों न हो और उसमें यद्यपि "उद्यमं साहसं धैर्यं बलं बुद्धिः पराक्रमः। षडेते यस्य विद्यंते तस्माद्देवोपि शक्यते" कूट २ कर भरे हुए थे परंतु इसमें संदेह नहीं कि यदि समर भूमि में उनके कट मरने का अवसर न आता तो औरंगजेब को दिल्ली का साम्राज्य प्राप्त होना **दालभात** का खाना नहीं था। उससे कभी न दब कर अपने धर्म की टेक रखते हुए रावराजा **भावसिंह** जी आजीवन उसीकी सेवा कर अपनी जान न्योछावर कर गये। राजकुमार **कृष्णसिंहजी** को उसने छलघात से मरवा ही

डाला और रावराजा अनिरुद्ध सिंहजी भी उसकी नौकरी करते २ अपने प्राणों से हाथ धो बैठे । यों जैसे उसने अपने पिता का, भाइयों का, पुत्रों का, भतीजों का सर्वनाश किया वैसे ही औरंगजेब बूंदी के प्रतापादित्य के लिये भयंकर राहु निकला । हां ! इसजगह इतना अवश्य लिख देना चाहिये कि उसके दुःशासन में—उसके द्वेष से बूंदी अवश्य दुर्बल पड गई किन्तु धर्म की टेक में, वीरता में और प्रतिज्ञा पालन में हाडा वीरों का आसन पहले से और भी ऊंचा होगया और हो इस कारण गया कि राव सुरजनजी, राव भोजजी और राव रत्नसिंहजी को अकबर, जहांगीर और शाहजहां के शासन में जिन बातों के लिये कदापि स्वप्न में भी अवसर नहीं मिला था वेही रावराजा भावसिंहजी के सामने मूर्तिमती आ खडी हुई ।

अस्तु ! जो कुछ होना था सो हो चुका किन्तु ग्रन्थ की समाप्ति के पूर्व इस पुस्तक के चरित्र नायकों की जीवनियों का सिंहावलोकन करना आवश्यक है जिससे पाठकों को संक्षेप से विदित होजाय कि ये लोग कैसे थे । हाडाकुल में—बूंदी के इतिहास में इस राज्य के संस्थापक देवाजी के अनन्तर यों तो प्राय: सब ही नरेश स्वधर्मनिष्ठ, बहादुर और बात के धनी हुए किन्तु प्रतापी सम्राट् अकबर से अपने कुलाभिमान—अपने प्यारे धर्म की रक्षा के लिये प्रतिज्ञायें करवाकर हाडाजाति का संसार में सदा के लिये मुख उज्ज्वल कर देने वाले और इस राज्य का असाधारण विस्तार कर देने वाले सुरजनजी के समान कोई नहीं हुआ । इन के पुत्र राव भोज जी ने स्वधर्म रक्षा में अपने हठीलेपन में और वीरता के साथ दिल्ली के सिंहासन की अटल भक्ति में युद्धों का विजय कर नाम पाया । इनके चरित्र किसी स्वतन्त्र ग्रंथ में लिखने योग्य हैं ।

इन्ही राव सुरजन जी के पौत्र और राव भोजजी के पुत्र हाडाराव रत्न सिंह जी का चरित्र इनके पिता, पितामह से किसी अंश में कम न निकला । अपने पूर्व पुरुषों के समान वह जिस संग्राम में गये विजय लेकर आये । उनका जीवन सदाही रणभूमि में बीता । बादशाह अकबर, जहांगीर, शाहजहां और

औरंगजेब के शासन काल में दक्षिण प्रान्त में कभी, किसीके करने धरने से शांति न रहसकी—इन चारों ही को सदा उस ओरका खटका बना रहा और सो भी एकके समय में उसका सूत्रपात होकर चौथे के शासन में उसने इतना भयंकर रूप धारण किया कि औरंगजेब जैसे पराक्रमी राजनीति पटु तक को इसी चिंता में अपना शरीर खपा देना पडा किंतु जब तक शाहजहां और जहांगीर के जमाने में रत्नसिंहजी उस प्रांत के सूबेदार रहे शांति का अटल राज्य बना रहा और एकाएक किसी को शिर उठाने तक का साहस न हुआ। पिता के बागी—पितृद्रोही खुर्रम को, जो अन्तमें शाहजहां के नाम से भारतवर्ष का राजराजेश्वर हुआ लोमहर्षण संग्राम में परास्त कर कैद कर लिया और जब उसके पिता जहांगीर ने उसे मार डालने की आज्ञा देदी तो उसके प्राण बचाकर केवल उसे जीव दान ही न किया बरन् पुत्रहीन पिता के केवल इकलौते बेटे को बचाकर दिल्ली की बादशाहत को मुगलों के घराने से न जाने दिया। यदि जहांगीर की आज्ञा से खुर्रम मार डाला जाता तो संभव था कि भारतका साम्राज्य मुगलों के बदले किसी अन्य घराने में जा पहुंचता क्योंकि उस समय खुर्रम के सिवाय जहांगीर के सब बेटे मर चुके थे। इस तरह इन्होंने मुगल बादशाहत पर वह अहसान किया जो कभी भूलने का नहीं है। ऐसे साम्राज्य की असाधारण सेवा करने के उप-लक्ष्य में इन्होंने इनाम, पारितोषिक, दर्जे और जागीरें भी बहुत ही पाईं किंतु जब २ स्वधर्म रक्षा का प्रसंग आया इन्होंने बादशाह की कृपा की, अपने राज्य की और अपने शरीर तक की रंचक पर्वाह न की। बादशाह के कोप को तिनके के समान मान कर यह काबुल न गये सो न गये और इनके जोर देने से-इनकी देखादेखी और नरेशों को भी न जानेका हौंसिला होगया। इन्होंने अपने जीते जी कभी राजपूत शिबिरों के निकट गोवध न होने दिया। इनके बनाये विशाल भवन—बडे २ मंदिर अब तक इनके यशों का विस्तार कर रहे हैं और इनके विमल चारित्र में एक ऐसी घटना होगई है जिसने इस भयानक कलिकाल में सतयुग का सा समा

ला दिखाया था। वह घटना ऐसी वैसी नहीं। उसमे इनके पाटवी—इनके उत्तराधिकारी राज कुमार का एक ब्राह्मण के हाथ से खून होगया था। युवराज **गोपीनाथ** जी यद्यपि बडे शूर वीर थे किन्तु भगवान् मदन जब ब्रह्मा विष्णु और महेश तक को तक २ कर अनेक अपने काम बाणों का निशाना बनाने में कुछ का कुछ कर डालता है तब इनसे भी एक भारी भूल हुई जिसका परिणाम मृत्यु। इस तरह पुत्र घाती ब्राह्मण पर यदि रत्नसिंह जी कोप करते तो उसका एक ही क्षण में चकनाचूर हो जाता किन्तु प्यारे पुत्र का घातक प्रथम ब्राह्मण और ब्राह्मण अवध्य और फिर अपराध घातक का नहीं पुत्र का। बस इस लिये पाटवी पुत्र अत्यंत प्यारा होने पर भी इन्होंने उससे अधिक प्यारा न्याय को समझा। पुत्र घाती ब्राह्मण का अपराध क्षमा कर उन चंदेरिया ब्राह्मणों को जो उस समय बैलों की पूंछ मरोड कर बनजारे का पेशा करते थे सत्कार के साथ बसाया और सतयुग के सूर्यवंशी राजा सगर ने प्रजा के अपकारक पुत्र को राज्य से निकाल दिया था तब इन्होंने दिखला दिया कि न्याय के आगे संसार में धन नहीं, राज्य नहीं और पुत्र तक कोई चीज नहीं है। ऐसे इन्होंने पुत्र शोक के वज्राघात को फूल की तरह सहन कर लिया। संसार के इतिहास में ऐसे उदाहरण यदि मिलैं तो विरले ही मिल सकते हैं! धन्य!

राव रत्नसिंहजी के सुरलोक को प्रयाण कर जाने के अनंतर राव राजा शत्रुशल्यजी बूँदी के राज सिंहासन पर विराजे। यह स्वधर्म रक्षा में, कर्तव्य पालन में, दान करने में और वीरता में केवल अपने समय के ही एक न थे वरन भारत वर्ष के—देशी— रजवाड़ों के इतिहास में इनकी समता करने वाले यदि निकलें तो इने गिने। उनकी संख्या छोटी अंगुली से आगे नहीं। यह शत्रुओं के हृदय में जब सच मुच ही शाल थे तब इनका नाम इनके पितामह ने बहुत ही समझ बूझ कर रक्खा था। यह बात के बडे ही धनी थे और इनके शासन काल में—इन्हीं के राज्य में बने हुए करोडों की लागत के महल मन्दिर आज दिन भी गवाही दे रहे हैं कि यह कितने उदार थे।

इनका सारा जीवन युद्धही युद्ध में व्यतीत हुआ । जिस संग्राम में इन का हाथ उस में विजय विभूति इनकी चेरी । यह कभी, किसी समर में, किसी से हारे नहीं और ऐसे इक्यावन रणों में जय लाभ कर बावनवें में जब तक उनके, इनके भाई बेटों के, भतीजों के, शूर सामन्तों के शरीर में प्राण रहे अंगद की तरह अचल होकर मरते मारते रहे और सोने के अक्षरों से इतिहास इस बात की साक्षी देरहे हैं कि इनकी मृत्यु ने ही दारा की मौत और औरंगजेब को राज्य—इस तरह दोनों के भाग्य का फैसला कर दिया । बादशाह शाहजहां की आज्ञा से यह सदा ही औरंगजेब की सहायता में अडे रहे और उसने केवल इन्हीं की बदौलत दक्षिण का विजय किया । ऐसे उसके राज्य लाभ करने पर इनका भी कम लाभ न था क्योंकि उसके शासन में उसकी कृपा से यह अपने राज्य का बहुत कुछ विस्तार कर सकते थे किन्तु सिंहासन की भक्ति के आगे न तो इनके लिये औरंगजेब ही कुछ वस्तु था और न इन्हें अपने लाभ की पर्वाह । बस यह शाहजहां की आज्ञा पाते ही पितृद्रोही औरंगजेब को छोडकर चले आये और उसी का पालन करने के लिये यह दारा और औरंगजेब के परस्पर भीषण समर में मर मिटे । इनकी अप्रतिम स्वामिभक्ति का यह एक ज्वलंत उदाहरण है । जब इतिहासों से सिद्ध है कि औरंगजेब जैसा दुर्दमनीय, साहसी, पराक्रमी और चालाक व्यक्ति इनका बडा आदर करता था, उसे इनकी ओर से पूरा खटका था और केवल इन्हीं के मरने से उसे सिंहासन नसीब हुआ फिर यदि यह कहा जाय कि इनमें भारत वर्ष का साम्राज्य उलट देने की शक्ति थी तो कुछ अनुचित नहीं । यह बादशाह शाहजहां के परम कृपा पात्र थे किंतु पूर्वजों की प्रतिज्ञा के आगे इनके लिये धन, राज्य, शरीर और अपना सर्वस्व कुछ मोल नहीं रखता था । बस इस लिये यह भी इन बातों की बिलकुल पर्वाह न कर शाहजहां का अत्यन्त आग्रह—अतीव कोप होने पर काबुल न गये और इनके हठ पकडने से प्रायः और भी नरेश नहीं । दान शूरता में यह अपने सम सामयिक नरेशों से बढ कर थे । विद्वानों का, दीनों का और ब्राह्मणों का पालन करने के लिये इनके साथ रुपयों से भरे हुए छकडे रहा करते थे

और जिसे देते थे उसे निहाल कर दिया करते थे । उदयपुर की शादी में वहां से बूंदी तक इन्होंने कोस २ पर हाथी दान किये थे ।

इनके अनंतर इनके पुत्र रावराजा **भाव सिंहजी** बूंदी के नरेश हुए । इनको यद्यपि अपने पिता की तरह बावन समरों में वीरता दिखा कर मर मिटने का अवसर नहीं मिला और न इनका जीवन अपने पितामह की तरह सदा जंग ही जंग में व्यतीत हुआ किंतु इसमें किंचित् भी संदेह नहीं है कि यदि इनको भी उन दोनों के समान ऐसा करने का अवसर प्राप्त होता तो यह कदापि किसी से कम न निकलते क्योंकि इन्होंने अपने इष्ट देव के भरोसे, अपनी कृपाण के बल से और अपनी शक्ति की सामर्थ्य से वे काम कर दिखलाये जिनकी जोडी मेवाड के इतिहास को छोड कर देशी रजवाडों के इतिहास में नहीं, भारत वर्ष के इतिहास में न होगी और दुनियां के इतिहास में मिलना कठिन है । हिंदू द्वेषी औरंगजेब के शासन में जब भारत वर्ष भर के देव मंदिर गिराकर उनके मसाले से मसजिदें बनवाना एक साधारण बात थी, जब भगवान भूत भावन काशीपति विश्वनाथ का मंदिर टूट कर उन्हें ज्ञान वापी की शरण लेना पडा तब केवल भावसिंह जी की तलवार ने यदि पाटन के भगवान् केशवरायजी का मंदिर बाल २ बचा लिया तो यह कम आश्चर्य की—कम पुरुषार्थ की बात नहीं है । यदि इनके हाथ से केवल यही कार्य संपादन होता तो भी अवश्य ही यह पूजनीय थे किन्तु नहीं—इससे भी बढकर इन्होंने उस समय अपना साहस दिखलाया जब दुराधर्ष औरंगजेब ने इनसे—सबही हिन्दू नरेशों से अपने शामिल बैठ कर खाना खाने का आग्रह किया । यदि ऐसे समय में स्वधर्म रक्षा के लिये—अपने कुल की मर्यादा के अनुसार यह खम ठोंक कर मरने मारने को—मर मिटने के लिये तैयार न होजाते तो कम से कम उन नरेशोंमें जो बादशाह को बेटियां देनेकी दुर्बलता दिखा चुके थे इतनी ताब कहां थी जो औरंगजेब जैसे कट्टर और बहादुर का सामना करने को तैयार हो सकते । ऐसी दशा में यदि यह न होते तो सब राजाओंके मुसलमान होजानेमें और "यथा राजा तथा प्रजा" के न्याय से देश भर मुसलमान हो जाने में संदेह ही क्या था ? अवश्य ही इनके तलवार

सूंत लेने से और नरेशोंने साहस पकड़ा, जयपुर नरेशने और शाही वजीरों ने बादशाह को समझाया और इस कारण भारत वर्ष उस समय धर्म विप्लव से बच गया। बच क्या गया औरंगजेब के कोपानल में घी की आहुति के बदले इनके साहस ने जल का काम दिया और इसलिये झगडा उस समय न बढने पाया किन्तु इसीके लगभग ऐसी बातों ही बातों को सच्ची कर दिखाने का भी इन्हें अवसर मिलगया। इन्होंने उस समय दिखला दिया कि इनका कार्य केवल "गीदड भपकी" नहीं है। औरंगजेब ने भाद्र शुक्ला ११ को भगवान के विमान न निकालने की—निकाल देने पर लूट लेने की जब आज्ञा दी तो इन्हींने आगे पड कर—प्राण की बाजी लगा कर और तलवार खैंच कर उनकी रक्षा की। यही इनकी स्वधर्मनिष्ठा का—अपने धर्म की रक्षा का एक ज्वलंत उदाहरण है। केवल इतना ही क्यों बरन अपने मित्र—अपने संबंधी बीकानेर नरेश करण सिंहजी की रक्षाकरने में भी यह कदापि पीछे न हटे और इसी लिये उनको धन्यवादपूर्वक कहना पडाकि—"भाऊ को भरोसो जो भरोसो दीनानाथ को।" बस ऐसे २ अनेक कारणों से—इनकी न्याय परायणता से इनकी परलोक यात्रा को दो सो तीस वर्ष होजाने पर भी बूंदी राज्य में देवताओं की तरह पूजे जाते हैं, इनके नाम पर तिजारी टूट जाती है, इनकी दुहाई चलती है, राज्य भर के न्यायासन इनकी गादी माने जाते हैं इनका नाम लेकर समस्त दूकानदार प्रात:काल ही दूकानें खोलते हैं और यह अबतक "हाजिर नाजिर" समझे जाते हैं। गत पृष्ठों के पढने से विदित होगा कि इनके बनाये महल मंदिरों की संख्या भी कम नहीं है।

अवश्य ही इनके धर्माग्रह ने, इनके असाधारण साहस ने इतना काम कर दिखाया और यही कारण इनका राज्य दुर्बल पड जानेका हुआ किन्तु यह अपना नाम अमर कर गये। इनके अनंतर इनके भाई के पौत्र रावराजा अनिरुद्ध सिंहजी को राज्य करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। जिसका पिता नामी होता है उसके लिये यश लाभ करना टेढी खीर है। रावराजा अनिरुद्ध सिंहजी के पूर्व पुरुषों में एक दो नहीं-सबही जब नामी हो गुजरे तब यदि

वह यश भी प्राप्त करते तो किस काम में। राव सुरजनजी से लेकर भावसिंहजी तक के पांच नरेशों ने किसी न किसी बात में—अनेक कामों में आगे बढ कर इतना यश लूटा—इतना नाम पाया कि शायद उनके आगे होने वालों के लिये बाकी नहीं छूटा। इसके सिवाय इनका शासन भी केवल चौदह वर्षों का और फिर प्रतापी औरंगजेब का जमाना इस लिये कहना चाहिये कि इनके समय में, इनके हाथ से सबसे बढ कर जो अच्छा काम हुआ वह यह कि इन्होंने बादशाह औरंगजेब की पुत्र वधू की इज्जत बचाई और सो भी जान पर खेल कर। यह कार्य ऐसा वैसा नहीं है। मुगल बादशाहों पर एक तरह इनका अहसान है और इस सेवा के उपलक्ष्य में यदि उस समय अकबर, जहांगीर अथवा शाहजहां जैसा कोई और बादशाह होता तो इन्हें भरपूर पारितोषिक मिलता किन्तु इस उपकार का बदला इन्हें अपकार में मिला और इसीका परिणाम यह हुआ कि इन्हें काबुल में शरीर छोड देना पडा। हां! इस विषय में दो इतिहास ग्रंथों का परस्पर मत भेद है। एक से इनका काबुल में देहान्त होना पाया जाता है और दूसरे में इनका लाहोर का निवास। खैर कुछ भी हो इनके स्वर्गवास होने के अनंतर बूंदी राज्य का जो इतिहास है वह मेरे बनाये "उम्मेद सिंह चरित्र" में है और यह पोथी बंबई के "श्रीवेंकटेश्वर प्रेस" में छपी है।

॥ इति ॥